प्राक्कथन

अवश्य ही कुछ लोग आश्चर्यके साथ यह प्रश्न करेंगे कि किसी अमेरिकनको, जिसने इस देशमें एक वर्षसे कुछ ही अधिक समय बिताया हो इस तरहकी पुस्तक सम्पादित करनेका क्या अधिकार है। उनका आश्चर्य और जिज्ञासा उचित ही है। फिर भी न्यायकी दृष्टिसे सम्पादकको आशा है कि पाठक उसे यह स्पष्ट करनेका अवसर देंगे कि इस विषयपर पुस्तक लिखनेका विचार क्यों उठा और किस उद्देश्यसे यह लिखी गयी।

सम्पादकको पत्रकारकला विभाग स्थापित करनेमें सहायता देनेके लिए भारत आना पड़ेगा, इसकी कोई कल्पना होनेके कई वर्ष पहले ही उसे अमेरिकाके विश्वविद्यालयोंमें, जहाँ वह अध्यापन-कार्य करता था, कितने ही भारतीय विद्यार्थियोंको पढ़ाना पड़ा। इनमेंसे कुछ स्त्रियों और पुरुषोंने भारतीय समाचारपत्रोंके सम्बन्धमें अनुसन्धानात्मक बड़े और छोटे निबन्ध लिखे। इसलिए उनके समाचारपत्रोंकी कुछ जानकारी प्राप्त करना उसके लिए आवश्यक हो गया। अच्छेसे अच्छे पुस्तकालयोंसे, वाशिंगटनस्थित भारतीय दूतावासके शिक्षा-सलाहकारसे और भारतकी ही कतिपय संस्थाओंसे पूछ-ताछ करने पर पता चला कि भारतीय पत्रकारकलापर बहुत कम पुस्तकें ही उपलब्ध हैं।

इसके बाद पत्रकारोंकी शिक्षा देनेके लिए भारत जानेका अवसर आया। १९५१ के मध्यमें फुलब्राइट-पारितोषिककी सूचना निकलने और मार्च १९५२ में बम्बई पहुँचनेके बीचके समयमें फिर दूरसे ही भारतीय पत्रोंकी स्थिति आदिका अध्ययन करनेका प्रयत्न किया गया। अमेरिका जानेवाले भारतीय पत्रकारोंसे बातचीत कर, विशेषकर इसी उद्देश्यसे भेजी गयी भारतीय पत्र-पत्रिकाओंमेंसे बहुतोंको पढ़कर और

इस विषयपर लिखी गयी एकाध पुस्तक या लेख प्राप्त कर यह सिलसिला जारी रखा गया।

यह पुस्तक लिखनेका विचार सन् १९५१ में साइरेक्यूज, न्यूयार्कमें उत्पन्न हुआ, जब भारतीय समाचारपत्रोंकी पृष्ठभूमिके लिए पुस्तकों और सामग्रीकी खोजका यह काम जारी था। उस समय यह महसूस किया गया कि जब इस विषयकी इतनी कम सामग्री उपलब्ध है, तब यह निश्चित है कि भारतमें जो लोग पत्रकारीकी शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं तथा अन्य लोग जो इसकी आकांक्षा करते हों, उनके लिए, किसी पत्रमें रहकर काम करनेवाले पत्रकारोंके लिए और उन अध्ययनार्थियोंके लिए जो पुस्तकालयोंपर अवलम्बित रहते हैं, पर्याप्त संख्यामें पाठ्य-पुस्तकें प्राप्य नहीं हो सकतीं।

भारतमें कुछ महीने बितानेके बाद तथा और भी कितने ही भारतीय पत्रकारोंसे परिचय होने पर जब विभिन्न प्रकाशन-कार्यालयोंमें जानेसे तथा अन्य अवसर मिलनेसे पहलेके इस विश्वासकी पुष्टि हो गयी कि भारतीय पत्रकारकलापर कम ही पुस्तकें उपलब्ध है,तब पुस्तककी स्थूल रूपरेखाका विचार करते समय भारतके ऐसे पत्रकारोंकी सूची तैयार करनी पडी जो इसके विभिन्न परिच्छेद लिख देनेका काम अपने जिम्मे ले लेते।

पत्रकारोंसे तथा भारतमें पत्रकारीकी शिक्षा देनेवाले कतिपय शिक्षकों-से बातचीत और विचारविमर्श करनेसे पता चला कि किस तरहकी पुस्तक प्रस्तुत करनेकी आवश्यकता है। उसी आवश्यकताकी पूर्त्तिकी दृष्टिसे यह पुस्तक लिखी गयी है।

इसलिए इसके प्रकाशनका उद्देश्य यही रहा है कि शताब्दीके मध्य भागवाले इन वर्षोंमें भारतीय पत्रकारकलाकी जो स्थिति है, थोड़ेमें उसका पर्यालोकन कर दिया जाय। इसके लिखनेमें मुख्य लक्ष्य यही रहा है कि पाठकोंके हाथमें पत्रकारीकी व्याख्याएँ और वर्णन, विशेष मत या विशेष दिशाकी ओर झुकाव प्रकट किये विना, रख दिये जायँ जिससे यह पुस्तक उन लोगोंके लिए विश्वसनीय पथप्रदर्शकका काम

दे सके जो भारतके समाचारपत्रोंके बारेमे और अधिक जानकारी प्राप्त करनेके इच्छुक हो।

यदि ऐसी कोई पुस्तक उपलब्ध होती तो स्पष्ट है कि सम्पादकके लिए इस सम्बन्धमें कोई प्रयत्न करनेकी आवश्यकता न पडती। किन्तु न तो ऐसी पुस्तक विद्यमान थी और न कोई भारतीय विद्वान् या पत्रकार इसे तैयार करनेकी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेनेको सन्नद्ध हुआ, अत उसे यह सोचकर इसमे हाथ लगा देना पडा कि पुस्तक चाहे जैसी बन पडे, उसका अस्तित्वमे आना उसके सर्वथा अभावसे बेहतर ही होगा।

ऐसी एक भी पुस्तक न होनेसे इसका निकल जाना कहीं ज्यादा अच्छा हुआ, यह उन परिच्छेदोमे दी गयी उच्च कोटिकी सामग्रीसे ही प्रमाणित हो जाता है जो सम्पादकको छोडकर अन्य विद्वानो द्वारा लिखे गये है। अपनी भूलो तथा त्रुटियोके लिए क्षमा माँगते हुए भी सम्पादक-का खयाल है कि उन विख्यात महानुभावोकी इस कृतिसे सबका प्रसन्नता ही होनी चाहिये जिन्होने इसके निर्माणमे सहायता पहुँचायी है। ये सभी लेखक बडे कामकाजी आदमी है, जो अपने अपने क्षेत्रमे जिसपर उन्होंने पुस्तकमे लिखा है, विशेष क्रियाशील है। इसीसे यह अनिवार्य था कि जो अध्याय उन्होने लिखे, वे अन्यान्य कर्त्तव्यो तथा व्यस्तताओ-का दबाव रहते हुए ही लिखे गये।

'भारतीय पत्रकारी' मे इस विषयके उन मुख्य स्वरूपोकी समीक्षा और व्याख्या करनेका प्रयत्न किया गया है जो भारतमे दृष्टिगोचर होते है। एक और पुस्तकके समान ही, जिसके साथ भी सम्पादकका सम्बन्ध था, इसमें "अत्यन्त महत्त्वकी बातोपर जोर देते हुए विषयका सामान्य और व्यापक पर्यालोकन किया गया है।" इस पुस्तकके सम्बन्धमे यह दावा किया जा सकता है कि भारतीय समाचारपत्रोंके सम्बन्धमें लिखी गयी इसके पहलेकी किसी भी पुस्तककी अपेक्षा इसमे पत्रकारकलाको अधिक व्यापक दृष्टिसे समझनेका प्रयत्न किया गया है। पहलेकी पुस्तको

में प्रायः हमेशा ही पत्रकारीका अर्थ मुख्य रूपमे समाचारपत्रों सम्बन्धी काम ही लिया जाता रहा है किन्तु आजके भारतमें पत्रकारकलाका सम्बन्ध व्यापारिक पत्रिकाओं, समाचारपत्रोंके लिए फोटो लेनेकी कला, रेडियोके समाचार, जनसवेदन सम्बन्धी कार्यों (पब्लिसिटी), सामान्य पत्रिकाओंके कार्यों तथा अन्य ऐसी कितनी ही बातोंमे है जिनका सम्बन्ध समाचारपत्रोंसे नहीं है।

प्रत्येक लेखक केवल अपने ही लिखे परिच्छेदके लिए उत्तरदायी है। सम्पादकने समूची पुस्तककी योजना बनायी, सामग्रीका आयोजन करने और उसे सिलसिलेसे रखनेका प्रयत्न किया और विभिन्न व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत की गयी सामग्रीमे ताल-मेल बैठानेकी चेष्टा की।

भारतके सभी या बहुसख्यक पत्रकार इससे लाभ उठा सकें, इस दृष्टिसे इस पुस्तकके कम-से-कम अग्रेजी और हिन्दी सस्करणका अनुवाद बँगला, मराठी और तामिल भाषाओंमें हो जाना चाहिये। इसमे पैसा तो अधिक लगेगा किन्तु कठिनाई यह है कि भारतीय पत्रों या पत्रकारीपर अभी तक जो पुस्तकें निकली है, उनकी उपयोगिता सीमित ही है क्योंकि वे या तो अग्रेजीमें हैं या किसी एक देशी भाषामे। इस तरह उनका प्रयोग ही सीमित नहीं होता, उनकी बिक्री भी सीमित होती है जिससे लेखक और प्रकाशक, दोनोंका ही उत्साह ढीला पड जाता है। इसलिए प्रारम्भमें अन्य देशोंकी ही तरह यहाँ भी, ऐसी पुस्तकोंका प्रकाशन बहुलाशमें लाभका नहीं, प्रेमका ही प्रतिफल होगा। फिर भी हमें आशा करनी चाहिये कि उनका प्रकाशन जारी रहेगा।

नागपुर, १९५३ — आर० ई० वूल्सले

विषय-सूची

भाग चार

शिक्षाका प्रश्न

भाग पाँच

भविष्यका अनुमान

भूमिका

भारतीय समाचारपत्रोंके विकासमें जिन लोगोंकी अभिरुचि है, उनके सामने प्रोफेसर रोलैण्ड वूल्सले द्वारा लिखित इस पुस्तकका सस्ताव करनेमें मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। मुझे प्रोफेसर वूल्सलेसे मिलनेका सौभाग्य सन् १९५१ के अन्तमें न्यूयार्कमें प्राप्त हुआ था। वे एक रिपोर्टरके ढंगपर भारत सम्बन्धी कुछ तथ्य जाननेके लिए मुझसे मिलने आये थे। साथ ही उन्होंने नागपुरके हिस्लॉप कॉलेजमें हालमें ही खोले गये पत्रकारकला-विभागके प्राध्यापककी हैसियतसे काम करना जो स्वीकार कर लिया था, उसके भविष्यके कैसे लक्षण है, इस सम्बन्धमें भी वे अपने एक मित्रके रूपमें मेरे विचार जान लेना चाहते थे। अपने कामके अलग-अलग पहलुओंपर बात-चीत करते समय वे भारतके सम्बन्धमें संक्षिप्त अभिलेख ले रहे थे। अपने पदका उत्तरदायित्व सँभालनेके लिए वे किस तरह उपयुक्त तरीकेसे कठिन परिश्रम कर रहे थे, यह देखकर मैं बहुत प्रभावित हुआ। फिर भी मुझे उस समय इस बातकी कोई आशा न थी कि उनके थोड़े समयतक भारतमें निवास करनेके परिणामस्वरूप उनकी लेखनीसे भारतीय पत्रकारीके प्रामाणिक अध्ययनसे परिप्लुत इस तरहकी महत्त्वपूर्ण रचना हमें प्राप्त हो सकेगी। इस पुस्तकका सम्पादन कर प्रोफेसर वूल्सलेने भारतीय पत्रकार-जगत्का विशेष हित किया है और अपनी इस कृति द्वारा भारतमें समाचारपत्रोंके विकास सम्बन्धी साहित्यकी वृद्धिमें हाथ बँटाया है। भारतीय पत्रकारीके सम्बन्धमें इनी गिनी पुस्तकें ही उपलब्ध हैं और निश्चय ही इधर कोई पुस्तक ऐसी नहीं निकली थी जिसमें भारतीय समाचारपत्रोंके अद्यावधिक विकासके पर्यालोचनका प्रयत्न किया गया हो। सम्भव है कि समाचार-पत्रों सम्बन्धी जो आयोग इस समय भारतीय समाचारपत्रोंसे सम्बन्ध

रखनेवाली सभी बातोंकी ब्यौरेवार छान-बीन करनेका प्रयत्न कर रहा है, इस तरहके पर्यालोकनका प्रयत्न करे किन्तु जबतक उसके तत्वावधानमें ऐसी कोई प्रामाणिक पुस्तक तैयार नहीं हो जाती, तबतक जनताको भारतीय समाचारपत्रोंकी स्थिति सम्बन्धी सामग्री प्राप्त करनेके लिए छिट-फुट निकलनेवाली पुस्तकोंमे या फिर सुप्रसिद्ध पत्रकारो द्वारा पत्रकार-सम्मेलनोंमे किये गये सभापणोंमे ही सन्तोष करना होगा। इस पृष्ठभूमिमें यह बात सभीको मान्य होगी कि योग्यतापूर्वक सम्पादित यह पुस्तक, जिसका प्रत्येक अध्याय किसी न किसी प्रशिक्षित एव प्रतिभा-सम्पन्न पत्रकार द्वारा लिखा गया है, इस विषयके अल्प साहित्यकी वृद्धिमें सहायक होगी और इस दृष्टिसे सर्वत्र इसका स्वागत किया जायगा।

भारतीय समाचारपत्रोंका भविष्य महान् है और जिस तरहका सविधान हमने स्वीकार किया है, उसे तथा उसके आधार-भूत सिद्धान्तोंको देखते हुए हमे मानना पडता है कि भविष्य ज्यों-ज्यों हमारे सामने अनावरित होता जायगा, हमारे पत्र भी लोकतन्त्रात्मक बनते जायँगे। भारतमें लोकतन्त्रका विकास करनेके लिए हमारे पत्रोंको महान् कार्य करना है, क्योंकि निर्वाचकोंका बहुत बडा हिस्सा जिसे मतदानका अधिकार मिल गया है, अभीतक अशिक्षित है। सन् १९४७ का वर्ष भारतीय समाचार-पत्रोंके नये युगके प्रारम्भका सूचक माना जा सकता है।

भारतके स्वतन्त्र होनेके पूर्व, भारतीय समाचारपत्र देशकी स्वतन्त्रता-के प्रचारक अभिकर्त्ताकी तरह काम कर रहे थे और राष्ट्रीय आन्दोलन-को सफल बनानेमें उनका कितना योग-दान रहा है, यह बात समुचित रूपसे और पर्याप्त मात्रामें स्वीकार नहीं की गयी है यद्यपि इसके वे सर्वथा योग्य थे। यह कहना अतिरजित न होगा कि राष्ट्रपिता महात्मा गाधीने स्वतन्त्रताका जो आन्दोलन चलाया था, उसे भारतीय समाचार-पत्रोंसे अत्यधिक समर्थन प्राप्त हुआ। भारतके पत्रोंने यदि समझदारीके साथ, मित्रता-पूर्वक और पूरे उत्साहसे उसका समर्थन न किया होता तो स्वतन्त्रताका आन्दोलन कितनी तेजीसे आगे बढता, कहना मुश्किल

है। फिर भी यह अनुमान अवश्य किया जा सकता है कि यदि स्वातन्त्र्य-सघर्षके समय भारतीय पत्र दब्बू-नीतिसे काम लेते रहते तो आन्दोलनके अपरिहार्य तर्कके सामने सरकार उतनी जल्दी शायद न झुकती जितनी जल्दी उसे आखिर झुकना पडा। समाचारपत्रोको राष्ट्रीय आन्दोलनके अग्रदूतकी तरह काम करना पडा, इस कारण समूचे अखबारी पेशेपर और अखबारोके रूप रगपर इसकी अमिट छाप रह गयी।

भारतीय स्वतन्त्रताका पक्ष प्रबल बनानेकी तैयारीमे जब यहाँके पत्र लगे हुए थे, तब उन्हे इस सम्बन्धमे अनेक अग्रलेख तथा टिप्पणियाँ लिखनी पडी और विद्वत्तापूर्ण तर्क सामने रखने पडे। देशके पत्रोमे सम्पादकीय अग्रलेखका महत्त्व बहुत बढ गया, जितना उन देशोमें नही होता जहाँ लोकप्रिय पत्र, अनिवार्य शिक्षाकी सहायतासे, जनतापर प्रभाव जमाये रहते है। भारतीय पत्रोमे सम्पादकके लिखे तथा अन्य लोगो द्वारा लिखित लेखोंको ही इतना अधिक महत्त्व नहीं प्राप्त हुआ, वरन् स्वतत्रताके आन्दोलनके समय पत्रोको राजनीतिक नेताओके लम्बे-लम्बे भाषण भी छापने पडते थे, क्योंकि ये सघर्षके लिए उत्तेजक सामग्रीका काम देते थे। स्वातन्त्र्य-आन्दोलनकी मांगोंके कारण यहाँके पत्रोको समस्याओंपर विचार करते समय गम्भीर रुख अख्तियार करना पडा और ऐसी जनता तैयार करनी पडी जो उनके दृष्टिकोणकी प्रशसा और समर्थन करती। किन्तु सामान्यत पत्रोंने जो बात नही समझी वह यह है कि इस तरहके विचारोवाली जनताकी तादाद क्रमश घटती जा रही है, अत यदि वे अपनी प्रचार-सख्या बढाना चाहते है तो उनके लिए अपने दृष्टिकोण या कार्यविधिमे उचित परिवर्तन करना आवश्यक है।

भारतके स्वतत्र हो जानेके बाद विषयके मुख्य स्वरूपकी तीव्रता मानो क्रमश घटती गयी। जबतक भारत पराधीन था और सारी शक्ति व्हाइटहाल (ब्रिटिश सरकारके कार्यालयो) में केन्द्रित थी, भारतको एक इकाईके रूपमें चलना और कार्य करना पडता था। भारतके

रखनेवाली सभी बातोंकी ब्योरेवार छान-बीन करनेका प्रयत्न कर रहा है, इस तरहके पर्यालोकनका प्रयत्न करे किन्तु जबतक उसके तत्वावधानमें ऐसी कोई प्रामाणिक पुस्तक तैयार नहीं हो जाती, तबतक जनताको भारतीय समाचारपत्रोंकी स्थिति सम्बन्धी सामग्री प्राप्त करनेके लिए छिट-फुट निकलनेवाली पुस्तकोंमे या फिर सुप्रसिद्ध पत्रकारो द्वारा पत्रकार सम्मेलनोंमे किये गये सभाषणोंमे ही सन्तोष करना होगा। इस पृष्ठभूमिमें यह बात सभीको मान्य होगी कि योग्यतापूर्वक सम्पादित यह पुस्तक, जिसका प्रत्येक अध्याय किसी न किसी प्रशिक्षित एव प्रतिभा-सम्पन्न पत्रकार द्वारा लिखा गया है, इस विषयके अन्य साहित्यकी वृद्धिमें सहायक होगी और इस दृष्टिसे सर्वत्र इसका स्वागत किया जायगा।

भारतीय समाचारपत्रोंका भविष्य महान् है और जिस तरहका सविधान हमने स्वीकार किया है, उसे तथा उसके आधार-भूत सिद्धान्तोंको देखते हुए हमें मानना पडता है कि भविष्य ज्यों-ज्यों हमारे सामने अनावरित होता जायगा, हमारे पत्र भी लोकतन्त्रात्मक बनते जायँगे। भारतमें लोकतन्त्रका विकास करनेके लिए हमारे पत्रोंको महान् कार्य करना है, क्योंकि निर्वाचकोंका बहुत बडा हिस्सा जिसे मतदानका अधिकार मिल गया है, अभीतक अशिक्षित है। सन् १९४७ का वर्ष भारतीय समाचार-पत्रोंके नये युगके प्रारम्भका सूचक माना जा सकता है।

भारतके स्वतन्त्र होनेके पूर्व, भारतीय समाचारपत्र देशकी स्वतन्त्रता-के प्रचारक अभिकर्त्ताकी तरह काम कर रहे थे और राष्ट्रीय आन्दोलन-को सफल बनानेमें उनका कितना योग-दान रहा है, यह बात समुचित रूपसे और पर्याप्त मात्रामे स्वीकार नहीं की गयी है यद्यपि इसके वे सर्वथा योग्य थे। यह कहना अतिरजित न होगा कि राष्ट्रपिता महात्मा गाधीने स्वतन्त्रताका जो आन्दोलन चलाया था, उसे भारतीय समाचार-पत्रोंसे अत्यधिक समर्थन प्राप्त हुआ। भारतके पत्रोंने यदि समझदारीके साथ, मित्रता-पूर्वक और पूरे उत्साहसे उसका समर्थन न किया होता तो स्वतन्त्रताका आन्दोलन कितनी तेजीसे आगे बढता, कहना मुश्किल

है। फिर भी यह अनुमान अवश्य किया जा सकता है कि यदि स्वातन्त्र्य-संघर्षके समय भारतीय पत्र दब्बू-नीतिसे काम लेते रहते तो आन्दोलनके अपरिहार्य तर्कके सामने सरकार उतनी जल्दी शायद न झुकती जितनी जल्दी उसे आखिर झुकना पडा। समाचारपत्रोंको राष्ट्रीय आन्दोलनके अग्रदूतकी तरह काम करना पडा, इस कारण समूचे अखबारी पेशेपर और अखबारोंके रूप रंगपर इसकी अमिट छाप रह गयी।

भारतीय स्वतन्त्रताका पक्ष प्रबल बनानेकी तैयारीमें जब यहाँके पत्र लगे हुए थे, तब उन्हें इस सम्बन्धमें अनेक अग्रलेख तथा टिप्पणियाँ लिखनी पडी और विद्वत्तापूर्ण तर्क सामने रखने पडे। देशके पत्रोंमें सम्पादकीय अग्रलेखका महत्त्व बहुत बढ गया, जितना उन देशोंमें नहीं होता जहाँ लोकप्रिय पत्र, अनिवार्य शिक्षाकी सहायतासे, जनतापर प्रभाव जमाये रहते हैं। भारतीय पत्रोंमें सम्पादकके लिखे तथा अन्य लोगो द्वारा लिखित लेखोंको ही इतना अधिक महत्त्व नहीं प्राप्त हुआ, वरन् स्वतन्त्रताके आन्दोलनके समय पत्रोंको राजनीतिक नेताओंके लम्बे-लम्बे भाषण भी छापने पडते थे, क्योंकि ये संघर्षके लिए उत्तेजक सामग्रीका काम देते थे। स्वातन्त्र्य आन्दोलनकी मांगोंके कारण यहाँके पत्रोंको समस्याओंपर विचार करते समय गम्भीर रुख अख्तियार करना पडा और ऐसी जनता तैयार करनी पडी जो उनके दृष्टिकोणकी प्रशंसा और समर्थन करती। किन्तु सामान्यत पत्रोंने जो बात नही समझी वह यह है कि इस तरहके विचारोंवाली जनताकी तादाद क्रमश घटती जा रही है, अत• यदि वे अपनी प्रचार-संख्या बढाना चाहते हैं तो उनके लिए अपने दृष्टिकोण या कार्यविधिमें उचित परिवर्त्तन करना आवश्यक है।

भारतके स्वतन्त्र हो जानेके बाद विषयके मुख्य स्वरूपकी तीव्रता मानो क्रमश घटती गयी। जबतक भारत पराधीन था और सारी शक्ति व्हाइटहाल (ब्रिटिश सरकारके कार्यालयों) में केन्द्रित थी, भारतको एक इकाईके रूपमें चलना और कार्य करना पडता था। भारतके

समाचारपत्रोंको एक दूरस्थ सरकारको सम्बोधन करते हुए तर्क उपस्थित करने पड़ते थे और उससे अपना यह सिद्धान्त मनवानेका प्रयत्न करना पड़ता था कि प्रत्येक देशको स्वतन्त्र रहनेका अधिकार है। किन्तु भारतके स्वतन्त्र हो जाने और अलग-अलग क्षेत्रीय इकाइयोंके काम करने लगने पर, जो कितने ही मामलोंमें बहुत कुछ स्वायत्त हैं, राष्ट्रीय प्रश्नोंके बजाय स्थानीय प्रश्नोंको अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। मैं निश्चय-पूर्वक नहीं कह सकता कि देशके कुछ हिस्सोंके समाचारपत्रोंने बदली हुई स्थितिकी आवश्यकताओंके अनुरूप अपनेको ढालनेका प्रयत्न किया या नहीं। बहुतसे समाचारपत्रोंमें लम्बे-चौड़े तर्क देनेकी शैलीका अब भी अनुसरण किया जाता है, दो कालमके अग्रलेख लिखे जाते हैं और विभिन्न कोटिके राजनीतिक नेताओंके भाषण विस्तारके साथ छापे जाते हैं। हो सकता है कि इस तरहके वाद विवादपूर्ण एवं निर्देशित शिक्षाके ढंगका पूर्ण रूपसे त्याग दिया जाना निर्वाचक वर्गके हितकी दृष्टिसे वाछनीय न हो। कुछ अंशतक उन समाचारपत्रोंका समर्थन किया जा सकता है जो सार्वजनिक विषयोंकी जटिलताओंकी शिक्षा जनताको देते रहनेका प्रयत्न करते हैं। यह सत्य है कि भारतीय जनताको अन्तर्राष्ट्रीय भावनामें, उसके सर्वोत्तम अर्थमें, दीक्षित कर यहाँके समाचार-पत्रोंने एक महान् कार्य किया है। मद्रास, कलकत्ता, बम्बई और दिल्लीसे निकलनेवाले पत्रोंके अग्रलेख-लेखक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति तथा कूटनीतिकी गुत्थियोंकी जितनी जानकारी प्रदर्शित करते हैं, उतनी बरमिंघम अथवा सैनफ्रैंसिस्कोके पत्रोंके लेखक भी नहीं करते। हम लोगोंमेंसे बहुतोंकी यह इच्छा है कि हमारे अग्रलेख-लेखकोंको विदेशी मामलोंकी जितनी गहरी जानकारी है, उसके साथ साथ उन्हें स्थानीय तथा अपने-अपने राज्यकी समस्याओंका भी अधिक निकटका एवं अधिक घनिष्ठ ज्ञान हो।

आजके वातावरणमें समाचारपत्रोंके लिए स्थानीय सम्पर्क बढ़ानेका अच्छा अवसर उपलब्ध है। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, १९४७का

वर्ष समाचारपत्रोंके विकासकी दृष्टिसे एक नये युगका प्रभात माना जा सकता है। समाचारपत्रको, सुचारु रूपसे अपना काम-काज चलाते रहनेके लिए, अपने चारो ओरके प्रश्नोंमे गहरी दिलचस्पी लेनी पडती है। कुछ समाचारपत्रोंने परिवर्तित स्थिति भॉप लेने और नयी आवश्यकताएँ समझ लेनेमें काफी जल्दी की है। उत्तर प्रदेश, बिहार, उडीसा तथा कतिपय राज्यसघोंके समाचारपत्रोंने अपने आपको ऐसे प्रान्तीय पत्रोंमे परिणत कर लिया है जिन्हे स्थानीय समस्याओकी ज्यादा फिक्र रहती है और जो अखिल भारतीय प्रचार बढाने या ध्यान आकृष्ट करनेकी प्रतिद्वन्द्वितामे सम्मिलित होनेकी परवाह नहीं करते।

इस नयी प्रवृत्तिका हमे स्वागत करना चाहिये और मुझे आशा है कि बडी राजधानियोंसे निकलनेवाले पत्र भी स्थानीय विषयोमे गहरी दिलचस्पी लेनेकी यह प्रवृत्ति अपनानेका प्रयत्न करेगे। लोकतन्त्रका भविष्य इस बातपर निर्भर है कि स्थानीय समस्याओंके सम्बन्धमें समाचारपत्र किस तरहका व्यवहार करते हैं। जहॉतक हम लोग निकट भविष्यकी—अगले १० या १५ वर्षोंकी—स्थितिकी कल्पना कर सकते हैं, भारतके कितने ही राज्योंकी विधानसभाओंमे किसी न किसी एक दलका बहुमत होनेके कारण शासनकी स्थिरता बनी रहेगी, भले ही दलके सदस्योको प्रातिनिधिक शासनके गुणों तथा सयमकी यथोचित शिक्षा न मिली हो। विधान मण्डलोंमें विरोधी दलका दृष्टिकोण उतने अच्छे ढगसे न प्रस्तुत किया जा सके, उतनी दृढतासे उसका प्रवर्त्तन न किया जा सके, जितनी से होना चाहिये। साथ ही अधिकतर मामलोंमें उसका सम्बन्ध प्रशासन सम्बन्धी समस्याओंमे ही रहेगा जिसमें सरकारसे तत्सम्बन्धी कुछ शिकायतें दूर करनेका आग्रह किया जायगा। यदि भारतके समाचारपत्र स्थानीय समस्याओंको हल करनेमें अधिक गहरी दिलचस्पी लेने लगे तो इससे उनकी ग्राहक-सख्या ही न बढेगी वरन् वे प्रशस्त विरोधी इकाइयोंकी तरह काम कर सकेगे जिससे प्रशासनका बडा हित होगा। फिर स्थानीय प्रश्नोंकी ओर अधिक ध्यान देनेसे सर्वसाधारणकी मानसिक

वृत्ति अनेक विषयोंकी ओर झुक सकेगी, विशुद्ध राजनीतिक समस्याओंके सम्बन्धमें उत्साहपूर्ण एव गम्भीर वाद-विवाद करनेके एक मात्र ढर्रेपर ही वह प्रवाहित न होगी।

अनेक विषयोंकी ओर सर्वसाधारणका झुकाव होने लगनेसे कई तरहका लाभ होगा। फीचर (मानव अभिरुचि बढानेवाले प्रासगिक लेख) लिखनेकी कलाका अपने देशमें उतना अच्छा विकास नहीं हो सका जितना होना चाहिये था। पश्चिममें ऐसे कितने ही लेखक है जो जीवनकी सम-सामयिक घटनाओंपर मनोरजक एव पठनीय लेख लिखा करते है, जैसे बूढों या युवकोका समय कैसे कटता है, झीलोंवाले क्षेत्रके सुहावने दृश्योंका चमत्कार, कैलिफोरनियाके आसपासकी शस्यश्यामला ग्राम्य भूमि, रोमके प्राचीन भवनोंका भव्य उत्कर्ष, इत्यादि। इसके विपरीत हमारे देशमें ऐसे लेखकोंकी सख्या बहुत ही कम है जिन्होंने भारतीय जीवनके विभिन्न पहलुओंपर लेखनी उठाने और उनका समुचित वर्णन करनेका प्रयत्न किया हो। फीचर लिखनेकी प्रवृत्ति बढनेमें उन लोगोंको कामके प्रचुर अवसर मिलने लगेंगे जिनके हृदयमें लेखादि लिखनेकी उत्कट इच्छा विद्यमान हो। साथ ही उससे छिपी हुई प्रतिभाके विकासके लिए अनेक सम्भावनाएँ सामने आयेंगी। इसलिए यदि साधारणतः हमारे समाचारपत्र अपनी प्रचार-सख्या बढाना चाहते हों तो उनके लिए तत्काल अपने दृष्टिकोणमें कई तरहका परिवर्त्तन करना आवश्यक है।

एक प्रश्न अक्सर पूछा जाता है कि उन बहुतसे समाचारपत्रोंके जीवित बचे रहनेकी क्या सम्भावना है जिनके सामने समाचारपत्रोंकी शृखलाका "खतरा" उपस्थित हो गया है। समाचारपत्रों सम्बन्धी आयोग इस प्रश्नपर विचार कर रहा है, इसलिए मेरे लिए यह कहना उचित न होगा कि समस्या कितनी बडी है, उसकी कितनी शाखाएँ-प्रशाखाएँ हैं और यदि सचमुच उससे कोई खतरा है तो उसका सामना किस तरह किया जाय। फिर आज जो स्थिति है, उसके वास्तविक तथ्य

सामने रख देना उचित ही होगा। समाचारपत्रोंकी केवल एक शृंखला-को छोडकर जिसका मूल केन्द्र बम्बईमे है, अन्य पत्र-समूहोको कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिल सकी है, कमसे कम प्रचार सख्याकी दृष्टिसे। एक शृंखला जिसका आरम्भ दिल्लीसे होता है, देशके बाहरकी अपनी इकाइयोंके कारण बहुत कमजोर-सी जान पडती है, यद्यपि अपने मूल-केन्द्रमे वह काफी मजबूत है। एक और पत्र-शृंखला, जिसका मुख्य केन्द्र मद्रासमे है, अपनी स्थिति अभीतक स्थिर और दृढ नहीं बना सकी है। इतनी बात तो कही ही जा सकती है कि पत्र-समूहोकी वृद्धिका चाहे जो स्वरूप हो, भविष्यमें स्थानीय पत्रका अपना अलग स्थान होगा जो जनताके समर्थनके कारण बिल्कुल सुरक्षित रहेगा। प्रत्येक भारतीय, अपनी आदत और परम्पराके कारण, विभिन्न समूहोंका अस्तित्व पसन्द नहीं करता। उसमे यह समझ लेनेकी अक्ल तो रहती ही है कि प्रकट रूपसे जनताकी सेवा करनेके बजाय शृंखलाबद्ध समाचारपत्रोंका अपना एक अलग स्वार्थ होता है, चाहे प्रश्न समाचार छापनेका हो, या चालू समस्याओंके सम्बन्धमें मत प्रकट करनेका हो। यही वजह है कि जनता बडी शीघ्रतासे इन शृंखलाओंका नाम अपनी रुचिके अनुसार गढ लेती है। बम्बईकी शृंखला अमुक-अमुककी शृंखला कही जाती है। दिल्लीकी शृंखला अमुक उद्योगपतिकी समझी जाती है। व्यावसायिक हितोंके साथ इन पत्र-शृंखलाओंका सम्बन्ध होना ही क्रियाशील तथा जोरदार स्थानीय पत्रोंको प्रोत्साहन देनेवाला सबसे बडा कारण है। यदि विभिन्न क्षेत्रोंके समाचारपत्र अधिकाधिक परिमाणमें स्थानीय तथा क्षेत्रीय समस्याओंपर सहानुभूतिपूर्वक विचार करनेवाले प्रान्तीय पत्र बन जाते हैं, तो शृंखलागत पत्रोंकी स्थिति, जो एक विशेष दृष्टिकोणसे समाचारों तथा विचारोंके प्रमापीकरणके पक्षपाती है, उनकी तुलनामे अधिक मजबूत न हो सकेगी। उन्हें भी अपने आपको प्रान्तीय पत्र बना लेना होगा, और ऐसी हालतमे समाचारों तथा विचारोंके प्रमापीकरणका प्रयत्न भी उन्हे बहुत कुछ छोड देना होगा। इसका मतलब यह हुआ

कि श्रृंखलागत पत्रोंकी, अपना पृथक् समूह बनानेकी, मुख्य विशेषता ही खत्म हो जायगी। जो हो, यदि समाचारपत्र अपने आपको क्षेत्रीय समस्याओंसे अधिक सम्बद्ध कर लेते हैं तो वे श्रृंखलागत पत्रोंकी प्रतिद्वन्द्विताका सामना आसानीसे कर सकते हैं।

अपने देशके देशी भाषाओंके पत्रोंके भविष्यके सम्बन्धमें बहुत-कुछ कहा गया है। अमेरिका तथा यूरोप जाने पर मुझसे कितने ही मित्राने यह सवाल किया है कि भारतमें बहुत-से समाचारपत्र अब भी क्यों अंग्रेजीमें निकल रहे हैं। कितने ही अमेरिकन विचारकोंको यह एक अविश्वसनीय सी बात मालूम होती है कि गुलामीसे मुक्त एक स्वाधीन देशमें भी बहुत-से लोग ऐसे पत्रोंपर अवलम्बित रहें जो विदेशी भाषामें प्रकाशित होते हों। पूरबके कुछ देशोंमें, जहाँ राष्ट्रीयताकी भावना उतनी ही जोशभरी तथा तीव्र है जितनी भारतमें, विशेषकर 'मलयपूर्व' के देशोंमें, मुख्य समाचारपत्र स्थानीय भाषाओंमें प्रकाशित होते हैं और अंग्रेजीके समाचारपत्र विदेशी लोगोंकी आवश्यकता पूरी करनेके लिए या किसी खास वर्गके हित-साधनके लिए प्रकाशित होते हैं। किसी विदेशी विचारकको इस बातका विश्वास दिलानेके लिए काफी माथा पच्ची करनी पड़ती है कि भारतकी स्थितिपर उसके इतिहासकी दृष्टिसे विचार करना चाहिये और अंग्रेजीका प्रशासनकी भाषा होना ही देशमें अंग्रेजीके कई प्रभावशाली पत्रोंके अस्तित्वका कारण है। फिर भी यह बात मान ली जाती है कि अंग्रेजीका महत्त्व घटता जा रहा है और वर्तमान स्थितिको देखते हुए सन् १९६५ में हिन्दी देशकी राष्ट्रभाषा बन जायगी। देशके विभिन्न राज्योंमें परस्पर पत्र व्यवहार करने एवं प्रशासन सम्बन्धी आपसके मामलोंमें तो अवश्य ही उसका प्रयोग होने लगेगा। यह बात सोची नहीं जा सकती कि अंग्रेजी भारतकी एतदर्थ राष्ट्रभाषाके रूपमें अपना स्थान बनाये रहेगी, क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय विचार विनिमयकी भाषाके रूपमें उसकी अनेक अच्छाइयोंके बावजूद और उसका साहित्य बहुत विस्तृत एवं बहुविषय व्यापी होते हुए भी, यह यहाँके लोगोंकी

सका या दिलोंमें अपनी जड़ नहीं जमा सकी। अंग्रेजीके सम्बन्धमें, ऐतिहासिक कारणोंसे, काफी विरोधी भावना फैली हुई है। वह देशके विदेशी प्रभुओंकी भाषा रही है और कोई भी व्यक्ति ऐसी आकस्मिक स्थितिकी कल्पना नहीं कर सकता जिसमें यह भाषा सर्वसाधारण द्वारा राज्योंके आपसके पत्रव्यवहार एवं संचार साधनके रूपमें स्वीकार कर ली जाय।

देशी भाषाओंके पत्रोंका महत्त्व तथा प्रभाव बढ़ना अनिवार्य है और मुझे प्रसन्नता है कि इस पुस्तकमें उनके विकासका विशेषज्ञकी दृष्टिसे लिखा गया श्री ए० एन० शिवरमणका पर्यालोकन दिया गया है, जिन्हें देशी भाषाओंके पत्रोंकी अच्छी जानकारी है। बाहरके और देशके भीतरके विज्ञापनदाता धीरे-धीरे यह बात समझते जा रहे हैं कि उनके लाभकी दृष्टिसे देशी भाषाओंमें निकलनेवाले पत्रोंका अंग्रेजीके पत्रोंसे अधिक महत्त्व है। मुझे ऐसे कुछ मामलोंकी जानकारी है जहाँ विज्ञापन छपवानेका आयोजन करते समय अंग्रेजीके पत्रोंका नाम हटाकर देशी भाषाओंके पत्रोंको अग्रमान्यता दी गयी है। फिर भी चेतावनीके रूपमें मैं यह कह देना चाहता हूँ कि प्रशासनकी भाषाके रूपमें अंग्रेजीके हट जाने पर देशकी सभी भाषाओंके पत्रोंको बढ़ी हुई ग्राहक-संख्याका लाभ न होगा। पन्द्रह वर्षोंके बाद जब हिन्दी राष्ट्रभाषाके पदपर आसीन हो जायगी और प्रशासनकी भाषा बन जायगी, तब अंग्रेजीके पत्रोंका स्थान हिन्दीके पत्रोंको मिल जायगा। कुछ लोग यह बात नहीं मानते कि हिन्दी कभी भी सब इलाकोंकी भाषाके रूपमें मान्य हो सकेगी। वे समझते हैं कि जहाँ हिन्दी भाषा बोली नहीं जाती, उन क्षेत्रोंमें वहाँकी क्षेत्रीय भाषा ही प्रशासनकी भाषाका स्थान ग्रहण करेगी। मैं भविष्यद्-वक्ता नहीं हूँ और मैं नहीं कह सकता कि इस कथनको हम, स्थितिका निराशापूर्ण चित्र कहकर, अमान्य ठहरा देना चाहिये या इसे वास्तविक निर्धारणके रूपमें स्वीकार कर लेना ही ठीक होगा। हम लोग जाने हुए तथ्योंके आधारपर ही तर्क-वितर्क कर सकते हैं। हमारे संविधानमें यह

बात लिख दी गयी है कि हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा होगी और जबतक संविधानमें परिवर्तन नहीं कर दिया जाता, तबतक हिन्दीको ही हमें भाषा सम्बन्धी भावी नीतिका लक्ष्य मानना होगा। जब हिन्दी प्रशासनकी भाषा बन जायगी, तब हिन्दी पत्रको वही महत्त्व एवं प्रभाव क्षेत्र प्राप्त हो जायगा जो इस समय किसी अंग्रेजीके पत्रको प्राप्त है, और जब हिन्दीका देशके विभिन्न भागोंमें अधिक प्रचार हो जायगा, अधिक लोग उसे बोलने लगेंगे, तब अन्य देशी भाषाओंके समाचारपत्रोंसे कहीं अधिक प्रभाव हिन्दीके पत्रका होगा, क्योंकि हिन्दीको तब राज्य-भाषा बननेका गौरव प्राप्त हो जायगा। देशी भाषाओंके पत्रोंके विकासकी यह प्रक्रिया अनिवार्य है और सब लोगोंको प्रसन्नतापूर्वक इसका स्वागत करना चाहिये—उन लोगोंको भी जो अंग्रेजी भाषाकी पत्रकारीसे ही जीवन-यापन करते रहे हैं और जिन्होंने उसे ही जीविकाका साधन बना रखा था। विकासमें ऐसे टेलीप्रिण्टरोंके आविर्भावसे सहायता मिलेगी, जिनके द्वारा समाचारपत्रोंके पास देशी भाषाओंमें ही समाचार संप्रेषित किये जा सकेंगे। इसके साथ-साथ यह भी आशा की जाती है कि इस यांत्रिक साधनकी पूर्ति हो जानेपर लिपिमें भी आवश्यक सुधार किया जायगा। पता चला है कि विभिन्न देशी भाषाओंकी लिपिमें ऐसी कठिनाइयाँ हैं जिनके कारण उनके समाचार टेलीप्रिण्टर द्वारा शीघ्रतासे सम्प्रेषित करना सुविधाजनक नहीं और इसी तरह कम्पोज करनेवाली मशीनमें उन्हें कम्पोज करना भी मुश्किल होता है। यहाँ देशी भाषाओंके उत्साही शुभचिन्तकोंसे आशा की जाती है कि वे भाषाओंकी उन्नतिके लिहाजसे लिपिके सुधारमें आवश्यक सहायता प्रदान करेंगे।

कुछ लोगोंने यह आशंका प्रकट की है कि भारतमें पत्रकारकलाका विकास होते समय भविष्यमें हमारे पत्र कहीं पश्चिमके 'रजनकारी' पत्रोंकी कुछ अशोभन बातोंका अनुकरण न करने लगें—जैसे व्यक्तिके निजी जीवनमें हस्तक्षेप करना, समय-समयपर ऐसी अपकीर्तिकर गन्दी बातें प्रकाशित करना जिनका सार्वजनिक हितसे वस्तुतः कोई

सम्बन्ध न हो और प्रशासनकी कमजोरियोका सनसनीखेज भण्डाफोड करनेके बहाने अर्द्ध सत्य बात प्रकाशित करते रहना । दुर्भाग्यवश यह बात सच है कि देशके कुछ हिस्सोमें ऐसे पत्र निकलने लगे है जिनका ध्येय यही जान पडता है कि "प्रतिदिन एक न एक रहस्यका उद्घाटन करना, चाहे बात सत्य हों या झूठ ।" ऐसे पत्रोंको इतने अधिक ग्राहक प्राप्त करनेमे भी सफलता मिल गयी है जितने-की आशा उनके प्रवर्त्तकोने भी नहीं की थी । बम्बई जैसी महानगरीमे तो ये पत्र सार्वजनिक जीवनके लिए एक समस्या बन गये हैं । सचमुच ही हमारे लिए वह दिन बडे दु खका दिन होगा जब यह प्रवृत्ति, जो इस समय इने गिने एक दो छिट-फुट अखबारोमें ही देख पडती है, अधिक व्यापक रूप ग्रहण कर लेगी, क्योंकि सनसनीखेज पत्रकारीसे—आघातो तथा हलचलोंके बीच—तोषित पोषित होनेवाली जनता उत्तेजनशील बनकर शासनकी लोकतन्त्रात्मक प्रणालीके सचालनमे बाधा उपस्थित कर सकती है । इन पत्रोंके प्रतिकारका सबसे अच्छा उपाय सरकार द्वारा तथ्योका पूर्ण रूपसे प्रकट कर दिया जाना ही है, क्योंकि जिस पत्रको अपनी लिखी हुई बातोका बार-बार खण्डन प्रकाशित करना पडे और क्षमायाचना करनी पडे, उसकी कोई धाक पाठकोंपर नहीं रह जाती । शुरूमें उसकी ग्राहक सख्या भले ही बढ जाय किन्तु प्रारम्भिक सफलताके बाद उसका प्रचार घटने लगता है, जैसा कि बम्बईके एक (साप्ताहिक) पत्रके साथ निश्चित रूपसे हुआ । जिम्मेदार पत्रोका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे पत्रकारकलापर पडनेवाले इन हानिकर प्रभावोंको रोकनेमें सहायता करे । जैसा कि इस पुस्तकमें अग्रेजीके समाचारपत्रोंके सम्बन्धमें लिखे गये अपने लेखमे श्री ए० ई० चार्लटनने लिखा है, "ये पत्र भारतीय पत्रकारीकी मुख्य जडोंसे प्रस्फुटित नहीं होते, वे विदेशी पत्रोंसे प्रेरणा ग्रहण करते हैं, फिर भी समाचारपत्र पढनेवाली जनताको वे अपनी ओर आकर्षित करनेमें समर्थ होते हैं, इसमें सन्देह नहीं । इसके दो कारण हो सकते हैं । एक तो यह कि अन्य पत्र पढने और विचार

करनेकी जो सामग्री देते है उससे उसका सन्तोष नही होता। दूसरे, देशकी राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियोंमे असन्तुष्ट होकर भी वह उस ओर झुक पडती है।" यदि दो चार बडे-बडे अखबार प्रशासनकी कमजोरियाँ दिखलानेमे कायरता न प्रदर्शित करें और यदि वे उन पत्रोंकी प्रथम पंक्तिमे हों, जो सनसनी फैलानेकी चेष्टा न करते हुए भी प्रशासनकी दोषपूर्ण बातोंको प्रकाशमे लानेमे नहीं हिचकते, तो देशके इन छोटे आकारवाले पत्रोंकी दाल न गलने पावे। यह दुर्भाग्यकी बात है कि जब अधिकारियोंके सम्बन्धको कोई बात होती है तब कुछ पत्रोंकी यह प्रवृत्ति देख पडती है कि सार्वजनिक कर्त्तव्यमे की गयी ढिलाईपर वे अधिक जोर नही देते और जो कुछ नही होना चाहिये था उसके सम्बन्धमे एकाध बात इधर उधरकी कहकर उसे किसी तरह टाल देना चाहते है। यदि समाचारपत्रोंकी दुनियाके वे सदस्य जो अपनी जिम्मेदारी समझते है, उसी तरह अपने कर्त्तव्यका पालन करें, जिस तरह अमेरिकामे "सेण्ट लुई पोस्ट डिस्पैच" करता है, तो सनसनीखेज अखबारोकी रोजी ही समाप्त हो जाय। मै यह कहनेकी स्थितिमें हूँ कि यदि अपनी जिम्मेदारी समझनेवाला ऐसा कोई पत्र विशुद्ध सार्वजनिक हितकी भावनासे प्रेरित होकर किसी बातका भण्डा-फोड करता है, सनसनी फैलाकर केवल अपनी ग्राहक-संख्या बढानेकी गरजसे नही, तो उसे जनताका व्यापक समर्थन प्राप्त होगा। जब सन् १९५१ मे मैं संयुक्तराष्ट्र अमेरिकामे था, तब ट्रुमनके प्रशासनमें फैले भ्रष्टाचारका भण्डाफोडकर 'सेण्ट लुई पोस्ट डिस्पैच' ने जनताको आश्चर्यचकित कर दिया था। यह इतना जिम्मेदार पत्र है और अपने पत्रमें प्रकाशित तथ्योंकी सत्यताका उसे इतना अधिक ध्यान रहता है कि कितने ही मामलोंमे उसने रहस्योद्घाटन करते समय समाचारके ऊपर अपने संवाददाताका नाम भी छाप दिया था और जब मै वाशिंगटन पहुँचा तब उसका एक संवाददाता कांग्रेस (संसद) द्वारा स्थापित अनुसन्धान-समितिके सामने अपने कथनको प्रमाणित कर रहा था।

जनताने उसके साहस और जनसेवाकी भावनाकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

इस विषयमे मेरे मनमे तनिक भी सन्देह नहीं है कि भारतमे लोक-तन्त्रका भविष्य देशके समाचारपत्रोके हाथमे है। दुनियामे जब अधि-नायकत्वका जोर क्रमशः बढता जा रहा है, तब हमारा देश पूरबमे लोकतन्त्रका गढ बना हुआ है। हमारे चारो तरफ सरकारोंके और समाजके विभिन्न रूप उद्भूत हो गये हैं। पश्चिमके लोकतन्त्र-जगत्की परम्पराओमे पले होनेपर भी हम अपने देशमें लोकतन्त्रका ऐसा महान् परीक्षण कर रहे है जैसा दुनियामे आजतक कभी नही देखा गया। समाचारपत्र चाहे तो लोकतन्त्रको बना सकते या बिगाड सकते हैं। भार-तीय समाचारपत्रोको वह महान् कर्त्तव्य पूरा करना है जो दैवने उनके लिए निर्धारित कर दिया है। यह उचित ही है कि हमारी स्वतन्त्रताके प्रथम कुछ वर्षोंमे ही इस तरहकी एक पुस्तक प्रकाशित हो रही है जिसमे समाचारपत्रोके सम्बन्धमें बहुत सी जानकारी और उनके विभिन्न पहलुओपर विविध सुझाव दिये गये है और जिसकी सामग्री अपने अपने विभिन्न क्षेत्रोसे भलीभाँति परिचित सुयोग्य एव विद्वान् लेखकों द्वारा प्रस्तुत की गयी है। मुझे यह कहनेमें कोई सकोच नहीं कि पत्रकारीके विषयपर यह पुस्तक अपने ढगकी प्रथम रचना है जो विषयोंके अध्ययनकी उत्तमताके कारण उन लोगोके लिए अनिवार्य सहायकका काम देगी जो समाचारपत्रोंके विकासका अध्ययन करना चाहते हो। पुस्तक सचमुच ही सर्वोत्कृष्ट पुष्पोका चयन है और इसे सर्वसाधारणके लिए उपलब्ध कर देनेके कारण प्रोफेसर वूल्सले तथा उनके सहयोगी विशेष रूपसे प्रशसाके पात्र है।

नागपुर, ३ जून १९५३ — ए० डी० मणि

भारतीय पत्रकारकला

स्थिति-परिचय

१. अंग्रेजीके समाचारपत्र

भारतमे समाचारपत्रोका इतिहास देशके इतिहाससे अनिवार्यतः सम्बद्ध और उलझा हुआ सा रहा है। ब्रिटिश शासकोके विरुद्ध शब्दोकी जो लडाई लडी गयी उसमें यहाँके अंग्रेजी अखबारोंने भी काफी हिस्सा लिया। अंग्रेजी पत्रोंमें स्वतन्त्रताकी माँगपर जोर देनेके कारण सम्पादकोंको, जिनमें कुछ अंग्रेज भी थे, जेल जाना पडा या अन्य सजा भोगनी पडी। आज यदि अंग्रेजीके समाचारपत्रोंका आधार ठोस है, उनका प्रचार व्यापक है और वे उन्नति कर रहे हैं तो इसका कारण वह पुरानी एवं सम्मानपूर्ण परम्परा है जिसकी पृष्ठभूमिमें इनका विकास हुआ है।

भारतमे प्रकाशित होनेवाले अंग्रेजी भाषाके समाचारपत्रोंकी स्थिति पर विचार करनेका तबतक कोई अर्थ नहीं हो सकता जबतक पहले भाषाके प्रश्नपर निश्चित मत न प्रकट कर दिया जाय। यह तो स्पष्ट ही है कि यदि हिन्दीको वही पद दिया जानेवाला हो जो फ्रांसमे फ्रांसीसी भाषाको प्राप्त है तो फिर व्यावहारिक दृष्टिसे भारतमें केवल हिन्दीके समाचारपत्रोंका ही भविष्य उज्ज्वल माना जा सकता है। उस समय अंग्रेजीके जो समाचारपत्र या ग्रन्थ यहाँ प्रकाशित होंगे वे या तो उन विदेशियोंके कामके होंगे जो भारतमे निवास करते हों—ठीक उसी तरह जिस तरह यूरोपके देशोंमे छपनेवाले अंग्रेजी या अमेरिकन अखबारोंके संस्करण विदेशियोंके लिए होते है—या फिर वे उन थोडेसे भारतीयोंके

काम आयेंगे जो अंग्रेजी भाषासे अपना सम्पर्क बनाये रखना या स्थापित करना चाहें।

यद्यपि मेरा यह विश्वास है कि हिन्दीकी लोकप्रियता बहुत बढ़ जायगी और देशपर उसका अच्छा प्रभाव पड़ेगा तथा एकताका भाव भी उससे फैलेगा, फिर भी यदि मैं कहूँ कि अंग्रेजीके पत्रोंका भी अभी भारतमें समुचित स्थान बना रहेगा, तो मेरे इस कथनसे हिन्दीके असम्मानका अर्थ न लिया जाना चाहिये। अंग्रेजी भाषाके साथ अप्रिय घटनाओंकी जो स्मृति जुडी हुई थी वह हमारी आँखोंके सामने ही दूर होती जा रही है। इसके सिवा अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिसे अंग्रेजीका विशेष महत्त्व है, इससे कोई इनकार नहीं कर सकता। फिर अंग्रेजीमें विशेष योग्यता प्राप्त कर तथा अंग्रेजी साहित्यके गुणोंपर रीझ कर कितने ही भारतीयोंने जो परम्परा कायम कर दी है, वह आगे भी बनी रहेगी, इसकी यथेष्ट सम्भावना है।

भारतमें प्रकाशित होनेवाले अंग्रेजीके दैनिक तथा अन्य सामयिक पत्रोंने जो महान् कार्य किया है या इस समय कर रहे हैं, उसकी समाप्तिकी कल्पना तो तभी की जा सकती है जब दुनियासे पृथक् होकर एक कोनेमें पड़े रहनेकी उद्दाम राष्ट्रीय प्रवृत्ति यहाँके निवासियोंमें व्याप्त हो जाय किन्तु सौभाग्यवश इसके कोई भी लक्षण दिखाई नहीं दे रहे हैं। यदि ऐसा कोई भारी परिवर्त्तन देशमें नहीं होता तो मेरा विश्वास है कि यहाँका शिक्षित वर्ग काफी हदतक द्विभाषा-सेवी बना रहेगा। लार्ड लिटन ने भले ही विदेशी पौधेके रूपमें अंग्रेजीकी चर्चा की हो पर अब तो वह पौधा इस देशकी भूमिमें फूल फलकर इसकी अपनी चीज बन गया है। वह देशके शरीरका महत्त्वपूर्ण, सचेतन अंग सा हो गया है।

अंग्रेजीके पत्रोंकी लोकप्रियता बढ रही है और साथ ही उनका प्रभाव भी, इस कथनकी पुष्टिके लिए कितने ही स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध हैं। सन् १९३७ में, जब भारतका विभाजन नहीं हुआ था, यहाँमें कोई ३० दैनिक तथा उतने ही साप्ताहिक पत्र अंग्रेजी में निकलते थे। विभाजन

के बावजूद सन् १९४७ मे इनकी सख्या बढकर क्रमश' ५१ तथा २५८ हो गयी। और सन् १९५२ में तो अंग्रेजीके ७० दैनिक तथा २६१ साप्ताहिक पत्र विद्यमान थे।

इन ऑकडोमे छोटी-मोटी गलती हो सकती है। पत्रोकी सख्यामे उन पत्रोके विभिन्न सस्करणोकी सख्या भी शामिल है जो एक साथ ही दिल्ली, कलकत्ता आदि कई स्थानोंसे प्रकाशित होते हैं ओर इनमे दैनिक पत्रोंके साप्ताहिक सस्करणोकी भी गिनती कर ली गयी है किन्तु इसके बावजूद हमने जो अभिप्राय प्रकट किया है, वह बिल्कुल स्पष्ट है। अंग्रेजी भाषामें लिखे गये समाचारो तथा विचारोंकी मॉगमें जरा भी कमी नहीं हुई है। वस्तुत उसमें स्थिर रूपसे वृद्धि ही होती गयी है और स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके बाद भी उसका जोर कम नहीं हुआ है। इसलिए हमने इस विषयकी जो चर्चा यहॉ उठायी है, वह असगत नही है, क्योंकि हम जानते है कि हम एक वास्तविक और वृद्धिशील विषयका वर्णन कर रहे है जिसे भारतीय पाठकोंके एक बडे और प्रभावशाली भागने मान लिया है।

यह बात अक्सर देखनेमें आयी है कि जब जब विदेशी नागरिक भारत पहुँचे हैं तो यहॉके प्रमुख समाचारपत्रोंका गभीर स्वरूप देखकर तुरन्त प्रभावित हुए हैं। सनसनी पैदा करनेकी प्रवृत्तिके अभाव तथा अक्सर विश्वकी समस्याओं सम्बन्धी समाचारोंके विस्तृत रूपमें और बडी योग्यतापूर्वक प्रकाशित करनेके ढगसे उन्हे बडा आश्चर्य हुआ है। अमेरिका तथा ब्रिटेनमें मुट्ठी भर समाचारपत्र ही ऐसे हैं, जो अपने ग्राहकों की आकाक्षा पूरी करनेके लिए यही दृष्टिकोण अपनाते हुए अग्रसर होते है। इन विषयोंमे दिलचस्पी लेनेवाला कोई भी आगन्तुक जहॉ भारतके अंग्रेजी समाचारपत्रोंकी उत्तम रूपरेखा, गतिविधि आदिसे प्रभावित होता है वहॉ उसे यह देखकर आश्चर्य होता है कि साधारण पत्रोंकी ही नहीं हमारे मुख्य मुख्य समाचारपत्रोंकी भी प्रचारसख्या बहुत कम है।

सयुक्तराष्ट्र अमेरिकामें प्रतिहजार व्यक्तियोंके पीछे औसतन ३५४

व्यक्ति तथा ब्रिटेनमे ५९६ व्यक्ति समाचारपत्र मँगाते है। भारतमे इस तरहके कोई ऑकडे उपलब्ध नहीं है किन्तु स्पष्ट है कि यहॉका औसत बहुत ही कम होगा। भारतमे ऐसा एक भी समाचारपत्र नहीं है जो सन् १९५२ के अन्तमे प्रतिदिन एक लाखकी सख्यामे भी बिकता रहा हो। कितने ही प्रमुख पत्रोने इसकी लगभग आधी विक्रय-सख्याका ही दावा किया है। पश्चिमके समाचारपत्रोंकी भारी ग्राहक-सख्याकी तुलनामें ये ऑकडे बिलकुल ही नगण्य है, उदाहरणके लिए ब्रिटेनके कितने ही पत्रो की प्रचार-सख्या ४० लाखसे भी ऊपर पहुँच चुकी है। भारतीय पत्रोके रविवासरीय अक भी, उनकी तुलनामे, कम ही सख्यामे बिक पाते है। साप्ताहिको तथा मासिक पत्रोकी भी यही स्थिति है।

कम प्रचारके कारण

भारतके किसी भी समाचारपत्रकी प्रचार-सख्याके एकाएक बढ जानेकी इस समय कोई सम्भावना नहीं दिखाई देती। कौन-कौन सी बाते इस स्थितिके लिए जिम्मेदार है, उनपर विचार कर लेना हमारे लिए लाभजनक होगा। एक कारण तो यह है कि नित्य नये-नये पत्र निकलते चले जा रहे है। दूसरा कारण यह है कि पत्रोको नये-नये ग्राहक मुश्किल से ही मिलते हैं। अग्रेजीमें प्रकाशित समाचारपत्र पढ सकनेवालोंकी सख्या स्पष्टतः परिसीमित है और यह समझनेके लिए कोई कारण नहीं है कि इस सख्यामे द्रुतगतिसे वृद्धि हो सकती है। पाठको, ग्राहकोकी इस सीमित सख्याके लिए भी कितने ही पत्रोंमें प्रतियोगिता चलती है किन्तु अभीतक उनमेसे एक भी अपने अन्य प्रतियोगियोमे काफी आगे बढनेमे समर्थ नहीं हो सका है।

भौगोलिक परिस्थितियोंका भी इसपर काफी महत्त्वपूर्ण प्रभाव पडता है। ऐसे बहुसख्यक पाठक है जिनके पासतक उनका समाचारपत्र रेल द्वारा पहुँचनेमे आज भी चौबीस घण्टे लग जाते है। यद्यपि विमान-मार्गोंका जाल बिछ जानेके कारण दूर दूरके कुछ बडे शहरोतक अधिक तेजीसे अखबार पहुँचाना सम्भव हो गया है, फिर भी विभिन्न

क्षेत्रोंकी ओर जानेवाली रेलगाडियोंसे समाचारपत्र भेजनेके लिए आज भी उसके कई संस्करण, उदाहरणके लिए दिल्लीमें २४ घण्टोंके भीतर चार संस्करण, प्रकाशित करने पडते हैं। यहाँ एक बात और बतायी जा सकती है। किसी छोटे शहरसे यदि कोई स्थानीय पत्र निकलता है तो बाहरसे आनेवाले बड़े पत्रोंकी तुलनामें वह, समाचारोंके मामलेमें, कमसे कम बारह घण्टे आगे बढा हुआ रहता है। इसके सिवा वह स्थानीय घटनाओं, समाचारों आदिकी तरफ अधिक ध्यान दे सकता है जिनमें लोगोंकी खास दिलचस्पी रहती है, इसीसे बाहरके किसी बड़े पत्रके लिए उक्त छोटे स्थानीय पत्रको हडप जाना सम्भव नहीं हो पाता।

यही वजह है कि जबतक कोई छोटा समाचारपत्र अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रहता है, तबतक वह खबर प्रकाशित करनेका कार्य थोड़ेसे हाथोंमें केन्द्रीभूत होनेसे रोक सकता है और देशव्यापी दैनिक पत्रोंका प्रचार बहुत अधिक बढने नहीं दे सकता। इधर समाचारपत्रोंकी शृंखलासे उत्पन्न होनेवाले खतरेके सम्बन्धमें एक-दो बार विवाद चल चुका है किन्तु ऐसी कोई बात दिखाई नहीं देती जिससे मालूम हो कि सचमुच ऐसा कोई खतरा मोजूद है। अभी नहीं है तो आगे उत्पन्न हो सकता है, ऐसी कल्पना तो की जा सकती है किन्तु अभीतक यह नहीं देखा गया कि किसी समाचारपत्रको दो केन्द्र-स्थानोंसे प्रकाशित करनेकी व्यवस्था करनेसे कोई विशेष लाभ होने लगा हो और यह माननेके लिए कोई कारण नहीं प्रतीत होता कि प्रकाशनके केन्द्रोंकी संख्या बढा देनेसे खर्चके अनुपातमें अधिक मुनाफा होने लगेगा। आज शायद ही ऐसा कोई पूँजीपति हो, भविष्यमें तो इसकी और भी कम संभावना है, जो समाचारपत्रोंकी अलाभकर शृंखला स्थापित करनेमें मनमाना रुपया लगानेको तैयार हो। अमेरिकाके अनेक नगरोंमें समाचारपत्र प्रकाशित करनेका जैसा एकाधिकार देख पडता है, वैसी चीज भारतमें अभी अज्ञात है।

पत्रका प्रचार बढानेमे बाधक होनेवाला एक और कारण है जिसे प्रत्येक प्रकाशक भलीभाँति जानता है। यह है पत्रका मूल्य। बहुतसे सभाव्य पाठक ऐसे हैं, जो किसी बडे दैनिक पत्रकी एक प्रति डाई आने देकर खरीदनेमे अपने आपको असमर्थ पाते है। बाजारकी स्थितिका पर्यवलोकन करनेसे पता चलता है कि दाममे जरासी कमी हो जानेपर कुछ समाचारपत्रोकी ग्राहक-सूचीमे १२ से १४ बार तक उलट फेर होनेकी नौबत आयी। इससे एक महत्त्वपूर्ण नसीहत मिलती है किन्तु उसका अनुसरण करनेके लिए इस समय, जब अखबारी कागजके दाम बहुत चढे हुए हैं और जब युद्धके भयसे वे और भी तेज गतिसे चढ सकते हैं, बडे साहसकी आवश्यकता है।

मोटे तौरसे यह बात कही जा सकती है कि भारतके बडे-बडे समाचारपत्रोका प्रचार और प्रभाव राष्ट्रव्यापी न होकर क्षेत्र-विशेषतक ही सीमित है। कुछ अत्यन्त महत्वशाली पत्रोंने अपनी परिधि-सी बना ली है और उसीपर वे अपनी शक्ति एव ध्यान सकेन्द्रित करते रहे है। अपने क्षेत्रके भीतर तो वे अद्वितीय माने जा सकते है किन्तु अन्य स्थानोमे शायद ही कोई उन्हे पढता हो। कुछ पत्र ऐसे है जो दो केन्द्रोमे प्रकाशित होते है किन्तु अभी तक किसी भी समाचारपत्रने अपने दूसरे क्षेत्रमे उतना फैलाव करनेमे सफलता नहीं प्राप्त की जितना उसके पहले केन्द्रमें रहा है।

जो हो, किसी समाचारपत्रका दो स्थानोमे प्रकाशित होना विशेष महत्त्वपूर्ण है, खासकर ऐसी स्थितिमे जब प्रकाशनका एक स्थान केन्द्रमे या किसी राज्य (प्रान्त) की राजधानीमे हो। उससे पत्रकी प्रतिष्ठा बढ जाती है और वहाँके पाठकों तथा विज्ञापनदाताओंके लिए भी वह अधिक उपयोगी हो जाता है। यों तो कोई समाचारपत्र देशके किसी स्थानसे क्यों न प्रकाशित हो पर यह आवश्यक है कि केन्द्रमे उसकी एक समाचार-सग्रह करनेवाली सक्रिय सस्था हो। केन्द्रमे केवल सवाद कार्यालय स्थापित कर देनेसे, चाहे उसके कर्मचारी कितने ही सुयोग्य क्यों न हो

उतना लाभ नहीं हो सकता, जितना समाचारपत्र प्रकाशित करनेवाले सुव्यवस्थित कार्यालयसे। कारण स्पष्ट ही है। दोनों कार्यालयोंमें चौबीसों घण्टे सम्पर्क बना रहता है, सम्पादकीय लेखों, टिप्पणियोंकी अदला-बदली की जा सकती है और हर तरहकी पूछताछ करने आदिकी सुविधा रहती है।

इस सबका ऐसा हितकर प्रभाव पड़ता है जिससे विचार-दृष्टि अधिक व्यापक एवं उदार हो जाती है और प्रान्तीयताकी भावना बढ़ने नहीं पाती। इतनेपर भी स्थानीय प्राथमिकताएँ बड़ी प्रबल होती है और वे एक तरहसे पत्रको नियन्त्रित सी करती रहती हैं। सम्पादक लोग अपने पत्रोंको सच्चा राष्ट्रीय स्वरूप देनेके लिए चाहे जितनी कोशिश क्यों न करें, भौगोलिक स्थितियोंसे उन्हें युद्ध करना पड़ता है। इसमें उनकी जीत तबतक नहीं हो सकती जबतक हवाई यात्रा आजकी तुलनामें अधिक सस्ती, अधिक विश्वसनीय और अधिक देशव्यापी नहीं होती। बहुतसे सम्पादकोंको इसीमें सन्तोष हो जाता है कि उनके पत्र क्षेत्र-विशेषके लोगोंकी सेवा कर सकें और उनकी समस्याओं, भावनाओं आदिको प्रकट कर सकें। अक्सर स्थानीय आधारपर पत्रोंमें गहरी प्रतियोगिता होने लगती है और जीत साधारणतया उस पत्रके मालिकोंकी ही होती है जिसके पास सबसे अधिक साधन हों, क्योंकि आज किसी अच्छे समाचारपत्रकी सफलताके लिए काम करनेवालोंका उत्साह एवं कार्य-तत्परता ही पर्याप्त नहीं होती। समाचार मँगानेके जरियों और पत्रके रूप-रंगमें सुधार करनेके लिए रुपया खर्च करना आवश्यक है। आर्थिक मन्दीके समय छोटे समाचारपत्रोंका, जो इतने महत्त्वका काम करते हैं, सङ्कट बढ़ जाता है और उनके सामने जीवन-मरणकी समस्या उपस्थित हो जाती है।

भारतीय भाषाओंके समाचारपत्रोंमें दिलचस्पी लेनेवाले लोगोंकी यह आम शिकायत है कि अंग्रेजी पत्रोंको इनकी अपेक्षा अधिक विज्ञापन मिलता है। यह बात निस्सन्देह सत्य है और इसका आंशिक कारण यह

है कि ऐसी परिपाटी सी चल पड़ी है। दूसरा कारण विज्ञापन सम्बन्धी यह सिद्धान्त है कि जिस वर्गके लोगोंके पास अधिक पैसा हो, उसीसे (घड़ी आदि सामान) खरीदनेका अनुरोध किया जाय। देशी भाषाओंके पत्रवाले यह तर्क प्रस्तुत करते है कि बहुतसे अंग्रेजी पत्रोंकी अधिक बिक्रीका मुख्य कारण यह है कि उन्हे सरकारी विज्ञापन खूब मिलते हैं। इसमें सत्यका अंश अवश्य है किन्तु जैसे जैसे देशी भाषाओंके पत्रोंका स्तर ऊँचा होता जायगा और उनके प्रचारमे भी वृद्धि होगी, वैसे वैसे इस स्थितिमें भी सुधार और हेर फेर होता चलेगा, इसमें सन्देह नहीं। सरकारी विज्ञापनोंकी बात छोड दे तो भी यह बात साफ है कि उपभोक्ताओंकी आवश्यकताका माल बेचनेवालोंके लिए अंग्रेजी पत्रोंमे विज्ञापन छपाना अधिक लाभजनक है। सारे देशके अंग्रेजी पत्रोंके लिए विज्ञापनके एक ही मजमूनकी प्रतियोंसे काम चल जायगा किन्तु यदि देशी भाषाओंके पत्रोंमें विज्ञापन छपवानेका उपक्रम किया जाय तो फिर कई तरहके ब्लाक तैयार कराने पडगे और कई बार तो ऐसी नौबत आयगी कि विज्ञापन छापनेका आदेश देनेवाला व्यक्ति अपने मालका एक भी विज्ञापन पढ़ने-समझनेमें असमर्थ रहेगा।

पत्रोंका झुकाव

हम पहले कह चुके है कि जब कोई विदेशी हमारे समाचारपत्रोंको देखता है तो वह उनकी गंभीरतासे तथा सनसनी पैदा करनेकी प्रवृत्तिके अभावसे प्रभावित होता है। यह प्रभाव किसी भी तरह बेबुनियाद नहीं कहा जा सकता और इसका विकास क्योंकर हुआ, इसपर विचार कर लेना आवश्यक है। भारतमें जबसे समाचारपत्रोंका जन्म हुआ, प्रायः तभीसे उनकी सबसे अधिक दिलचस्पी राजनीतिसे रही है। जेम्स-हिक्कीने सन् १७८० में बंगाल गजेट प्रकाशित किया। इंग्लैण्डका प्रथम दैनिकपत्र इसके लगभग ८० वर्ष पहले प्रकाशित हो चुका था। हिन्दी द्वारा दी गयी "गालियोंकी गठरीको" विशुद्ध रूपसे राजनीतिक समझना शायद रूपक या सादृश्यका अनावश्यक विस्तार करना है, फिर भी उसने स्वयं

लिखा है कि "हिकीका मत है कि समाचारपत्रोकी स्वतन्त्रता प्रत्येक अंग्रेज नागरिकके लिए अपने जीवनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है और स्वतन्त्र सरकारके लिए भी यह परमावश्यक है।" उन्होने अपने कार्य द्वारा इसकी नजीर भी रखी। बादके कई सम्पादकोंने तत्परतासे इसका अनुसरण किया। हिकीने अपने सिद्धान्तका परित्याग करनेके बजाय जेल जाना बेहतर समझा।

जबसे भारतीय सम्पादकोने देशकी आजादीकी लडाईके लिए अपनी लेखनीका प्रयोग करना शुरू किया, उसके पहलेसे ही समाचारपत्रोने राजनीतिक मामलोमे गहरी दिलचस्पी लेना आरम्भ कर दिया था। शीघ्र ही एक न एक तरहकी दोष वेचनकी पद्धति काममें लायी जाने लगी, हालॉकि जिन लोगोंके विरुद्ध इसका प्रयोग हुआ, वे स्वयं "शासक-जाति' के थे। बम्बई तथा मद्रासके सम्पादक भी, कलकत्तेके उक्त पत्रके सम्पादककी तरह, सकटमें पड गये। अधिकारि-वर्ग अर्थात् ईस्ट इण्डिया कम्पनीके साथ उनका झगडा शुरू हो गया। कम्पनी अपनी स्थितिके सम्बन्धमें हमेशा चौकन्ना रहती थी और बाहरी समझे जानेवाले लोगो द्वारा की गयी आलोचनाको बिलकुल बरदाश्त नही कर सकती थी। एक आयरिश परिवारमें उत्पन्न विलियम डु आनेका कलकत्तेमें पत्र-सपादकके रूपमें विचित्र अनुभव हुआ। वह अमेरिकाका बडा विरोधी था। उस पर मार पडी, मुकदमा चला और अन्तमें लम्बी-चौडी कानूनी लडाईके बाद वह समुद्रके उस पार भेज दिया गया।

शुरूके इन कार्यकर्त्ताओंमें सबसे प्रसिद्ध कदाचित् "कलकत्ता जर्नल" के सम्पादक श्री जेम्स सिल्क बकिंघम थे। पहले ये नौवाहक थे किन्तु बादमे समुद्रयात्राका साहसिक जीवन छोडकर इन्होंने पत्र-सम्पादनका कार्य शुरू कर दिया। राजनीतिक विचारोंकी दृष्टिसे ये 'व्हिग' दलके थे, अत कम्पनीसे इनकी शीघ्र ही खटकने लगी और इन्होंने सचमुच ही "अप्रिय सत्य" कहनेकी मनमें ठान ली। इनका पत्र इतना लोकप्रिय हो गया कि उससे इन्हे ८ हजार पौण्डकी वार्षिक आमदनी होने लगी

और उस समयके अन्य सम्पादक-बन्धु इनसे द्वेष करने लगे। शासन या सरकारी सत्ताके विरुद्ध ये निरन्तर आन्दोलन करने लगे और इन्होंने पादरी लोगोंकी धर्मव्यवस्था पर भी आक्रमण किया। इन्हें कई बार समुद्र-पार भेज देनेका प्रयत्न किया गया किन्तु लार्ड हेस्टिंग्जकी सहिष्णु नीतिके कारण किसी तरह इनकी रक्षा हो सकी। वस्तुत जबतक हेस्टिंग्ज गवर्नर-जनरल बने रहे, तभी तक ये भी कायम रह सके। ज्योंही वे गये कि इनके विरोधियोंका गुट, जो अभी तक दबा हुआ था, प्रबल हो गया और ये जहाजमे बैठाकर भारतसे हटा दिये गये। यहाँ यह बात लिख देना दिलचस्पीसे खाली न होगा कि बकिंघमके प्रसिद्ध होनेके दो वर्ष पहले ही श्री जी भट्टाचार्य 'बंगाल गजट' की स्थापना कर चुके थे। यह पत्र अधिक दिनों तक जीवित न रह सका किन्तु विशुद्ध भारतीय सञ्चालित प्रथम पत्र होनेके कारण इसे ऐतिहासिक ख्याति प्राप्त हुई।

प्रारम्भिक कालकी इस झलकमे उस वातावरणका पता चल जाता है जिसमे यहाँ समाचारपत्रोंका जन्म हुआ। संघर्षमयी परिस्थितियोंमे उनका संवर्द्धन हुआ, यद्यपि यह सत्य है कि किसीको कम और किसीको अधिक संघर्ष करना पडा। प्रत्येक भारतीय सम्पादकके सामने स्पष्ट रूपमे एक लक्ष्य विद्यमान था, भले ही वहाँ तक पहुँचनेके लिए भिन्न भिन्न मार्गका अनुसरण किया गया हो। अवश्य ही यह लक्ष्य विदेशी प्रभुत्वसे स्वतन्त्रता प्राप्त करना था और यदि भारतीयो द्वारा सम्पादित पत्रोंमे राजनीतिक चर्चाको ही अन्य सब विषयोंसे अधिक महत्त्व दिया गया हो तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। यहाँपर यह आपत्ति उठायी जा सकती है कि यह कथन आंग्ल-भारतीय पत्रोंपर लागू नहीं होता। यह ठीक है कि देशकी स्वतन्त्रताका जो उत्कट अनुराग भारतीयोंने प्रदर्शित किया, उसमे उन्होंने उनका साथ नहीं दिया, यद्यपि उन्होंने वैधानिक सुधार तथा उन्नतिके लिए प्रशंसनीय व्यग्रता प्रकट की थी। जब देशका राजनीतिक संघर्षके वातावरणमे प्रत्यक्ष रूपमे उन्हें भी उलझना पड़ा। उससे वे अपने आपको बचा न सके। यद्यपि उनमेंसे कितने ही पत्र सरकार

रास्तेपर थे, फिर भी वे अपनेको पूर्णत अलिप्त नहीं रख सकते थे और कुछने तो अधिकारि वर्गके नियन्त्रणका विरोध कर उन प्रक्रियाओंमे कम सहायता नहीं पहुँचायी जिनके कारण अन्तमे हमे आजादी हासिल हुई। कभी कभी तो इन पत्रोंने राजनीतिक प्रश्नोंके सम्बन्धमे अच्छी दूरदर्शिता प्रदर्शित की थी।

इस सम्बन्धमे शायद एक बात और सगत जान पडती है। आग्ल-भारतीय समाचारपत्र मुख्यतया उन भारत-स्थित अंग्रेजोंके लिए निकाले जाते थे, जो उच्च मध्य वर्गके तथा किसी अंश तक सुशिक्षित होनेके कारण, इंग्लैण्डमे रहनेपर उन 'लोकप्रिय' पत्रोके ग्राहक नहीं बन सकते थे जो उस समय वहाँ अपनी शक्ति बढा रहे थे। हमे बडी प्रसन्नता होती यदि हम कह सकते कि उन्होंने आलोचना एव आचरणका उच्च स्तर कायम रखनेका प्रयत्न किया, किन्तु यह बात सत्यके विपरीत होगी। कुछ सम्माननीय अपवाद तो अवश्य थे किन्तु अधिकतर आग्ल भारतीय समाचारपत्रोंने अपने लेखों, टिप्पणियों आदिमें ऐसा तरीका अपनाया जिससे अपने विदेशी शासकोंसे छुटकारा पानेका निश्चय करनेमे भारतीयोंको यथेष्ट प्रेरणा मिली।

अंग्रेजीमें प्रकाशित होनेवाले भारतीय समाचारपत्रोंने उस स्थितिके उत्पन्न करनेमें, जिसमे सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न स्वतन्त्र भारतीय गणराज्यका घोषित किया जाना सम्भव हो सका, कितना अधिक हिस्सा लिया, इनकी ब्योरेवार चर्चा करना यहाँ अनावश्यक है। फिर भी यह महत्त्वकी बात स्मरणीय है कि उक्त कार्यमें कारगर रूपसे हिस्सा ग्रहण करनेके पूर्व समाचारपत्रोंके लिए अधिकसे अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना आवश्यक था। इस दृष्टिसे अंग्रेजीके पत्रोंने जो कुछ किया, वह प्रशसनीय ही कहा जायगा और यही बात देशी भाषाओंके पत्रोंके सम्बन्धमे लागू होती है। आजके सम्पादकोंके ऊपर इस बातकी जिम्मेदारी है कि वे लोक-तन्त्रकी इस महत्त्वपूर्ण आवश्यकताको समझे और हर हालतमे उसे बनाये रखने तथा उसकी सुरक्षाका प्रयत्न करें। यह भी स्मरण रखना आव-

श्यक है कि बाहरी दुनियाके सामने अंग्रेजीके समाचारपत्र जो मोरचा कायम कर सकते हैं वह देशी भाषाओंके पत्रोंके लिए कदापि सम्भव नहीं। इस दृष्टिसे उनका उत्तरदायित्व भी महान् है।

कुछ विशिष्टताएँ

भारतीय पत्रकार अंग्रेजीके पत्रोंकी कुछ विशिष्टताओंपर अभिमानकी दृष्टिसे देख सकते हैं। यहाँके पत्रोंने कितनी ही ऐसी खराबियोंसे बचे रहनेका प्रयत्न किया है जो अन्य देशोंके समाचारपत्रोंमें पायी जाती हैं। उदाहरणके लिए ब्रिटेन तथा अमेरिकाके कतिपय पत्रोंमें, जिनकी ग्राहक-सख्या बहुत बढी हुई है, लोगोंके व्यक्तिगत जीवनकी गुप्त एव अशोभन बातें छापने की जो प्रवृत्ति पायी जाती है और जो उनके लिए भारी कलङ्कस्वरूप है, उसका यहाँ प्राय सर्वथा अभाव है। किसीके साथ कोई दु खद घटना हो जाती है तो उसका अनुचित लाभ उठाने या उसे सनसनीखेज रूपमें छापनेका प्रयत्न जैसा वहाँ होता है, यहाँके अंग्रेजी पत्रो द्वारा नहीं किया जाता। यहाँके पत्रोंमें यौन विषयोंपर अपेक्षाकृत कम ही जोर दिया जाता है (यद्यपि अब ऐसे लक्षण दिखाई पड रहे हैं जिनसे प्रतीत होता है कि यह अन्तर घटता जा रहा है) और अपराधकी प्रत्येक घटनापर उसी दृष्टिसे विचार किया जाता है जिससे करना चाहिये। व्यक्तिगत द्वेष और झगड़ेकी प्रवृत्ति क्वचित् ही देख पडती है।

देशके भीतरकी और विदेशोंमें होनेवाली राजनीतिक महत्त्वकी घटनाओंके लिए अंग्रेजी पत्रोंमें निश्चित रूपसे अधिक स्थान दिया जाता है। किस समाचारको कितना महत्त्व देना चाहिये, इसे समझनेकी यथोचित क्षमता इनमें पायी जाती है और राष्ट्रीय तथा स्थानीय समस्याओंकी ओर भी समुचित ध्यान दिया जाता है। बहुतसे पत्रोंमें 'सम्पादकके नाम' जो चिट्ठियाँ छपती हैं, उनमें कई विभिन्न विषयोंकी चर्चा की जाती है। इस तरह पाठकोंको अपने विचार प्रकट करनेके लिए अच्छा अवसर मिलता है। देशके प्राय• प्रत्येक अंग्रेजी सवादपत्रमें इन विषयोंकी गभीर चर्चा की जाती है—परराष्ट्रनीति, औद्योगिक उन्नति तथा लोकसभा,

विधानसभा, स्थानीय संस्थाओं आदिमें प्रस्तुत किये गये विषय।

सब तो नहीं पर कुछ पत्र अवश्य अपने पाठकोंको इस बातकी जानकारी देनेकी चेष्टा करते हैं कि अधिकांश जनता किन स्थितियोंमें रह रही है—उन गाँवोंकी जनता जिनकी हालत आज भी करीब-करीब वैसी ही है जैसी सैकड़ों वर्ष पहले थी। राष्ट्रीय नेताओंके भाषण बराबर, कभी-कभी तो अत्यधिक विस्तारके साथ, छापे जाते हैं और इस बातका खयाल नहीं रखा जाता कि वक्ता कई बातें बार-बार दोहराता रहता है। फिर भी उससे पाठकको राष्ट्रीय प्रवृत्तियोंके विश्लेषण और पृथक्-पृथक रूपमें समझनेका अवसर मिल जाता है।

सम्पादकीय लेख अक्सर बहुत ऊँचे स्तरका होता है, खासकर अधिक महत्त्वपूर्ण दैनिक पत्रोंका। समाचारोंको सजाने आदिका ढंग विभिन्न तरहका देखा जाता है। एक ओर तो 'हिन्दू' जैसा पत्र है जिसमें पचासों वर्षोंसे प्रायः कोई परिवर्त्तन ही नहीं हुआ और जिसके प्रथम पृष्ठपर अब भी विज्ञापन छापे जाते हैं जिनका उस पृष्ठपर छापना 'मैन-चेस्टर गार्जियन' जैसे पत्रतकको अन्ततोगत्वा बन्द कर देना पड़ा है। दूसरी ओर स्टेट्समैन पत्र है जिसकी सजावट अधिक भड़कीली, किन्तु फिर भी शानदार होती है। बहुतसे पत्रोंने छपाई-सफाईके मामलेमें अपनी ऐसी विशेषता प्राप्त कर ली है जिसके कारण वे अनायास ही पहचाने और अन्य पत्रोंसे पृथक् किये जा सकते हैं। ऐसे उत्कृष्ट पत्रोंमें 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' भी एक है। पत्रमें राजनीतिक विषयोंकी यथेष्ट चर्चा और आलोचना पढ़नेको मिलती है तथा राजनीतिक घटना-प्रवाहों एवं विशिष्ट व्यक्तियोंके सम्बन्धमें सबसे टटकी जानकारी पाठकों तक पहुँचानेके लिए तीव्र प्रतियोगिता देख पड़ती है। यहाँ यह बात कही जा सकती है कि राजनीतिक चर्चाके पीछे आवश्यकतासे अधिक जगह घिर जाती है, अतः इस दृष्टिसे प्रश्नके दूसरे पहलूपर भी विचार कर लेना चाहिये, क्योंकि यह बात ऐसी है जो वर्त्तमान तथा आनेवाली पीढ़ियोंके पत्रकारोंके लिए विशेष दिलचस्पीकी है।

जब पत्रोंकी ग्राहक-संख्या कम होती है तो विज्ञापनकी दर नीची रखनी पडती है जिससे बार-बार आमदनीकी कमीकी समस्याका सामना करना पडता है। परिणाम यह होता है कि सम्पादक जितना चाहता है उतना खर्च नहीं कर पाता और उसे बडी कठोरताके साथ अपना आय-व्ययक सीमित करना पडता है। हमारे पत्रोंमें जो मुख्य त्रुटियाँ पायी जाती हैं, उनकी यही वजह है। सब पत्रोंमें प्राय एक ही जैसी बातें प्रकाशित होती हैं। समाचार-समितियाँ एक ही तरहकी सामग्री सबके पास भेजती हैं, सहकारी सम्पादकोंकी संख्या इतनी कम होती है कि उन्हें कापीको फिरसे लिखकर उसे नया रूप देने, उसमें एक तरहकी ताजगी-सी ला देने, का समय ही नहीं मिलता। समाचारों या घटनाओं के साथ पूर्वपीठिकाके रूपमें ऐसी टिप्पणियाँ या जानकारी देनेका प्रयत्न, जो पाठकके लिए उपयोगी हो, क्वचित् ही किया जाता है। संवाद-दाताओं तथा समाचार-संग्राहकों (रिपोर्टर्स) के ऊपर प्रतिदिनका नियमित काम इतना अधिक लाद दिया जाता है कि उन्हें अपनी बुद्धि लडाकर नये विचार उत्पन्न करनेवाली या मौलिक ढंगसे तैयार की गयी सामग्री प्रस्तुत करनेका अवसर ही नहीं मिल पाता। पश्चिमके समाचार-पत्र जो बहुत-सी अच्छी-अच्छी बातें पाठकोंको देते हैं, उनका यहाँ अभाव रहता है। घटना-विशेषसे सम्बद्ध चित्रावली अक्सर तब छापी जाती है जब वह पुरानी, असामयिक-सी, पड जाती है। खेलों सम्बन्धी समाचार प्राय' शुष्क ढंगसे, कल्पनाका तनिक भी सहारा लिये बिना, प्रकाशित किये जाते हैं और कितने ही पत्रोंके कार्यालयोंमें व्यापारिक समाचार छापनेके लिए इतना ही परिश्रम किया जाता है कि एक दिन पहलेके छपे हुए भावोंका प्रूफ उठवाकर उसमें नित्यकी तरह आवश्यक संशोधन कर दिया जाय।

विदेशोंसे प्राप्त होनेवाले समाचारोंके लिए अधिकतर समाचारपत्र संवाद-समितियों तथा सिण्डिकेटोंका ही मुँह ताका करते हैं। दो चार महत्त्वपूर्ण पत्र ही ऐसे हैं जिन्होंने विदेशोंमें अपने पत्र-प्रतिनिधि नियुक्त

कर रखे हो। इसके कारण जो भारी बाधाएँ आती हैं, वे स्पष्ट ही हैं। इन्हींका यह परिणाम है कि हमारे पत्रोंके समाचारवाले स्तंभोंमें एक बात निकलती है और सम्पादकीय स्तंभमें दूसरी। दोनोंमें अक्सर मेल नहीं बैठता। विदेशी मामलों पर सम्पादकीय लेख लिखनेवालोंको संवाददाताओं या प्रतिनिधियों द्वारा सीधे और प्राथमिक रूपसे भेजे गये समाचारोंका सहारा नहीं मिल पाता। उन्हें जिस सामग्रीके आधारपर काम चलाना पड़ता है, वह सर्वदा पक्के तौरसे वास्तविक या यथार्थ-सी नहीं होती। दूसरे अखबारोंसे काटे हुए अंश सामने रहते हैं और विदेशी सरकारों द्वारा अपने ढंगसे प्रचारित की गयी खबरें भी उपलब्ध रहती हैं किन्तु विशेष प्रतिनिधियों या कर्मचारियों द्वारा पूर्वपीठिकाके रूपमें उपयोगी सामग्री प्राप्त नहीं हो पाती।

विशेषताएँ या अपने विशिष्ट विवरण, लेख, अनुमान आदि यदा-कदा ही देख पड़ते हैं, क्योंकि विशेषज्ञोंकी सेवा प्राप्त करनेमें काफी रुपया खर्च करना पड़ता है। घटनाओंके मर्ममें न जाकर ऊपर ऊपरसे उन्हें छूनेका प्रयत्न करनेवाले अग्रलेखोंका मुख्य कारण यही होता है कि लिखनेवाले सम्पादकको न सोचने-विचारनेका अवसर मिलता है और न किसी तरहके अनुसन्धानका। संगीत आदि कलाओंपर प्रायः भद्दे या बेसिर पैरके लेख प्रकाशित होते हैं, क्योंकि लेखकोंके पास उपयुक्त साधनों एवं योग्यताकी कमी होती है। चलचित्रोंकी गंभीर ठोस आलोचना लिखना मानो कोई जानता ही नहीं। इन सब आलोचनाओंके अनेक सम्मानित अपवाद भी हैं इसमें सन्देह नहीं। हमने तो ये बातें केवल एक ही उद्देश्यसे लिखी हैं—यदि सम्भव हो तो उन कठिनाइयोंसे बचनेका मार्ग ढूँढ़नेमें सहायता की जाय जिनका ज्ञान प्रत्येक सम्पादकको—और बहुतसे अखबारोंमें काम करनेवाले पत्रकारोंको भी—है। अपर्याप्त साधनोंके रहते हुए भी इनमेंसे कितने ही अखबार लम्बे अरसेसे अपना काम चलाते रहे हैं और जब वे ऐसे समयकी प्रतीक्षा कर रहे हैं जब पाठकोंके सामने अधिक अच्छा उत्पादन प्रस्तुत करना उनके लिए

अपेक्षाकृत अधिक आसान होगा। समाचारपत्रोंको अब स्वतन्त्रताकी एक और लड़ाईका सामना करना है और वह होगी आर्थिक कठिनाइयोंपर विजय पानेकी लड़ाई।

इसमें जल्दी ही सफलता मिल जायगी और उसके लिए कठोर संघर्ष न करना पड़ेगा, ऐसी आशा करना व्यर्थ है। जब अखबारी कागजका दाम इस तरह तेजीसे चढ़ता-उतरता हो, तब बचतमें होनेवाले मुनाफेकी मामूली अच्छी रकम भी कुछ ही महीनोंके भीतर भारी हानिका रूप ग्रहण कर सकती है। फिर भी क्षेत्र और विषयोंका विस्तार करने, पाठकों तथा विज्ञापन दाताओंके दिलोंमें विश्वास उत्पन्न करने और उपलब्ध साधनों तथा बुद्धि-चातुर्यके बलपर ईमानदारी एवं समझदारीके साथ अधिकसे अधिक सामग्री देनेका प्रयत्न कर धीरे धीरे स्थिति सुदृढ़ बनायी जा सकती है। प्रकाशकोंका परस्पर सहयोग करना अत्यावश्यक है, इससे समाचारपत्र प्रकाशित करनेके समूचे व्यवसायका हित होगा। पाठकोंकी सेवा करनेके नये-नये तरीके ढूँढने होंगे और इस सिलसिलेमें हमें यह बात कदापि न भुलानी चाहिये, नहीं तो हमारी ही हानि होगी, कि पाठकोंकी एक नयी पीढ़ी अब पैदा हो रही है। क्या समझदारी और बुद्धिमानीके साथ उनकी आकांक्षाएँ तथा आवश्यकताएँ पूरी करनेके लिए प्रयत्न किया जा रहा है?

'ब्लिट्ज' जैसे साप्ताहिक पत्र

भारतीय समाचारपत्रोंकी दुनियामें अपेक्षाकृत हालकी ही एक नयी बात चुने हुए समाचारोंको विशेष महत्त्व देनेवाले उस तरहके साप्ताहिक पत्रोंका जन्म ग्रहण करना है जैसे 'करेण्ट' तथा 'ब्लिट्ज' हैं। थोड़ेसे समाचार सार रूपमें तथा मस्तिष्कमें शीघ्र घुस जाने लायक ढंगसे प्रकाशित करना इनका काम है। किसीको बदनाम करनेवाली एक या दूसरी घटना सनसनीखेज तरीकेसे प्रकाशित कर ये पत्र पाठकोंका ध्यान आकर्षित करनेकी चेष्टा करते हैं। मोटे, काले टाइपमें इनके शीर्षक दिये जाते हैं जिनसे प्रथम पृष्ठ प्रायः पूराका पूरा भर जाता है

और सम्पादकके राजनीतिक विचारोंके अनुसार समाचारोको मनमाना रूप दे दिया जाता है।

इस ढगके समाचारपत्रोकी उत्पत्ति भारतीय पत्रकार-कलाकी असली बुनियादसे नही होती। उन्हे विदेशी रगढगसे ही प्रेरणा मिलती है, फिर भी पढनेवाली जनतापर उनका गहरा प्रभाव पडता है, यह बात अस्वीकार नही की जा सकती। कारण इसका चाहे यह हो कि अन्य पत्र जो सामग्री देते है उससे इसका (जनताका) सन्तोष नही होता या फिर राजनीतिक एव आर्थिक स्थितियाँ ही इसके मूलमे हो। जो हो, ऐसा कोई भी पत्रकार जो इस व्यवसाय और कर्मको गम्भीर दृष्टिसे देखता है तथा जो पत्रकारीके उच्च स्तर एव परम्पराओकी सुरक्षाका ध्यान रखता है, ऐसे पत्रोंका प्रभाव, स्थिर मनसे, पत्रकार-कलाके विकासपर पडते नही देख सकता। भ्रष्टाचारको प्रकाशमे लाना तथा धोखाधडीका रहस्य प्रकट करना ऐसा कार्य है जो प्रत्येक समाचारपत्रके लिए अत्यत प्रशसनीय एव वैध है। अमेरिका तथा ब्रिटेनमें यह कार्य अनेक बार बडी योग्यताके साथ किया गया है और उसका प्रभाव भी खूब पडा है। जो व्यक्ति यह कहे कि भारतमें ऐसी बातोंकी जॉच पडताल और इन्हे प्रकाशित करनेके लिए कोई क्षेत्र नहीं है, उसे हम वस्तुस्थिति न देखनेवाला आशावादी ही समझेंगे।। इसमे खतरा तब उपस्थित होता है जब कि हर सप्ताह एक बार, यहॉ तक कि दो बार भी, एक न एक नये 'रहस्य का उद्घाटन' करनेका प्रयत्न करना पडता है, जब यथार्थ और सत्य बातोंकी जगह केवल सुनी हुई बाते छाप दी जाती है और जब प्रत्येक नये 'भण्डाफोड' मे वही राजनीतिक पक्षपात दृष्टिगोचर होता है। यदि कोई बात कहकर दूसरे ही सप्ताह उसका खण्डन कर क्षमा-याचना करनी पडे तो ऐसे मनसनीखेज समाचारोंसे, चाहे वे कितने ही मजेदार क्यों न हों, जनता शीघ्र ही ऊब उठेगी।

इसके विपरीत ठोस सामग्री देनेवाले जो दो चार प्रशसनीय पत्र है, सार्वजनिक कार्योंमें की जानेवाली लापरवाहियोंकी चर्चा करनेमे उचित

साहससे काम नहीं लेते। उनकी भावना स्वभावत· किसीको पतित अवस्थामे दिखानेके विरुद्ध होती है और साथ ही उनके मनमे यह स्वाभाविक इच्छा भी होती है कि क्यों नाहक सरकारकी अप्रसन्नताका पात्र बना जाय। जो हो, पाठकोंके भी यही भाव, यही विचार हों, ऐसी आशा नही की जा सकती। एक महत्त्वपूर्ण कार्य, जिसकी जिम्मेदारी लोकतन्त्र राज्यके किसी भी समाचारपत्रके लिए लेना जरूरी है, इस बात की चौकसी करना है कि सार्वजनिक जीवनकी पवित्रता, नैतिक उच्चता, सुरक्षित बनी रहे। यह ऐसी विचार-सरणी है जिसपर सम्पादकोंको मनन करना चाहिये, इससे उन्हे लाभ ही होगा। यह देखना भी सम्पादकोंका अनिवार्य कर्त्तव्य हो जाता है कि उनके सवादपत्रमे जो विज्ञापन निकलते हैं वे सर्वसाधारणके हितके लिए हानिकर न हो। इस सम्बन्धमे कुछ नियम बना लिये गये हैं जो रास्ता दिखानेमे हमारा पथ-प्रदर्शन कर सकते है किन्तु हम प्रायः उनका अनुगमन ही नही करते। पाठकोंको यह बात जल्द मालूम हो जाती है और वे विज्ञापनदाताके ही नहीं अखबारके भी विरुद्ध खड्गहस्त हो जाते है और अक्सर इसपर ही उनका गुस्सा ज्यादा फूट पडता है।

ब्रिटिश उदार दलके सुख्यात पत्र 'न्यूज क्रानिकल' के सम्पादक श्री क्रूकशैंकने मई १९५२ मे कहा था 'ऐसा सोचना सुखद नहीं मालूम होता कि यदि राजनीतिमें कोई नया दल शुरू हो, तो वह राष्ट्रीय समाचारपत्र तक न निकाल सकेगा।' ग्रेट ब्रिटेनमें यही स्थिति है जहाँ राष्ट्रीय पैमानेपर प्रतियोगिता होती है। पत्रका सारे देशमें प्रचार करनेमे भारी खर्च बैठता है। भारतमें नया दैनिक पत्र निकालना असम्भव तो नहीं किन्तु इसके लिए बहुत अधिक रुपयोंकी आवश्यकता होगी जब कि आजकल रुपया लगानेवालोंकी तिजोडियाँ खाली होनेमे भी देर नहीं लगती। आजके किसी बडे दैनिक पत्र जैसी स्थिति, ख्याति और ग्राहकसख्या पानेके प्रयत्नमे कई वर्ष लग जा सकते हैं। ऐसे कितने ही सदुद्देश्यपूर्ण और पर्याप्त धन लगाकर निकाले गये पत्र या तो समाप्त

हो गये या फिर जीवित बने रहनेके लिए उन्हे कठिन संघर्ष करना पड रहा है। इससे स्पष्ट है कि सुप्रतिष्ठित समाचारपत्रोंके लिए ही उज्ज्वल भविष्यकी आशा की जा सकती है। इस सम्बन्धमें एक अच्छी बात जो स्मरण रखने योग्य है, यह है—यदि ऊपर चढना कठिन है तो नीचे गिर पडना बिलकुल सरल है। भारतीय समाचारपत्रोंके पाठक प्राय परिवर्त्तन-विरोधी होते है किन्तु साथ ही वे एक-दूसरेका भेद या अन्तर समझनेमे भी पटु होते हैं। जब किसी पत्रका स्तर गिरने लगता है तो यह बात वे शीघ्र ही ताड लेते हैं और तभी वे अपने पुराने पत्रका परित्याग कर किसी अन्य पत्रको अपनानेके लिए इधर-उधर नजर दौडानेका उपक्रम करते हैं।

भविष्यके सम्बन्धमें

परिच्छेद समाप्त करनेके पूर्व हमारे लिए शायद यह क्षम्य होगा कि इस भावी विकासके क्रमकी कल्पना करते समय कुछ दूर आगेकी ओर दृष्टि डाल। समाचारपत्रके प्रत्येक बुद्धिमान अधिकारीको उन प्राविधिक सुधारोंकी ओर ध्यान देना चाहिये जो अन्य देशोंमें प्रचलित हो चुके हैं, ताकि वह अपने पत्रको वह चीज दे सके जो अन्य पत्रोंके पास न हो। उसे इस बातकी ओर भी ध्यान देना चाहिये, काफी अच्छी तरह ध्यान देना चाहिये, कि किस तरह नये कर्मचारी भरती किये जायँ और उनके प्रशिक्षणकी व्यवस्था की जाय। भारतीय पत्रोंमें उच्च पदोंपर काम करनेवाले सम्पादक बहुत बूढे नही है किन्तु पत्रकारोंकी शक्तिका अधिक ह्रास तो होता ही है यद्यपि ठीक उस रूपमें नहीं, अत वे हमेशा काम नही करते रह सकते। उदाहरणके लिए किसी पत्रका जो प्रतिनिधि नयी दिल्लीमे रहता है, उसे काफी परिश्रम करना पडता है और एक दिन ऐसा आ सकता है जब वह किसी सुन्दर छोटे सर्वप्रथम-प्राप्त महत्त्वके समाचारके ऊपर विशेष सवाददाताके रूपमे छपे हुए अपने नामसे मिलनेवाले सन्तोषका परित्याग करनेको तैयार हो जायगा और कोई अधिक शान्तिपूर्ण काम करना, १० से ५ तक, जैसे सम्पादकीय लिखना, ज्यादा

पसन्द करेगा। इसी तरह समाचार-सम्पादक तथा प्रधान सहकारी सम्पादक भी काम करते करते इस स्थितिको पहुँच सकते है जब वे अधिक शान्तिपूर्ण जीवनके लिए लालायित हो उठे। प्रत्येक सम्पादकका, यदि वह ईमानदारीसे कर्तव्य-पालन करना चाहता है तो, यह काम है कि उसके अधीन जितने पद या स्थान हो, उनके सम्बन्धमे एक ऐसी रूपरेखा उसके दिमागमे तैयार रहे—कभी भुलायी न जाय—कि व्यक्ति-विशेषके हटते ही कौन उसके स्थानपर रखा जा सकता है। यह देखना अत्यावश्यक है कि जो युवक नियुक्त किये जायँ वे उचित श्रेणी के हो। इसकी निश्चित व्यवस्था की जा सके, इस दृष्टिसे क्या पत्रोके मालिक और सम्पादक भरपूर प्रयत्न कर रहे हैं? भारतीय पत्रकारीके भविष्यमे रुचि लेनेवाला कोई व्यक्ति इस प्रश्नकी उपेक्षा नहीं कर सकता।

मै इस बातकी सम्भावना मानता हूँ कि कुछ निर्दिष्ट व्यक्तियोंसे प्रभावित होनेकी प्रवृत्ति बढती जाय। किसी समाचारके ऊपर 'हमारे लन्दनस्थ सवाददाता द्वारा" जैसे शब्दो अथवा किसी कहानीके नीचे सब कुछ समझे जा सकनेवाले आद्यक्षरोंके बजाय लोग किसी व्यक्तिके नाम या छद्मनामके पीछे चलना ज्यादा पसन्द करते है। अमेरिकामे तो खास तौर पर, और ब्रिटेनमे कुछ कम सीमा तक, जहाँ बहुतसे बडे बडे अखबारोंमें, जिनमे निस्सन्देह 'टाइम्स' पत्र भी शामिल है, नाम छिपानेका अब भी प्रचलन है, लेखक–विशेषका नाम छाप देनेसे कहानी या वृत्तान्त का महत्त्व और अधिक बढ जाता है। (नाम छापनेपर) लेखकके लिए यह स्वाभाविक हो जाता है कि वह विश्वसनीयता एव प्रामाणिकताके लिए प्राप्त अपनी कीर्त्तिपर ऑंच न आने दे। मेरा आशय पत्रके निर्धारित स्तभोंमे लेख लिखनेवाले सामान्य पत्रकारोसे नही, वरन् घटनाओकी गभीर समीक्षा करनेवाले तथा विवरणात्मक विवेचन करनेवाले लेखकोंसे है। भारतमे तो नाम छापनेका महत्त्व लेखकके लिए बहुमूल्य परिसम्पत्के सदृश होगा, क्योंकि यहॉ अच्छे लेखकों-आलोचकोंकी ख्याति फैलनेमे देर नहीं लगती और वह तभी तक कायम रहती है जब-

तक अच्छी कृतियों द्वारा उसे सुरक्षित रखनेका प्रयत्न होता रहता है।

स्वतन्त्र भारतके प्रांगणमें उस महान् भारतीय सम्पादकका आविर्भाव होना अभी बाकी है, जो अपने अखबारकी प्रत्येक पंक्तिपर अपने व्यक्तित्वकी छाप डाल सके, जो अपने अधीन काम करनेवाले प्रत्येक सहकारीका निष्ठापूर्ण सहयोग प्राप्त कर सके और जो पति-पत्नी, दोनोंको पत्रकी अलग अलग प्रति खरीदनेके लिए प्रभावित कर सके ताकि सबेरे चाय पीनेके वक्त उन्हें पत्रके लिए परस्पर छीना-झपटी न करनी पड़े! फिर भी उसका उद्गम बहुत कुछ शीघ्र ही होगा। उसका जन्म निश्चित है। दैनिक पत्रोंमें वह ऐसा जीवन फूँक देगा, ऐसी शक्ति भर देगा कि उसके प्रतिद्वन्द्वियोंको या तो सावधान होकर उसकी चुनौतीका सामना करनेको तैयार होना पड़ेगा या किसी ऐसे व्यक्तिके लिए सम्पादकीय आसन रिक्त कर देना पड़ेगा जो उसके सामने डॅटे रहनेका साहस करे।

अन्तमें हम पत्रकी नीतिके सम्बन्धमें चर्चा करेंगे। यों तो साधारणतया यदि कोई समाचारपत्र ऐसी बातें लिखता है या ऐसे ढंगसे उनका विवेचन करता है जो पाठकोंको नागवार मालूम हो, अथवा ऐसे विचार प्रकट करता है जिनके साथ उनका तीव्र मतभेद हो, तो उनका मन ऐसे अखबारसे फेरकर प्रातःकालके अन्य किसी पत्रकी ओर प्रेरित करनेके लिए इससे बढ़कर और कोई बात नहीं हो सकती। किन्तु जिन-जिन विषयोंमें स्वतन्त्र भारतकी दिलचस्पी है, उनमेंसे कितने ही ऐसे हैं जिनके सम्बन्धमें अभी तक किसीने जोरदार नेतृत्व ही नहीं ग्रहण किया है। जहाँ राजनीतिज्ञोंके किये कुछ नहीं बन पड़ा, वहाँ किसी समाचारपत्रके लिए यह सम्भव होना चाहिये कि वह जनताका पथ-प्रदर्शन करे। वही समाचारपत्र ऐसा होगा जिसके लिए हम लोगोंको काम करना चाहिये और वही हमें पढ़ना भी चाहिये। पत्रकारकलाकी नयी पीढ़ीमें काम करनेवाले युवक-युवतियोंको यह बात याद रखनी चाहिये कि उन्हें इस व्यवसायमें सबसे बहुमूल्य जिस वस्तुका प्रयोग कच्चे मालके रूपमें करना पड़ता है, उसकी हमारे देशमें कमी नहीं है और वह है प्रचुर जन-समूह।

२ देशी भाषाके पत्र

भारतके अंग्रेजी भाषाके समाचारपत्रोंके बारेमें जो बातें कही गयी हैं, उनमेंसे बहुत-सी देशी भाषाके पत्रोंपर भी लागू होती हैं। दोनोंके सम्पादकीय लेखोंकी सामग्री अथवा उनकी उत्पादन-विधि आदिमें अन्तर हो सकता है किन्तु उसे अतिरञ्जित रूपमें दिखाना ठीक नहीं, जैसा कि करना कुछ लोगोंके लिए सरल होता है।

हमें यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि भारतमें अंग्रेजी भाषाके जो समाचारपत्र १९वीं शताब्दीमें पहलेपहल निकाले गये उनमेंसे बहुतसे दो-भाषाओंमें छपते थे। (वस्तुस्थिति तो यह है कि जिस अमृत बाजार-पत्रिकाकी गणना आज अंग्रेजी पत्रोंमें की जाती है, शुरू-शुरूमें उसका प्रकाशन बंगला साप्ताहिकके रूपमें हुआ था। बादमें चलकर कहीं उसका प्रकाशन दो भाषाओंमें आरम्भ हुआ।)

इस अर्थमें हम कह सकते हैं कि भारतीय भाषाओंके पत्रोंका जन्म और विकास अंग्रेजी भाषाके समाचारपत्रोंके करीब-करीब साथ ही साथ आरम्भ हुआ और भारतीय पत्रकारीके इन दोनों रूपोंमें कोई आधारभूत अन्तर नहीं हो सकता। आज भी भारतीय भाषाओंके कितने ही महत्त्वपूर्ण समाचारपत्र ऐसी संस्थाओं द्वारा प्रकाशित होते हैं जो अंग्रेजी पत्र भी प्रकाशित करती हैं।

यद्यपि आधुनिक समाचारपत्र तथा उन्नीसवीं शतीके प्रारम्भकालके समाचारपत्रोंमें कोई समानता नहीं, फिर भी पत्रकारकलाके जन्म तथा विकासकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमिका वर्णन करना विद्वानोंकी विशेष अभिरुचिका विषय हो सकता है।

विकास नहीं हुआ। फिर भी यह एक दिलचस्प बात है कि यद्यपि अठारहवीं शतीके अन्तिम चरणके पूर्व मुद्रण यन्त्रका किसीको ज्ञान न था, फिर भी इस देशमें मुगलोंके शासनकालमें भी पत्रकारकलाकी जानकारी लोगोंको थी*। इस तरह हम देखते हैं कि समाचारों सबन्धी पत्रकारीका जन्म यहाँ छापेखानोंसे प्रकाशित किये जानेवाले समाचार-पत्रोंके पहले ही हो चुका था।

अंग्रेज लोगोंके आनेके बाद ही समाचारपत्रोंके नये युगका आरम्भ हुआ, यह केवल इस अर्थमें कि उनके आगमनके अनन्तर ही छापेखाने

* "बिना छापेखानेमें छपे हुए समाचारपत्रोंका सबसे पहला स्पष्ट उल्लेख खफी खाँ की पुस्तक मुन्तखाबत-अल-लुबाबमें मिलता है, जहाँ लिखा है कि शिवाजीके वंशके राजारामकी मृत्युका समाचार संवादपत्रों द्वारा शाही शिविरमें पहुँचा था। यह महान् इतिहास-लेखक यह बात भी स्पष्ट कर देता है कि औरंगजेबके समय सेनाके मामूली सिपाहियोंको भी उनका अखबार दिया जाता था और समाचार प्रकाशित करनेके मामलेमें औरंगजेबने अखबारोंको काफी स्वतन्त्रता दे रखी थी। उदाहरणके तौरपर उसने बंगालके एक समाचारपत्रकी चर्चा की है। इस पत्रने बादशाह और उसके नाती (पोते?) मिरजा अजीम ओसोंके आपसी सम्बन्धपर काफी कड़ी आलोचना की थी। 'सैर-उल-मुताखरीन' में जाफर खाँ के पुत्र कायम खाँका उल्लेख है जो डाक-विभाग तथा समाचारपत्र विभागका प्रधान था। मुगल साम्राज्यके पतनोन्मुख कालमें हस्तलिखित समाचारपत्रोंका प्रचार बराबर जारी रहा। लोकप्रिय अंग्रेज इतिहासज्ञोंने लिखा है कि सन् १७९२ के ग्रीष्मकालमें दिल्लीके आम अखबारोंमें इस आशयकी खबर छपी थी कि बादशाहने महारानी सिन्धिया और पेशवासे यह आशा प्रकट की कि बंगाल प्रान्तमें शाही कर वसूल करनेमें वे लोग उसकी सहायता करें'—दि इण्डियन प्रेस (मारगेरिता बार्न्स लिखित) पृ० २२, ३२, कैलकटा रिव्यू, जिल्द १२८ (१९०७), पृ० २५५-८

मे छापकर पत्र प्रकाशित किये जाने लगे। छपे हुए समाचारपत्रो
सामयिक पत्रोके इतिहासका आरम्भ सन १७१८ में हिकी गजटके प्र
शनसे होता है। इसे हिकी नामक एक अंग्रेजने भारतमे रहने
अंग्रेजोंके लिए कलकत्तेसे निकाला था।

'सिपाही-विद्रोह' के पूर्वका युग

उन दिनोंसे लेकर सन् १८५७ की समाप्तितकके युगको हम त
भागोमें बॉट सकते हैं—

(१) वह काल जब ईस्ट इण्डिया कम्पनीके साथ आये हु
अंग्रेजोंने कुछ पत्र निकाले (इनमे प्राय॰ व्यक्तिगत मामलोंकी च
की जाती थी और इनका मुख्य लक्ष्य अंग्रेजोंकी ही आवश्यकता
पूर्ति करना रहता था)।

(२) दूसरी मजिल उस समय शुरू होती है जब ईसाई पादरिये
अंग्रेजी तथा देशी भाषाओमें पत्रोंका प्रकाशन आरम्भ किया। [दिग्दश
तथा समाचार-दर्पण (१८१८) इस कालके पत्रोंके उदाहरण हैं। दे
भाषाके पत्रोंकी शुरुआत यहींसे होती है।]

(३) पादरियोंके प्रचारकार्यकी प्रतिक्रियास्वरूप कुछ भारतीयोने
ऐसे पत्रोंका प्रकाशन शुरू किया जो ईसाईयों के धार्मिक प्रचार
खण्डन करनेका विशेष प्रयत्न करते थे। ['सवाद कौमुदी' की स्थाप
सन् १८२१ में श्री भवानीचरण बैनर्जी द्वारा की गयी। हिन्दुओ
राजनीतिक तथा सामाजिक विचारोंका प्रतिपादन करनेके लिए य
निकाली गयी थी और बादमे इसे राजा राममोहन रायने अपना लि
था। स्वयं भारतीयों द्वारा निकाले गये देशी पत्रोंका प्रारम्भ यहॉसे मा
जा सकता है।]

सन् १८२६ में हिन्दीके प्रथम समाचारपत्र 'उदन्त मार्तण्ड' का ज
कलकत्तेमें हुआ। यह एक मनोरञ्जक बात है कि हिन्दीके पहले पत्रक
प्रकाशन हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रके बाहर शुरू हुआ।

सन् १८३० तक इतने पत्र, जो सब बंगलामें थे, प्रकाशित हो

लगे थे—तीन दैनिक, एक त्रि-दैनिक, दो अर्द्धसाप्ताहिक, सात साप्ताहिक, दो अर्द्धमासिक तथा एक मासिक पत्र। इनके सिवा ३३ पत्र अंग्रेजीके थे, जिनमें दैनिक पत्र तथा अन्य सामयिक पत्र भी थे, किन्तु कलकत्तेके अंग्रेजी पत्रोंके समस्त ग्राहकोंकी सख्या अनुमानतः २२०५ थी।

इस बीचमें बम्बईसे गुजराती पत्रोंका भी निकलना शुरू हो गया—मुम्बई-समाचार १८१९ में निकला और कुछ ही वर्षों बाद सन् १९३२ में जामेजमशेदका प्रकाशन साप्ताहिकके रूपमें शुरू हुआ। दैनिक पत्रोंके रूपमें ये दोनों आज भी जीवित हैं।

मराठीका पहला पत्र 'दिग्दर्शन' सन् १८३७ मे प्रकाशित हुआ।

हम देखते हैं कि सन् १८६७ तक देशी भाषाओंके पत्रोंमे मुख्य रूपसे साहित्यिक, सामाजिक तथा धार्मिक प्रश्नोंकी ही चर्चा रहती थी। राजनीतिमें या प्रशासन सम्बन्धी मामलोंमें वे अधिक दिलचस्पी नहीं लेते थे।

मद्रासमें पहला पत्र सन् १८३१ में क्रिश्चियन रेलीजस ट्रैक्ट सोसायटी द्वारा प्रकाशित किया गया था। इसका नाम था 'तामिल मैगजीन'। 'दिन वार्त्तामणि' नामक साप्ताहिक पत्र जो सन् १८५६ के लगभग मद्राससे प्रकाशित हुआ था, पहला महत्त्वपूर्ण समाचार पत्र था।

इस कालमें हिन्दी भाषी प्रान्तोंसे हिन्दीका कोई भी पत्र प्रकाशित नहीं होता था—एकमात्र उर्दूमें ही पत्र निकलते थे, किन्तु सन् १८५० के बादमे हिन्दीके स्वतन्त्र पत्रोंका प्रकाशन होने लगा और यह भी पता चलता है कि कितने ही पत्र दो भाषाओंमें निकलते थे।

'सिपाही-विद्रोह' के बाद

आजकलके समाचारपत्रोंकी दृष्टिसे सिपाही-विद्रोहके बाद निकलनेवाले पत्र अधिक प्रसगानुकूल या सम्बद्ध माने जा सकते है। 'दि इण्डियन प्रेस ईयर बुक' १९५१-५२ में देशी भाषाओंके और अग्रेजी के मुख्य-मुख्य समाचारपत्रोंकी सूची दी हुई है। हम देखते हैं कि इस

समय जो पत्र विद्यमान हैं, उनमेंसे अधिकतर ऐसे हैं जो सन् १९२० के बाद प्रकाशित हुए हैं।

सिपाही-विद्रोहके समयतक एक बंगालको छोड़कर देशके और किसी भागमें कोई भी दैनिक पत्र नहीं निकलता था। बंगालसे जो दैनिक निकलते थे, उनमें एक हिन्दीका भी था। इसका नाम था 'समाचार सुधावर्षण'। इसका पहला अंक १८५४ में निकला और जैसे-तैसे यह सन् १८६८ तक प्रकाशित होता रहा। इस तारीखके बाद इस पत्रके बारेमें हमें और कुछ नहीं मालूम।*

देशी भाषाके समाचारपत्रोंकी स्थिति इस कालके प्रारम्भमें कैसी थी, इसका संक्षिप्त विवरण यह है—थोड़से समाचारपत्र सारे देशमें छिट-फुट रूपसे फैले हुए थे। इनकी मुख्य दिलचस्पी सामाजिक तथा धार्मिक प्रश्नोंसे थी किन्तु सम्भवतः महत्त्वपूर्ण राजनीतिक घटनाओंका भी हाल इनमें छपा करता था। तार द्वारा समाचार भेजकर या मँगाकर किसी घटना आदिका विवरण छापना उस समय अज्ञात था। अधिकतर पत्र मासिक या पाक्षिक थे, जिनकी प्रचार-संख्या सम्भवतः एक हजार प्रतियों से अधिक कभी न रही होगी। हाँ, बंगालके पत्र अवश्य इस मामलेमें कुछ अधिक अच्छी स्थितिमें थे।

सिपाही-विद्रोहके ठीक बाद आंग्ल भारतीय समाचारपत्रोंने आये दिन भारतीय जनताके चरित्रकी ईमानदारीपर आक्षेप करना शुरू कर दिया। इससे देश भक्त लोगोंकी भावना जाग्रत हो गयी और उनके मनमें विरोधका भाव उत्पन्न हो गया। भारतीयों द्वारा संचालित समाचारपत्रोंके विकासका कारण यह विरोध-भाव ही था जिसने उसे गति प्रदान की। पत्रोंको स्थापनाका उद्देश्य शासकोंतक अपनी आवाज पहुँचाना था, इसीसे इस नये प्रयत्नका लक्ष्य अधिकांशमें अंग्रेजी पत्र स्थापित करना ही था। भारतीयों द्वारा चलाये जानेवाले इन

---

* भटनागरकृत 'दि राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ हिन्दी जर्नलिज्म' पृ० ४२८-४२९।

पत्रोकी नीति 'प्रतिरक्षात्मक' ही थी। श्री विद्यासागर जैसे अनुभवी विद्वानोने देशी भाषाओके समाचारपत्रोकी भी आवश्यकता महसूस की। 'सोमप्रकाश' नामक पत्र जो उन्होने चलाया था, सन् १८६० के नीलकी खेतीके उपद्रवोके समय काफी सक्रिय था जिससे बगालके किसानोको बडा लाभ पहुँचा। इस समय तक पत्रोकी नीति 'आक्रमणात्मक'' हो चली थी।

राजनीतिक पत्रकारी

१८६१ 'इण्टियन कौन्सिल ऐक्ट' (भारतीय परिषद्की स्थापना सम्बन्धी अधिनियम) का पारित किया जाना देशके राजनीतिक उद्विकासकी दिशामे उठाया गया महत्त्वपूर्ण कदम था, क्योकि कुछ प्रसिद्ध भारतीयोको देशके शासनमे तथा विधान बनानेके कार्यमे सहयोग प्रदान करनेका अवसर देनेका यह सबसे पहला मौका था। इन राजनीतिक सुधारोके कारण सर्वसाधारणके दिमागोमे हलचल मच गयी और इसके बादके दो दशब्दोमे कितने ही नये पत्रोंका प्रकाशन आरम्भ हुआ।

सन् १८७६ तक देशी भाषाओके पत्र काफी सख्यामे जन्म ग्रहण कर चुके थे। "उस समय लगभग ६२ ऐसे सामयिक पत्र बम्बई इलाकेमें विद्यमान थे—मराठी, गुजराती, हिन्दुस्थानी और फारसीके, उत्तर-पश्चिम के प्रान्त, अवध तथा मध्यप्रान्तमें भी इनकी सख्या लगभग ६० थी, बगालमे कोई २८ और करीब १९ मद्रासमे—तामिल, तेलगू, मलयालम् तथा हिन्दुस्तानी। उनका प्रचार, अनिवार्यत सीमित था, फिर भी वे बराबर अपना विस्तार करते जा रहे थे। इस समय स्थूलरूपसे हिसाब लगाया गया तो पता चला कि इन पत्रोंके कुल लगभग एक लाख ग्राहक है और किसी एक पत्रके सबसे अधिक प्रचारकी सख्या लगभग तीन हजार या उसके आसपास है।' *

---

*बार्न्सकृत 'दि इण्डियन प्रेस', पृ० २७६, दि नेटिव प्रेस ऑफ इण्डिया (लेखक डाक्टर जार्ज बर्डवुड, सी एम आई. । (सोसायटी आफ आर्ट्स के सामने पढ़ा गया लेख, २३ मार्च, १८७७।

भारतीयों द्वारा निकाले गये अंग्रेजीके पत्रोंमें जो लेख निकलते तथा जो तर्क उपस्थित किये जाते थे वे प्रायः शासकोंको तथा अंग्रेजी भाषा बोलनेवाले परिवर्तन-विरोधी समूहको लक्ष्य कर लिखे जाते थे। इसके विपरीत जो कुछ देशी भाषाओंके पत्रोंमें निकलता था और जहाँतक वह राजनीतिक होता था, वह सामान्य जनताको दिया जानेवाला एक तरह-का उपदेश-सा रहता था। इसलिए सरकारने सोचा कि भारतीय भाषा-ओंके समाचार पत्रोंकी स्वतन्त्रतापर प्रतिबन्ध लगा देना चाहिये। इसी लिये सन् १८७८ का 'वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट' (देशी भाषाके समाचारपत्रों सम्बन्धी अधिनियम) बनाया गया। इसके अनुसार भारतीय भाषाओंके पत्रोंके लिए अत्यन्त कठोर अधिनियम लागू कर दिये गये। इस अधि-नियमसे सरकारको यह अधिकार मिल गया कि यदि वह आवश्यक समझे तो देशी भाषाके समाचारपत्र-सम्पादकसे यह माँग करे कि या तो वह असन्तोष उत्पन्न करनेवाली कोई सामग्री न छापनेकी प्रतिज्ञा करे या फिर अपने पत्रका प्रूफ समाचार-नियन्त्रणके लिए पेश करे। इस प्रतिज्ञाके भंग करनेपर जिला मजिस्ट्रेटके पास जमानतके रूपमें जमा की गयी रकम जब्त कर ली जा सकती है।

'अमृतबाजार पत्रिका' उस समयतक दो भाषाओंमें निकलती थी। उसका तथा दो चार अन्य पत्रोंका विश्वास था कि यह अधिनियम खास कर उन्हींको दबानेके लिए तैयार किया गया है। पत्रिकाके संचालकोंने स्थितिके अनुसार काम किया और रातोरात पत्रको सम्पूर्ण रूपमें अंग्रेजी भाषाका पत्र बना दिया। इसके बाद शीघ्र ही भारतीयोंकी देखरेखमें कितने ही पत्र प्रान्तोंसे निकाले गये।

लार्ड रिपनके प्रयत्नसे सन् १८८१ के बाद वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट निरसित कर दिया गया। रिपनने भारतमें स्थानीय स्वशासनकी भी नींव डाली और सुयोग्य आदमियोंको स्थानीय तथा म्युनिसिपल प्रशासनके काममें सहयोग करनेके लिए आमन्त्रित कर राजनीतिक उत्साहकी अभिवृद्धि की।

समाचारपत्र अभीतक तो समाचारोंके बजाय विचारोंके प्रसारणपर ध्यान केन्द्रित करते थे, किन्तु अब वे सचमुच आधुनिक अर्थमे समाचार-पत्र बनने लगे। कुछ साप्ताहिक पत्र भी अपने आपको दैनिक पत्रोंके रूपमे परिणत करने लगे।

१८८१ के बादके कालका इतिहास सामान्य घटनानुक्रमके बजाय समसामयिक स्थितिसे पीछेकी ओर जानेसे अधिक लाभके साथ ज्ञात हो सकता है।

समसामयिक स्थिति

'दि इण्डियन प्रेस इयर बुक' १९५१–५२ मे २२० दैनिक पत्रो तथा कितने ही साप्ताहिको, पाक्षिको और मासिक पत्रोकी सूची दी हुई है। उन प्रान्तोंमें जहाँ दैनिक पत्रोंका राज्यभरमे प्रचलन नहीं हो सका, कितने ही ऐसे साप्ताहिकोका प्रचार है जिनमें दैनिक पत्रो तथा मासिकों, दोनोकी विशेषताएँ पायी जाती हैं। विभिन्न राज्योंमें कितने-कितने साप्ताहिक, पाक्षिक या मासिक पत्र निकलते है, इसकी जानकारी इस सूचीसे प्राप्त की जा सकती है—

[सूची अगले पृष्ठपर देखिये।]

सूची संख्या १

देशी भाषाओंके सामयिक पत्र

राज्योंके नाम	साप्ताहिक या अर्द्ध-साप्ताहिक पत्र	पाक्षिक या मासिक पत्र
१ आसाम	१	१
२ बिहार	९	४
३ बम्बई	४३	३५
४ दिल्ली	५	१२
५ मद्रास	११	१९
६ मध्यप्रदेश	२५	९
७ उत्तरप्रदेश	१२	१८
८ पंजाब	७	३
९ प० बंगाल	९	११
१०. त्रावणकोर कोचीन	३	१
११. मैसूर	३	४
१२ हैदराबाद	२	१
१३ मध्यभारत	२	
१४. राजस्थान	४	.
१५ सौराष्ट्र	१	.
१६ कश्मीर	२	.
१७ भोपाल	१	१
योग	१४१	११९

उपर्युक्त सूचीके पत्रोंमेंसे केवल ४२ साप्ताहिक तथा १९ मासिक पत्र ही 'आडिट ब्यूरो ऑफ सरक्यूलेशन्स' के सदस्य हैं*।

* दि आडिट ब्यूरो ऑफ सरक्यूलेशन्स लिमिटेड (ए बी सी) लेखा-परीक्षण करनेवाली संस्था है जो अपने सदस्य-पत्रोंके हिसाब-किताबकी जाँच करती है और विज्ञापन छपवानेवाली समितियोंकी रहनुमाईके लिए छ छ महीने पर प्रचार-संख्याका प्रमाणपत्र जारी करती है। प्राय सभी प्रमुख पत्र अपनी ग्राहक-संख्या सम्बन्धी हिसाब-किताबकी समीक्षा इसीसे कराते हैं।

तामिलनाडमे कितने ही सुप्रतिष्ठित साप्ताहिक पत्र है, जिनमेसे तीन ऐसे हैं जिनकी ग्राहक-सख्या ५० हजार है। किन्तु वे अधिक महत्त्वके तात्कालिक विषयो पर टीका-टिप्पणी, कुछ राजनीतिक व्यग्य चित्र आदि ही छापते हैं। बहुतसे पृष्ठोंमे लघुकथाएँ, धारावाहिक उपन्यास, हास्य-विनोदकी सामग्री, चुटकुले आदि चीजे रहती है। कुछ मासिक पत्र भी हैं जिनका उल्लेख कर देना चाहिये। इनमेसे एक साहित्यिक दृष्टिसे बडी ऊँची कोटिका है और इसकी कोई बीस हजार प्रतियाँ प्रति-मास छपती है।

जो हो, मैं यहाँपर केवल दैनिक पत्रोकी चर्चा करूँगा। हम देखते है कि कुल २२० दैनिक पत्रोमेसे १७५ देशी भाषाओंके पत्र हैं—

हिन्दी ..	४४	कन्नड .	९
उर्दू	४४	बगाली ...	५
गुजराती .	१७	पजाबी ..	४
मराठी	१७	तेलगू .	३
मल्यालम् .	१५	उडिया ...	३
तामिल .	११	सिन्धी ..	२
		आसामी	१

पत्रोंकी संख्या और प्रचार

किसी एक भाषामें दैनिक पत्रोंकी सख्या कितनी है, इतना जान लेनेसे भी इस बातका पता नही चल सकता कि उनका प्रचार अपेक्षा-कृत कम है या ज्यादा। उदाहरणके लिए हिन्दीके दैनिकोकी सख्या ऊपर ४४ दी गयी है। इनमें से केवल १३ ने अपनी प्रचार सख्या प्रकट की है जो कुल मिलाकर लगभग दो लाख ही ठहरती है। इसके विपरीत बगालीके पॉच पत्रोमेसे केवल चारकी सम्मिलित ग्राहक-सख्या इनसे अधिक बतायी जाती है। वस्तुत. हिन्दीमें किसी भी दैनिकका प्रचार ३० हजार प्रतियोसे अधिकका नही है और केवल सात ही ऐसे है जिनमे से प्रत्येककी खपत १५ हजार प्रतियोसे अधिक है। जो पत्र ए बी सी

सस्थाके सदस्य नहीं, उनके सम्बन्धमे यह अनुमान लगाना अधिक अन्यायोचित न होगा कि उनकी प्रचार-सख्या औसतसे अधिक नहीं हो सकती। उर्दू पत्रोंकी हालत तो और भी गयी-गुजरी है। ए. बी. सी द्वारा दिये गये आँकडे केवल दो पत्राके सम्बन्धमे ही उपलब्ध है और बहुत से उर्दू पत्र इसके सदस्य ही नहीं है। यह बात इतमीनानके साथ मान ली जा सकती है कि उर्दूके ४८ दैनिकोंमेंसे ऐसे पत्र छ से अधिक नहीं हो सकते जिनकी ग्राहक सख्या किसी तरह उल्लेखनीय मानी जा सके।

मराठीके १७ दैनिकोंमेंसे केवल पॉचकी ग्राहक-सख्या हमे ज्ञात है और इनका औसत करीब २१ हजार पडता है—सबसे बडी प्रचार-सख्या ४२ हजार और सबसे छोटी ६ हजार है। गुजरातीके भी १७ पत्रोंमेंसे तीन ए बी सी के सदस्य है और उनकी प्रचार-सख्या ६ हजारसे लेकर २० हजारतक है। मलयालम्‌के १५ पत्रोंमेंसे केवल चार ही ए. बी सी के सदस्य हैं और इनमेंसे मातृभूमि सबसे अधिक प्रचारका—२२ हजार प्रतियाँ—दावा करता है। चारोंका औसत लगभग १७ हजार पडता है। कन्नडके ९ पत्रोंमेसे दो ही ए बी सी के सदस्य है। औसत ग्राहक सख्या ११ हजार है। अब तामिल्‌के पत्रोको लीजिये। इनमेंसे एकका प्रचार ५५ हजार तथा दूसरेका ३५ हजार है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि देशी भाषाओके १७५ दैनिक पत्रोंमे से केवल चार ऐसे है—दो बगलाके, एक तामिल्‌का और चौथा मराठीका—जिनमेंसे प्रत्येककी ग्राहक-सख्या, सन् १९५१ मे ए बी सी. सस्था द्वारा प्रमाणित ऑकडोके अनुसार, पचास हजारसे ऊपर थी। [समस्त भारतके अग्रेजीके पत्रोंमें से चारकी ही ग्राहक-सख्या ५०-५० हजारसे ऊपर है।]

महायुद्धके पूर्वकी स्थिति

सन् १८५७ और द्वितीय महायुद्ध (१९३९) के बीचका समय चार भागोंमें बॉटा जा सकता है—(१) सिपाही-विद्रोहसे सन् १९०८ तकका

समय, जब भारतकी राष्ट्रीय महासभा(काग्रेस) मे नरमदल तथा गरमदल-वालोके बीच फूट पड गयी थी। यही वह समय था जब देशी भाषाओंके पत्र पत्रकलाकी आवश्यकताओ तथा राजनीतिक शिक्षाके अनुरूप भाषा-रचनामे फेरफार कर अपने आपको आवश्यक साधनोसे सज्जित कर रहे थे, (२) सन् १९०८ से १९२० तकका समय, जब काग्रेसका नेतृत्व गान्धीजीने अपने हाथमे ले लिया तथा जिसमें प्रथम महायुद्ध भी हुआ और जब देशी भाषाओको राजनीतिक भाषणो तथा वाद-विवादोके अनुरूप बनानेके लिए और भी अधिक प्रयत्न किये गये, (३) १९२० से १९२९ तकका समय, जिसमें असहयोग आन्दोलन चला, स्वराज्य दलकी स्थापना हुई और भारतको राजनीतिक सुधार प्रदान करनेकी दृष्टिसे

सूची संख्या दो

क्रम संख्या	भाषाका नाम	निकाले गये दैनिक पत्रोंकी सख्या			
		१८५७ से १९०८ तक	१९०८ से १९२० तक	१९२० से १९२९ तक	१९३० से १९३९ तक
१	गुजराती	४		३	३
२	मराठी	१	१	३	७
३	तामिल	१			२
४	बगाली	२		.	१
५	मलयालम्	२	१	२	५
६	सिन्धी	.	१		
७	उर्दू		५	१२	१०
८	तेलगू		१	१	१
९	हिन्दी		३	५	८
१०	उडिया		१	१	१
११	पजाबी		१	१	१
१२	कन्नड			१	४
१३	आसामी		.		

[अन्य ७९ पत्रोने १९४० से १९५२–५३ के बीचके वर्षोंमें प्रकाशन शुरू किया।]

स्थितिकी जॉचके लिए रायल कमीशनकी नियुक्ति हुई, (४) १९३० से १९३९ तकका काल, जब दो बार सविनय अवज्ञाका आन्दोलन चला, अबीसीनियाकी लडाई लडी गयी, स्पेनका गृहयुद्ध हुआ, हिटलरसे म्यूनिखका समझौता हुआ तथा भारत शासनविधान (१९३५ का) स्वीकृत हुआ और प्रान्तोमे शत प्रतिशत निर्वाचित सदस्योंवाली व्यवस्थापक सभाओ एव लोकप्रिय सरकारोंकी स्थापना हुई।

पृ० ३३की सूचीमे जहॉ-जहॉ कोई सख्या नही दी गयी है, वहॉ-वहॉ यह आशय न समझा जाना चाहिये कि उक्त कालमे कोई भी पत्र प्रकाशित नही हुआ। दिये हुए ऑकडोंका मतलब केवल यही है कि इतने पत्र कायम बने रह सके। जो पत्र कुछ ही समय तक चल सके और अब जिनका अस्तित्व नहीं रह गया है, ऐसे पत्रोकी गणना यहॉ नही की गयी है। उनकी सख्या भी कमसे कम उतनी मानी जा सकती है जितनी अद्यावधि जीवित बचे रहनेवाले पत्रोकी। वास्तवमें नियतकालिक पत्रोंके सम्बन्धमे, जिनमे साप्ताहिक तथा मासिक पत्र भी शामिल हैं, यथार्थ स्थिति यह है कि मद्रास प्रान्तमे १८७६ से १९३७ के बीचमे कमसे कम ६७६ पत्र प्रकाशित हुए किन्तु इनमेंसे केवल ११४ तक ही इस अवधिके अन्ततक जीवित बचे रह सके*। सम्भव है कि दैनिक पत्रोंके जन्म-मरणके ऑकडे बरावर बराबर न रहे हो, फिर भी यह मान लेनेमे कोई आपत्ति नही की जा सकती कि बन्द हुए दैनिकोंकी सख्या उतनी ही रही हो जितनी बाकी बचे हुए उन पत्रोकी जो आज भी विद्यमान हैं।

नीचे हम विभिन्न प्रान्तोके अनुसार एक सूची दे रहे है जिसमे बतलाया गया है कि सन् १९५० में देशी भाषाओके कितने दैनिक पत्र कहॉ-कहॉ प्रकाशित हो रहे थे।

---

* मद्रास लाइब्रेरी असोशियेशन—मेमॉयर्न—मद्रास, अप्रैल १९४० टि बूज ऑफ तामिल पीरियडिकल्स (एस आर रगनाथम् तथा के एम शिवरमण कृत)।

सूची संख्या तीन

राज्यका नाम	सन् १९५० मे विद्यमान दैनिक पत्रोकी संख्या तथा उनकी भाषा													
	अंग्रेजी	आसामी	हिन्दी	उर्दू	गुजराती	मराठी	सिन्धी	कन्नड	तेलुगू	तामिल	मलयालम	पंजाबी	उड़िया	बंगाली
१ आसाम	१	१												
२ बिहार	२		४	१										
३ बम्बई	९		३	८	१७	१५	१	३						
४ दिल्ली	५		६	७										
५ मद्रास	५								२	११	२			
६ मध्यप्रदेश	२		४			२								
७ उत्तरप्रदेश	५		१५	७										
८ त्रावण कोचीन											१३			
९ पंजाब	१			६								३		
१० मध्यभारत			३											
११ उड़ीसा	२												३	
१२ प बंगाल	४		४	२								१		५
१३ मैसूर	३			१				६						
१४ हैदराबाद	४			४					१					
१५ कश्मीर				५										
१६ भोपाल				३										
१७ राजस्थान			५											
योग	४४	१	४४	४४	१७	१७	१	९	३	११	१५	४	३	५

तामिलमें नियमित रूपसे निकलनेवाला पहला पत्र सन् १८८२ में श्री जी० सुब्रह्मण ऐयरने निकाला। ये उन ७२ महानुभावोंमेसे थे जिन्होंने १८८५ मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी नींव डाली तथा जो इसके पहले सन् १८७८ मे ही प्रकाशित 'हिन्दू' पत्रके जन्मदाताओंमेसे एक थे और जो उसका सम्पादन भी करते थे। यह बात उल्लेखनीय है कि सन् १८९८ तक अकेले श्री सुब्रह्मण ऐयर ही हिन्दू (अंग्रेजी) तथा स्वदेशमित्रन् (तामिल), दोनों पत्रोंको चलाते थे किन्तु उसी साल उन्होंने हिन्दू

छोडकर पूर्ण रूपसे स्वदेशमित्रम्‌का भार ग्रहण कर लिया। सन् १८९९ मे उन्होने इसे दैनिकका रूप दे दिया।

सन १८९९ से सन् १९१७ तक 'स्वदेशमित्रम्' ही तामिलका एकमात्र दैनिक पत्र था और अपने क्षेत्रमे केवल उमीका आधिपत्य था। सन् १९१७ के समाप्त होते-होते एक नये दैनिक, 'देशभक्तम्' का प्रकाशन शुरू हुआ। इसके सम्पादक पहले तो श्री टी० वी० कल्याणसुन्दर मुदलियार थे किन्तु बादमे श्री वी० पी० एस० ऐयरने उनका स्थान ग्रहण किया। ये सावरकर बन्धुओके क्रान्तिकालीन साथियोमेसे थे। 'देशभक्तम्'के ये दोनो सम्पादक तामिल भाषाके मुख्यात विद्वान् थे और इन्होंने तामिल भाषामे ऐसी परिमार्जित लेखन-शैलीको जन्म दिया जो स्वाभाविक होनेके साथ-साथ पढनेमें बडी भली मालूम होती थी। यद्यपि सन् १९२० के अन्तिम महीनोमे यह पत्र बन्द हो गया, फिर भी तामिल भाषाकी शैलीके विकासमे इसका बडा हाथ रहा।

यहाँपर इस बातकी चर्चा न करना अक्षम्य अपराध होगा कि श्री सुब्रह्मण्य भारती ही वह व्यक्ति थे जिन्होने तामिल गद्य तथा आधुनिक कविताको नया जीवन प्रदान करनेके लिए अन्य किसी भी व्यक्तिसे अधिक परिश्रम किया। ये राष्ट्रीय जाग्रतिकालके तामिल भाषाके कवि थे जो 'इण्डिया' नामक एक साप्ताहिक पत्र चलाते थे और जो कभी-कभी 'स्वदेशमित्रम्' मे भी काम करते थे।

इसके बाद कुछ वर्षोंतक अर्थात् सन् १९२६ तक कोई भी नया दैनिक नहीं निकला। इस वर्ष डाक्टर पी० वरदाराजूलने, जो तामिलनाड नामक साप्ताहिक पत्र निकालते थे, जिसमे समाचार तथा लेख, दोनो रहते थे, इसी नामसे एक दैनिक पत्र भी निकाला। अपनी जोरदार और बोलचालवाली भाषा-शैलीके कारण इसने बहुसख्यक ग्राहकोको अपनी ओर आकर्षित किया और स्वदेशमित्रम्‌का गहरा प्रतिद्वन्द्वी बनने लगा। किन्तु सन् १९३० मे तामिलनाडने महात्माजी द्वारा चलाये गये सविनय अवज्ञा आन्दोलनका समर्थन नहीं किया। इसीसे

कुछ कार्यकर्ताओने इण्डिया नामक दूसरा पत्र निकालना आवश्यक समझा। सन् १९३१ तथा १९३२ मे इस पत्रको अच्छी सफलता मिलने की आशा की जाने लगी किन्तु इसने अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ बनाने की ओर ध्यान नही दिया। इस प्रकार सन् १९३३ मे तामिल भाषामें कुल तीन दैनिक निकलते थे। तीनों मद्रासमे छपते थे और प्रत्येकका मूल्य एक आने प्रति अंक था। इसी समय छोटे आकारके आठ पृष्ठों-वाला जयभारती नामक पत्र प्रकाशित हुआ और इसके प्रत्येक अंकका दाम केवल एक पैसा रखा गया। सितम्बर सन् १९३४ मे फ्री प्रेस ऑफ इण्डियाने, जिनका एक दैनिक पत्र 'इण्डियन एक्सप्रेस' अंग्रेजीमे पहले से ही निकलता था, तामिल भाषाका भी एक दैनिक 'दिनमणि' निकाला। श्री टी० एस० चोक्कालिंगम् (जो सन् १९३० तक तामिल-नाडुमे काम कर चुके थे) इसके सम्पादक नियुक्त हुए। दो पैसेमे बिकने-वाला यह अखबार विविध लेखों आदिकी मनोरञ्जक सामग्री देता था और इसके अग्रलेख गहरा प्रभाव उत्पन्न करनेवाले होते थे।

इस नये पत्र 'दिनमणि ने तीन ही सप्ताहके भीतर अत्यधिक सफलता प्राप्त कर ली। उस समय उसकी प्रचार-संख्या उस समयतकके अन्य सभी तामिल पत्रोंकी सम्मिलित ग्राहक-संख्यासे भी शायद अधिक बढी हुई थी। शुरूमे तो इसका प्रचार बढनेसे अन्य पत्रोंके प्रचारमे आंशिक कमी ही हुई। दरअसल हुआ यह कि पाठकोंकी संख्या ही काफी बढ गयी किन्तु कुछ ही महीनोंके बाद अन्य पत्रोंकी ग्राहक संख्या तेजीसे घटने लगी। पत्रका कम मूल्य भी इसकी सफलताका, कुछ अंशतक, एक कारण था। जो हो, 'दिनमणि के प्रकाशित होने लगनेके बाद अधिक समय नही बीतने पाया कि तामिलनाडु तथा इण्डिया नामक दोनों पत्रों को समाधि ले लेनी पडी। दूसरे पत्रका विलय जाप्तेमे 'दिनमणि' में ही कर लिया गया।

यद्यपि 'जयभारती' पत्र सन् १९४० तक निकलता रहा पर न तो 'दिनमणि से और न 'स्वदेशमित्रम् से ही उसकी प्रतियोगिता थी। एक ही

पैसा तो उसका मूल्य था, इसलिए रेलवे इत्यादिसे उसे वाहर भेजनेका खर्चतक बहुत अधिक प्रचारके अभावमें, पूरा पूरा नहीं निकल सकता था। 'दिनमणि'के निकलने लगनेके दो-ही तीन वर्षोंके भीतर 'स्वदेश-मित्रम्' को भी बाध्य होकर प्रत्येक अंकका दाम घटाकर दो पैसा कर देना पडा। कुछ समयके बाद उसने अपना चोला बदल डाला और वह 'फीचर पेपर' (प्रासंगिक लेखोंवाला पत्र) बन गया।

यह अब सभी तामिल दैनिकोंका आम रवाज बन गया है, सभी पत्रोंमे पृष्ठव्यापी पताका शीर्षक दिये जाते है, साथमे दो स्तंभों तथा तीन स्तंभोंके भी शीर्षक रहते है, कुछ समाचार बाक्समे दिये जाते है, चित्र तथा आजके लोकप्रिय पत्रोंकी शोभा बढानेवाली अन्य बातें भी रहती हैं, सभी पत्रोंका मूल्य एक आना प्रति अंक होता है।

द्वितीय महायुद्धके शुरू होनेपर मद्रासमे 'दिनमणि' और 'स्वदेशमित्रम्', बस ये ही दो दैनिक निकलते थे। १९४० मे 'भारत-देवी' नामक तामिल-के एक तीसरे दैनिकका भी जन्म हुआ। एक और दैनिक सन् १९३५ से ही बराबर प्रकाशित हो रहा था—विदुथालाई—किन्तु वास्तवमे यह समाचारपत्र न होकर मुख्य रूपसे लेखों तथा विचारोंका पत्र था। अब्राह्मणोंके हित रक्षणकी ओर यह पत्र विशेष ध्यान देता था। सन् १९४३ मे श्री टी एस चोकालिंगम्‌ने 'दिनमणि' से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया और सन् १९४४ मे उन्होने 'दिनसारी' नामक नया पत्र निकला। यह सन् १९५२ मे बन्द हो गया।

सन् १९१५ से १९५२ के बीच तामिल भाषाके कुल १५ पत्र प्रकाशित हुए किन्तु इनमेसे केवल सात ही जीवित रह सके। इनकी विभिन्न-कालीन स्थितियों (मंजिलो) का ब्योरेवार अध्ययन करनेसे समाचारपत्रोंमे प्रयुक्त होनेवाली भाषा, मेकअप, प्रचार-संख्या और बिक्रीकी व्यवस्था आदिमे क्रमश जो विकास होता गया, उसका आभास पाठकोंको प्राप्त हो सकेगा।

भाषा सम्बन्धी विकास

अंग्रेजीके पत्रोंमे जिन जिन विषयोंकी चर्चा की जाती है, उनका समावेश तामिल पत्रोंमे भी करनेके लिए नये नये शब्द गढ़नेके कार्यका श्रीगणेश स्वदेशमित्रम्‌ने इस शतीके प्रथम दो दशकोंमे किया। अंग्रेजीके राजनीतिक तथा प्रशासन सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दोंके लिए कितने ही नये शब्द बनाये गये तथा बहुतसे संस्कृतसे भी लिये गये। यद्यपि इस बातकी भरपूर चेष्टा की जाती थी कि अंग्रेजी न जाननेवाले पाठक भी तामिलपत्रमें प्रयुक्त शब्दावलीका अर्थ भलीभाँति समझ ले, फिर भी भाषामें एक तरहकी कृत्रिमता आ ही जाती थी। 'देशभक्तम्' का जन्म होनेके बाद पत्रोंकी भाषामें स्वाभाविकता लानेका प्रयत्न किया गया किन्तु यह पत्र अधिक समयतक जीवित न रह सका, इसलिए 'स्वदेश-मित्रम्' की शैलीमें अधिक फेरफार न किया जा सका।

'इण्डिया' तथा 'तामिलनाड्' ने कहे गये शब्दोंको ज्योंके त्यों रखनेकी (डाइरेक्ट) प्रणाली शुरू की पर उनमें समाचारोंका परिमाण उतना अधिक नहीं होता था जितना 'स्वदेशमित्रम्'में रहता था। किन्तु 'दिनमणि' पत्रने तो प्रकाशन आरम्भ करनेके दो वर्षोंके भीतर सारी स्थिति ही बदल दी। उदाहरणके लिए जब कभी उसे इस तरहका समाचार छापना पड़ता था—'मनीलामें भूकम्प हुआ'—तब इसके साथ ही वह ये शब्द भी अवश्य जोड़ देता था—'मनीला उस द्वीपपुञ्जकी राजधानी है जो फिलिपाइन्स कहलाता है तथा जो यहाँसे ४००० मील, मलायाके पूर्वमें है।' पाठकके मनमें किसी तरहका सन्देह रहने ही न दिया जाता था। उसकी लोकप्रियताका यह एक मुख्य कारण था।

प्रचार-संख्या

प्रथम महायुद्धके पूर्वके कालमें ऐसी सनसनीदार घटनाएँ कम ही होती थीं जिनके कारण जनताके हृदयमें समाचार जाननेकी इच्छा प्रबल हो उठती। हाँ, बीच-बीचमे एकाध ऐसी घटना अवश्य हो जाती थी जैसे लोकमान्य तिलकपर चलाया गया मामला, जिससे समाचार पत्रोंका

आकर्पण या प्रभाव कुछ समय तक बना रहता था। सन् १८९७ के बोयर-युद्धने इस जिज्ञासा को दुगुना बढा दिया। इसीसे 'स्वदेशमित्रम' को साप्ताहिकसे दैनिक बनानेका साहस किया जा सका। रूस-जापानके युद्धने भी जनताके एक वर्गमे समाचार-चेतना जागरित कर दी और स्वदेशी आन्दोलन (१९०६ से १९०९) ने भी समाचारपत्रके साथ पाठकोकी घनिष्ठता बढा दी। किन्तु वास्तवमे समाचारोकी लालसा प्रथम महायुद्धके ही कारण लोगोमे उत्पन्न हुई।

सन् १९१५ मे श्री ए० रंगस्वामी ऐय्यगरने, जो अभीतक 'हिन्दू' के प्रधान सहायक सम्पादक थे, 'स्वदेशमित्रम्' के सम्पादनका तथा प्रबन्ध का दायित्व ग्रहण कर लिया। पत्रमे अनेक सुधार कर उन्होने उसका स्तर ऊँचा उठाया और उसमें समाचार भी अधिक देनेकी व्यवस्था की। श्री ऐय्यगर सन् १९२८ तक इसमे रहे। फिर वे पुन. 'हिन्दू' मे चले गये।

इस समय पत्रोंकी ग्राहकसख्या कितनी थी, इसके आँकडे प्राप्त करना सम्भव नहीं हो सका, फिर भी यह मान लेनेमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती कि १९२८ तक तामिलके दैनिक पत्रोंकी प्रचार-सख्या १२ हजारसे अधिक न रही होगी। इनमेसे ६० प्रतिशत प्रतियॉ ग्राहकोके पास डाक द्वारा भेजी जाती थीं। एजेण्टो द्वारा अखबारकी बिक्री करानेका तरीका अधिक प्रचलित नहीं हो पाया था। वह रेलमार्गसे सम्बद्ध थोडेसे जिला-केन्द्रों तथा म्यूनिसिपल शहरोंतक ही सीमित था। यह एक बडी भारी बाधा थी जिसके कारण पत्रोंके प्रचारमे अधिक वृद्धि नहीं हो पाती थी।

एजेण्टों द्वारा बिक्रीकी व्यवस्था

तामिलभाषी दस जिलोंमें (आबादी २॥ करोड) इस समय कमसे कम ४०० स्थान ऐसे हैं जहॉ समाचारपत्रोंके एजेण्ट रहते है। समाचारपत्रोंकी प्रतियॉ इनके पास सीधे पत्र-कार्यालयोंसे पहुॅच जाती है और ये उन्हें ग्राहकों तथा स्थानीय दूकानदारों आदिको वितरित कर दिया करते हैं। इसके सिवा बहुत से एजेण्ट आसपासके १०–१५ गॉवोंमे भी

पत्र पहुँचानेका जिम्मा अपने ऊपर ले लेते है। इसलिए मद्रास शहरमे प्रकाशित होनेवाले पत्रोको देहातोमे भी प्रचारका व्यापक क्षेत्र मिल जाता। इन पद्धतिके विकासका इतिहास असाधारण दिलचस्पीका विषय है और पाठकोंकी सख्यामे वृद्धि होनेका कारण भी इससे स्पष्ट हो जाता है।

सन् १९३० का सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ होनेके ठीक पहले श्री एस गनेशन्ने, जो उन दिनोके गान्धीजीके आन्दोलनके कट्टर समर्थक थे, 'स्वतन्त्र-सघु' (स्वतन्त्रताका शखनाद) द्विदैनिक पत्र निकाला। सरस्वतीके आकारके ८ पृष्ठ इसमे रहते थे, जिसके प्रथम पृष्ठ पर राजनीतिक व्यग्यचित्र तथा अन्य सात पृष्ठोंमे जोशमे भरी हुई सरकार-विरोधी टीका-टिप्पणियाँ और सलाह-उपदेश रहते थे। 'स्वतन्त्र-सघु' अत्यन्त लोकप्रिय हो गया और गान्धी-अरविन समझौता तथा १९३२ के द्वितीय सविनय-अवज्ञा-आन्दोलनके बीचवाले एक वर्षमे तामिलनाडके प्रत्येक जिलेमें इस प्रचार-पत्रकी माँग बहुत ज्यादा बढ गयी थी। आन्दोलनके समर्थक स्थानीय कार्यकर्त्ताओने 'सघु' की सख्याएँ प्राप्त कर स्थानीय लोगोंमे बाँटे देने-का काम अपने जिम्मे ले लिया। उन्होने पैसा कमानेकी गरजसे यह काम नही शुरू किया था किन्तु एजेण्टोंके लिए यह विशेष लाभदायक प्रमाणित हुआ। मद्रासका पत्र दूर-दूरके गाँवोंमें एक पैसेमें पहुँचा देनेमे 'सघु' का तथा उसी टाँचेके अन्य पत्र 'गान्धी' का प्रचार बहुत अधिक बढ गया—लगभग एक लाख हो गया। इस पद्धतिसे तामिल प्रदेशके लोगोमे समाचारपत्र पढनेकी आदत डालनेमें बडी सहायता मिली। यद्यपि एक पैसेवाला अर्द्ध-साप्ताहिकपत्र सन् १९३४ में बन्द हो गया, फिर भी एजेण्टो द्वारा बिक्रीकी व्यवस्था मानो बराबर कायम रहनेके लिए ही आरम्भ की गयी थी। सन् १९३० के पहले कम-से-कम ५० प्रतिशत प्रतियाँ डाक द्वारा सीधे ग्राहकोंके पास भेजी जाती थी, किन्तु अब वित-रणके ढगमें इतना परिवर्तन होगया है कि नये समाचारपत्रोंकी प्रकाशित

प्रतियोंमेंसे ८० प्रतिशतकी खपतके लिए इन एजेण्टोंका ही मुँह ताकना पडता है ।

कम मूल्यका लाभ

जैसा कि हम पहले कह चुके है, 'दिनमणि' की सफलताका एक कारण शुरूमें उसका कम मूल्यमे प्राप्य होना भी है। यह बात हमे स्मरण रखनी चाहिये कि 'न्यूयार्क टाइम्स' का मूल्य यद्यपि पाँच सेण्ट (लगभग तीन आने) है, फिर भी वह वहाँके कारखानोंमे काम करनेवाले मामूली श्रमिकके तीन मिनटसे भी कम कामका मूल्य होता है जब कि भारतमे एक आना मूल्य भी सामान्य श्रमिकके एक घण्टेकी मजूरीके बराबर होता है। मूल्यके घटाये या बढाये जानेका कितना असर किसी पत्रके प्रचारपर पडता है, यह उस अनुभवसे जाना जा सकता है जो हालमें ही 'दिनमणिके' सम्बन्धमे हुआ था। जनवरी-फरवरी सन् १९५१ मे पत्रका मूल्य एक आनेसे बढाकर डेढ आने प्रति अङ्क कर दिया गया था। ए० बी० सी० के प्रमाणपत्रके अनुसार इसका परिणाम यह हुआ कि पत्रकी औसत खपत ५५ हजार प्रतियाँ ही रह गयी, जब कि दिसम्बर सन् १९५० मे वह ६७ हजार थी।

प्रचारका इस तरह घट जाना आश्चर्यकी बात नहीं, विशेषकर जब हम देखते है कि ग्रामीण परिवारके आयव्ययकमे समाचारपत्रका स्थान, यदि उसके लिए कोई गुजाइश रखी जा सके तो, प्राय सभाव्य व्यय सूचीके बिलकुल अन्तमें रहता है। फिर पुरानी प्रचार-सख्यातक पहुँचने में कई महीनोंका समय लग गया। यह ठीक है कि अक्सर एक ही प्रति से दो-तीन पाठक काम चला लेते है, अत पत्रकी खपतमे थोडी सी कमी हो जानेसे ही यह न समझ लेना चाहिये कि पाठकोंकी सख्यामे भी उतनी कमी हो गयी, फिर भी कुछ कमीका होना तो मान ही लेना पड़ेगा। इसलिए मालूम यही पडता है कि समाचारपत्रोका मूल्य यथा-सम्भव कम रखनेसे ही समाजका अधिक हित होनेकी सम्भावना है।

तामिल पत्रोंके बराबर हिन्दीके पत्रोका प्रचार न होनेका एक कारण

यह हो सकता है कि उनमेसे बहुतोका मूल्य दो आने प्रति अक रखा गया है। बगालकी बात थोडी-सी भिन्न है। उक्त क्षेत्रके लोगोमे समाचारपत्र पढनेकी आदत, अन्य प्रान्तवालोकी तुलनामे, काफी आगेतक बढ चुकी है।

मिथ्या धारणाएँ

अग्रेजी पत्रोको आदतन पढनेवाले जो पाठक तामिल भाषाके पत्र नही पढा करते, उनके मनमे कुछ मिथ्या धारणाएँ सी देख पडती ह जिनका मे निवारण कर देना चाहता हूँ। लोगोके मनमे एक धुंधला-सा विश्वास यह रहता है कि बहुतसे समाचार पहले अग्रेजीके पत्रोमे छप जाते है, तब कही तामिलके पत्रोमे उनके दर्शन होते है, साथ ही महत्व-पूर्ण समाचार जिस परिमाणमें अग्रेजीके पत्रोमे छपते है, उस परिमाणमे तामिलके पत्र उन्हे नहीं छापते।

टेलीप्रिण्टर द्वारा समाचार प्राप्त करनेकी व्यवस्थाके पहले यह बात सत्य मानी जा सकती थी किन्तु अब इसमे कोई सचाई नही। तामिलके पत्रोका मेरा जो अनुभव है, उसके आधारपर मे निर्भीकतापूर्वक कह सकता हूँ कि देशी भाषाके पत्रोमे जितने समाचार छपते है—अपने-अपने क्षेत्रके समान महत्त्वके पत्रोंमे तुलना कर तो—उतने ही अग्रेजीके पत्रोंमे निकलते ह। व्यावहारिक रूपसे दोनोमे कोई अन्तर नही पडता, समयकी दृष्टिसे और दोनोंके सापेक्ष विस्तारकी दृष्टिसे भी। बल्कि भारतीय भाषाओके समाचारपत्रोंके पक्षमे यह बात भी कही जा सकती है कि वे इस ढगसे समाचार छापते हे जिससे पाठक उन्हे अग्रेजीकी अपेक्षा अधिक आसानीसे समझ ले सकता है। समाचार सम्बन्धी सब तार पत्रोंके कार्यालयोमें अग्रेजीमें ही पहुँचते है। अग्रेजी पत्रमे काम करनेवाले सहकारी सम्पादकके लिए तो यह सम्भव है कि वह कोई समाचार, जिसे वह स्वय नही समझता, ज्योंका त्यों छापनेके लिए प्रेसमें भेज दे किन्तु तामिल पत्रके सहायक सम्पादकके लिए हर मजमूनका अर्थ भलीभाँति समझ लेना आवश्यक है, तभी वह तामिलमे उसका अनुवाद

कर सकता है। तामिलके सहायक सम्पादकको एक ही साथ इन तीन आदमियोंका काम करना पड़ता है—सहायक सम्पादक, अनुवादक तथा भाष्यकार। इसलिए यह समझनेके लिए कोई कारण नहीं प्रतीत होता कि देशी भाषाके किसी पत्रका काम निम्न कोटिकी बौद्धिक योग्यतावाले व्यक्तियोंसे चल जा सकता है।

अंग्रेजीके मजमूनका जब अच्छी तरह अनुवाद कर लिया जाता है और जब वह छापा जाता है, तब मूल अंग्रेजीकी अपेक्षा वह अधिक स्थान लेता है। भारतीय भाषाओंमें स्वरोंका मेल सूचित करनेके लिए ऐसे चिह्न बनाये गये हैं जो वर्णके ऊपर-नीचे लिखे जाते हैं, इसलिए जो मजमून अंग्रेजीके ६ पाइंट टाइपमें कम्पोज किया जा सकता है, वही हिन्दी, तामिल आदिमें ९ या १० पाइंट टाइपमें कम्पोज कराना पड़ेगा, नहीं तो उसे पढ़नेमें आँखोंपर बेहद जोर पड़नेकी सम्भावना है (१ इंच = ७२ पाइंट)। इसलिए हिन्दीका टाइप अंग्रेजीसे ज्यादा स्थान घेरता है और किसी लेखांशको छापनेमें ५० प्रतिशत अधिक स्थानकी आवश्यकता पड़ सकती है।

स्वभावत· कुछ लोग यह मान लेते हैं कि उसी आकार-प्रकारका देशीभाषाका पत्र, जो सामान्य स्थिति है उसे देखते हुए, उतनी विस्तृत और पूरी रिपोर्ट नहीं दे सकता जितनी अंग्रेजीके पत्र। दरअसल होता यह है कि ऐसे वक्तव्य तथा भाषण जो विशेष महत्त्वपूर्ण होनेके कारण पूर्ण रूपमे छापने योग्य समझे जाते हैं, उसी तरह अर्थात् विस्तारके साथ छापे जाते हैं। अन्य समाचारोंका अच्छी तरह अध्ययन मनन करनेके बाद सहकारी सम्पादक उन्हे फिरसे लिख डालता है या उन्हे कुछ संक्षिप्त रूप दे देता है किन्तु ऐसा करते समय इस बातका पूरा ध्यान रखता है कि कोई भी आवश्यक या सम्बद्ध अंश छूटने न पावे।

क्रिकेट, टेनिस आदि खेलोंके समाचार, जो अंग्रेजी पत्रकी लगभग दशमांश जगह घेर लेते हैं, देशी भाषाओंके पत्रोंकी अनिवार्य विशेषता नहीं है। इस प्रकार स्थानकी जो बचत होती है, उनमें सामान्य महत्त्वके

ओर समाचार दिये जा सकते हैं तथा मुफस्सिलके समाचार छापे जा सकते है, जो तामिलनाडके पत्रोको एक मुख्य विशेषता है।

मद्रासमे निकलनेवाले किसी अंग्रेजी पत्रके बहुतसे पाठक ग्राम-निवासी हो सकते है, फिर भी जितने ग्रामीण पाठक देशी भाषाके पत्रके होगे उतने अंग्रेजीके नही हो सकते। पाठकोके इस विशेष अनुपात के कारण ही तामिल पत्रोको मुफस्सिलके समाचार अधिक देने पडते ह— ऐसे समाचार जिनका उक्त गॉव या कस्बेके सिवा अन्य लोगोके लिए कोई विशेष महत्त्व नही होता।

तामिल पत्रको जिला-नगरोमे ही नहीं, वरन् अन्य छोटे नगरो, कस्बोंमे भी विश्वसनीय सवाददाता रखने पडते है। इनकी सख्या प्राय' सौ से लेकर डेढ सौ तक होती है। इनके सिवा अन्य व्यक्तियो तथा सस्थाओंसे प्राप्त समाचार भी छापे जाते हैं। सम्भव है कि इनके द्वारा भेजे गये समाचारोमे कोई 'समाचारत्व' न हो, फिर भी इनके पत्रो आदिकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, अन्यथा अखबारकी ग्राहक-सख्यापर प्रभाव पडे बिना नहीं रह सकता। इसलिए समाचारत्वकी कसौटी तथा ग्रामवासियोसे अच्छे सम्बन्ध बनाये रखनेकी आवश्यकताके बीच सम-झौतेका प्रयत्न करते हुए समझदारीका मार्ग हमें ढूँढ निकालना पडता है।

इस स्थितिने देशी भाषाओके पत्रोंके सामने एक समस्या खडी कर दी है। मद्रास प्रान्तके बहुतसे तामिल पत्रोंमें खेल-कूद सम्बन्धी समा-चारोंको छोडकर, अंग्रेजी पत्रकी अन्य सब बात पायी जाती है।

पाठकोंका क्षेत्रीय विभाजन

तामिल जिलोमे फैले हुए पाठकोके क्षेत्रीय विभाजनकी स्थितिसे लेखक काफी परिचित है। मद्रास शहरमे निकलनेवाला समाचारपत्र लगभग ६० हजार वर्गमीलके क्षेत्रमें प्रसारित होता है। पाठकोमेसे १० या १२ प्रतिशत खास मद्रास शहरके तथा ४० प्रतिशत दस हजारसे अधिक आबादीवाले अन्य शहरोके होते है। शेष ५० प्रतिशत पाठक जिलेमे दूर दूरतकके गॉवोके निवासियोमेसे होते हैं। राज्यके अंग्रेजी

पत्रोंके पाठकोंमे भी देहातके काफी पाठक होते है, किन्तु तामिल पत्रो की तुलनामे उनकी सख्या इतनी अधिक नहीं होती।

फिर भी दोनोंके पाठकोंका वर्ग प्राय वही होता है, एक दूसरेसे बिलकुल भिन्न नहीं होता। उदाहरणके लिए भारतके नये सविधानका अधिनियम जब स्वीकृत हुआ, तब उसके विभिन्न पहलुओपर 'दिनमणि' में १९ लेखोंकी एक लेखमाला प्रकाशित हुई। इसके साथ ही पाठकोंके नाम सम्पादकका एक पत्र भी छपा जिसमे अनुरोध किया गया था कि जो लोग इन लेखोंको पुस्तक रूपमे खरीदना चाहे, वे तीन पैसेका कार्ड भेजकर सम्पादकको सूचित करनेकी कृपा करे। २७०० व्यक्तियोंके पत्र सम्पादकको प्राप्त हुए और जब पुस्तकके रूपमे लेख प्रकाशित हुए तो आठ दिनोंके भीतर ही ८ हजार प्रतियाँ बिक गयीं। जब तामिल पत्रोंके ८ हजार पाठक सविधान जैसे शुष्क विषयमे इतनी दिलचस्पी ले सकते हों कि पैसा खर्च कर पुस्तक खरीदनेको तैयार हो जायँ, तो यह बात आसानीसे मानी जा सकती है कि देशी पत्रोंके पाठक सामान्यतया समाजके ऐसे तत्त्वका प्रतिनिधित्व करते है जो स्थिर और आर्थिक दृष्टि से सुदृढ है।

देशी भाषाके पत्रोंमे छपे विज्ञापनोंका अधिक प्रभाव पडता है या अग्रेजी पत्रोंमे छपेका, इसपर दूसरे ढगसे विचार किया जा सकता है। मान लीजिये, मद्रासके एक अग्रेजी पत्रकी ग्राहक सख्या ६५ हजार है और तामिल पत्रकी ५५ हजार। अग्रेजी पत्रके ६५ हजार ग्राहकोंमेसे ३५ हजार तामिल क्षेत्रके निवासी होगे, जब कि तामिल पत्रके प्राय सभी अर्थात् ५५ हजार ग्राहक उसी क्षेत्रके होगे। क्रयशक्ति अपेक्षाकृत कम होनेके कारण कुछ प्रतिशत ग्राहक इनमेसे कम कर देने पडे, तो भी २० हजारका जो अन्तर है, उसमें इसकी यथेष्ट गुजाइश है। आखिर, प्रभावित करनेकी शक्तिका सम्बन्ध क्रयशक्ति या क्रय करनेकी प्रवृत्तिसे ही तो है? और इन दोनों बातोंका अग्रेजी पढने तथा समझनेकी योग्यता पर अवलम्बित होना आवश्यक नहीं। सम्भव है कि अग्रेजीकी

योग्यता आर्थिक क्षमता (अर्थात् माल खरीद सकनेकी सामर्थ्य) का बिल्कुल ही अविश्वसनीय लक्षण हो।

लेखकने तामिल पत्रोंका ही जो इतना लम्बा-चौडा वर्णन किया है, उसका एकमात्र कारण यही है कि उसे अन्य राज्योंके समाचारपत्रोंकी प्राय कुछ भी जानकारी नहीं है। इसके सिवा उसका यह भी विश्वास है कि तामिल समाचारपत्रोंकी स्थिति एव विकास-सम्बन्धी मुख्य-मुख्य बातें तथा विशिष्टताएँ कमोबेश रूपमे देशी भाषाओंके अन्य पत्रोंपर भी लागू होती है।

महाराष्ट्रमे तथा कनाडी भाषी क्षेत्रमे कुछ ऐसे साप्ताहिक तथा अर्द्ध-साप्ताहिक पत्र निकलते हैं जो जनमतके निर्माणमे अत्यधिक हिस्सा ग्रहण करते है आर जो इसके साथ ही समाचार भी छापते हैं। भारतीय पत्रो की शृंखलामे हिन्दीके पत्र ही, किसी-न-किसी कारणवश, सबसे कमजोर कडीके समान प्रतीत होते हैं और उन्हे अपनी स्थिति सुधारनेके लिए काफी परिश्रम करना पडेगा।

भारतसरकारके आर्थिक मामलोंके विभागने हालमे नमूनेके तौरपर जो पडताल (सरव्हे) करायी थी, उससे विदित होता है कि दक्षिणमें प्रत्येक परिवार ओसतन १३ आने १ पाई समाचारपत्रों तथा सामयिक पत्रोंके पीछे खर्च करता है, जब कि उत्तर प्रदेशका औसत प्रतिव्यक्ति पीछे केवल दो पाई है। (सारे देशका ओसत आठ आना है)*। इससे प्रतीत होता है कि उत्तर प्रदेशके पत्रोने देहातोंमें प्रचार बढानेका कोई ठोस प्रयत्न नहीं किया। इस प्रयत्नमे सफलता पानेका मतलब, मेरी रायमें, अनिवार्य रूपसे यह होगा कि पत्रोंको अपनी भाषाशैली बदल देनी होगी—किताबी या साहित्यिक भाषा न लिखकर उन्हे बोलचालकी भाषाका प्रयोग करना होगा। दुर्भाग्यवश हिन्दी आन्दोलनकी वर्त्तमान

* पडतालमें उत्तर प्रदेशके २८७ और दक्षिणके ५६६ परिवार सम्मिलित किये थे। (देखो 'दि नेशनल सैंपिल सरव्हे—जनरल रिपोर्ट न० १—अक्टूबर १९५०—मार्च १९५१, सूची ८३)

प्रवृत्ति इसके ठीक विपरीत मालूम होती है। भाषामें जान बूझकर संस्कृतके शब्द भरने और खूब जाने-समझे हुए शब्दोंको चुन-चुनकर बाहर निकाल देनेकी चेष्टाका परिणाम यही हो सकता है कि भाषा ऐसा रूप ग्रहण कर ले जो जनताके लिए बिल्कुल अपरिचित और नया-सा जान पड़े मानो वह कोई विदेशी भाषा हो। गांधीजीने तथा कांग्रेसने देशके सामने लक्ष्य तो यही रखा था कि जो भाषा अधिकांश भारतीयोंकी समझमें आ सके, वही राष्ट्रभाषा बनायी जाय, किन्तु वर्त्तमान प्रवृत्ति तो राष्ट्रभाषाको स्वयं हिन्दी भाषाभाषियोंके लिए भी दुरूह बना देनेकी जान पड़ती है। यदि यही रवैया जारी रहा तो इसमें सन्देह ही है कि संविधानमें निर्धारित १५ वर्षकी अवधिकी समाप्तिपर केवल हिन्दी ही देशकी एकमात्र राष्ट्रभाषा बना दी जाय।

केवल हिन्दीको ही एकमात्र राष्ट्रभाषाके रूपमें स्वीकार कर लेनेका क्या परिणाम भारतीय समाचार-पत्रोंपर पड़ेगा, यह प्रश्न इस समय केवल शास्त्रीय महत्त्वका (कोरे मौखिक विवादका) ही है। जो हो, भाषा-वार प्रान्तोंका निर्माण हो जानेसे शायद उन उन क्षेत्रोंमें देशी भाषाके पत्रोंका प्रभाव बढ़ जानेमें सहायता मिले।

"अवांछनीय" पत्रकारी

यदि मैं पक्षपात न कर सत्य बात कहना चाहूँ तो मुझे स्वीकार करना पड़ेगा कि देशी भाषाके पत्रोंमें काम शुरू करनेवाले नये पत्रकारोंके सामने बड़ा भारी प्रलोभन यह रहता है कि वे ऐसे पाठकोंको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिए, जो कुछ पढ़-लिख तो लेते हैं किन्तु विचार करने, समझनेकी क्षमता जिनमें नहीं है, ऐसे निम्नकोटिके साधनोंका प्रयोग करें जो पत्रकारीके उच्च आदर्शके उपयुक्त न हों। जो आदर्श मेरी निगाहमें है वह है बिना तोड़ा-मरोड़ा हुआ और बिल्कुल सही समाचार देने, छापनेकी आवश्यकता। एक प्रवृत्ति और देख पड़ती है— वह है क्षुद्रता, अशिष्टताकी ओर झुकाव।

सौभाग्यवश इस समय जो सात तामिल पत्र निकलते हैं, उनमें केवल

एक ही ऐसा है और उसके पाठकोंमें अधिकतर ऐसे हैं जिन्हें हम "समाजके कम जिम्मेदार तत्त्व" ही मान सकते हैं। यह पत्र मुख्य रूपसे प्रचार करने या आन्दोलन चलानेवाला पत्र समझा जाता है और सार्वजनिक महत्त्वकी जानकारी या यथार्थ समाचार देनेके साधन रूपमें इसकी कोई प्रतिष्ठा नहीं। मैं समझता हूँ कि पत्रकारोंके लिए कोई नीति-संहिता तैयार कर देने या पत्रकार-संघोंमें ऐसे कार्योंकी तीव्र निन्दा करनेसे भी समाचारोंको तोड़-मरोड़कर या नमक-मिर्च मिलाकर छापनेकी प्रवृत्ति रोकनेमें प्रभावकर सहायता नहीं मिल सकती। और इस अत्यन्त वैयक्तिक व्यवसायमें कोई भी पत्रकार अपने अन्य बन्धुओंके कार्योंपर विचार करनेवाले न्यायाधीशके रूपमें स्वीकार नहीं किया जा सकता। साधारण तौरपर प्रत्येक समाचार-पत्रको वैसे ही पाठक मिल जाते हैं जिनके योग्य वह होता है। इससे स्पष्ट है कि किसी पत्रको किसी कुप्रवृत्तिसे रोकनेका एकमात्र प्रभावकर दण्डात्मक उपाय उसके पाठकोंका उससे मुँह मोड़ लेना, उसका अनुमोदन न करना ही है। जो लोग यह पसन्द न करते हों कि समाचार या घटनाओंके विवरण विकृत रूपमें छापे जायँ उन्हें यह जाननेके अपने कौतूहलपर विजय पानेका प्रयत्न करना चाहिये कि इस तरह तोड़ मरोड़ कर छापा गया विवरण पढ़नेमें कैसा मालूम होता है। मुझे निश्चय है कि ऐसा होने पर (उनके निरनुमोदनका) पत्रकी नीतिपर कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ेगा।

समाचार छापते समय किसी तरफ थोड़ा-सा 'झुकाव' होना अनिवार्य है किन्तु देशी भाषाओंमें प्रकाशित होनेवाले इस देशके अधिकतर पत्र यह समझते हैं कि एक ऐसी रेखा खींची जानी चाहिये और खींची भी जा सकती है, जिससे आगे "झुकाव' होने का मतलब होगा सत्यका अपभ्रंश या विरूपण।

एक और प्रवृत्ति, जो उतनी अधिक बुरी नहीं समझी जाती आपसकी प्रतिस्पर्द्धाके कारण उत्पन्न होती है। अपना प्रचार बढ़ानेकी उत्सुकतावश कुछ पत्र एक अपने ही द्वारा निर्धारित किये गये आदर्शसे

स्खलित हो जाया करते हैं—किसी समाचार-विशेषपर ऐसा शीर्षक न देकर जो सार्थक और महत्त्वपूर्ण हो, अक्सर ऐसा शीर्षक लगा दिया जाता है जो लोगोंको लुभानेवाला या सनसनीखेज हो। ऐसा करते समय कभी कभी तो उन समाजशास्त्रीय परिणामोंकी भी उपेक्षा कर दी जाती है जिनके लिए प्रयत्न करना पत्रका अभीष्ट रहा है। पता नहीं, ऐसे अवसर पर यह बात किसीकी समझमें आती है या नहीं कि इस प्रवृत्तिके कारण पत्रकारकलाके इस आधारभूत आदर्शकी हत्या हो जाती है कि प्रत्येक पत्रको हर हालतमें अपने प्रति, अपने सिद्धान्तोंके प्रति, ईमानदार बने रहना चाहिये।

इस समय जो पत्र विद्यमान हैं, उनमें से कितने ही पत्र विशेष आदर्शोंकी पूर्त्तिके लिए और जनताको राजनीतिक शिक्षा प्रदान करनेके साधन रूपमें प्रकाशित किये गये थे। यह बहुत पहलेकी बात है जब पत्रोंसे रुपया कमानेकी भावनाका कहीं पता भी न था। यदि ऐसे पत्र भी उक्त आदर्शोंका परित्याग कर दें तो यह बहुत ही दुःखकी बात होगी।

समाचारपत्रोंको एक उद्योग या व्यवसाय समझना महायुद्धके बादका प्रचलन है। समाचारपत्रोंने, कमसे कम देशी भाषाके पत्रोंने, कभी अधिक मुनाफा नहीं कमाया। युद्धकालमें अखबारी कागजपर नियंत्रण लगाकर उनकी अधिकतम पृष्ठ-संख्या तथा उसीके अनुसार निम्नतम मूल्य निर्धारित कर दिया गया। इसके परिणाम स्वरूप करीब करीब सभी समाचारपत्रोंको कुछ न कुछ लाभ प्राप्त करनेके लिए मानो विवश होना पड़ा। इसीसे पत्रकारकलामें व्यावसायिकताको प्रवेश करनेका अवसर मिला।

समाचारोंको अपने ढंगपर तोड़-मरोड़कर छापनेका जो आरोप देशी भाषाओंके पत्रोंपर लगाया जाता है, उसकी चर्चा तो हम ऊपर कर ही चुके हैं। अब हम उनपर लगाये गये इस दूसरे आरोपकी भी समीक्षा करेंगे कि कुछ पत्र गन्दी या अश्लील बातें छापते हैं या कुछ

रहस्यादिका उद्घाटन कर लोक-निन्दा फैलानेका प्रयत्न करते हैं। दैनिक पत्रोंपर दृष्टि डालें तो हम देखेंगे कि देशी भाषाओंके कितने ही प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण पत्र अंग्रेजीके पत्रोंके साथ साथ ही चलाये जाते हैं। यह बात मान लेनेमें कोई हर्ज नहीं कि इन प्रतिष्ठानोंके दो विभिन्न अंगों या प्रशाखाओंमें अश्लीलताके सम्बन्धमें भिन्न-भिन्न रुख नहीं बरता जा सकता। मुझे तो लगता है कि यह आरोप दैनिक पत्रोंपर उतना लागू न होकर समाचार न छापनेवाले अराजनीतिक तथा असाहित्यिक सामयिक पत्रोंपर ही ठीक बैठता है। ये पत्र केवल अपनी अश्लीलताके ही कारण पढ़े जाते हैं। पत्रकारकलासे इनका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। इन्हें तो अश्लील साहित्यका ही अंग समझना चाहिये और उसी आधारपर इनके साथ व्यवहार किया जाना चाहिये।

देशी भाषाके पत्र भारतकी अंग्रेजी जाननेवाली तथा अंग्रेजी न जाननेवाली जनताके बीच चौड़ी सांस्कृतिक खाई न बनने देनेके प्रयत्नमें सहायता करते हैं। देशी भाषाके पत्रोंसे होनेवाले अन्य महत्त्वपूर्ण लाभोंके सम्बन्धमें सन् १८७८ में लिखी गयी टिप्पणियोंकी बात, शब्दावलीके थोड़ेसे हेर फेर के साथ आज भी लागू होती है।

मद्रास सरकारके सचिव श्री रोबिनसनने लिखा था—"वह (देशी भाषाका पत्र) हमारी भावना और क्षोभका समुचित मापक समझा जाता है।"

उस समयके बंगालके राज्यपालने लिखा था—"मैं देशी भाषाके पत्रोंको भारतीय जनताके बहुसंख्यक लोगोंके हृदयोंमें बहनेवाली उपधाराओंका सूचक मानता हूँ।"

वाइकाउंट क्रेनब्रुकने लिखा था—"भारतके सभी अत्यन्त अनुभवी प्रशासकोंने उस भारी कठिनाईका अनुभव किया है जो वहाँवालोंकी सामाजिक स्थिति तथा राजनीतिक भावनाका पता लगानेमें होती है। देशी भाषाके पत्र इन बातोंका पता लगानेके लिए हमेशा ही बहुमूल्य साधन माने जाते रहे हैं।"

कोई भी आदमी इसमें एक बात और जोड़ देना चाहेगा—इस स्वतन्त्र लोकतन्त्रमें देशी भाषाका पत्र शिक्षा प्रदान करनेवाला तथा विधियों, अधिनियमों, घोषणाओं आदिका अथापन (व्याख्या) करनेवाला, साथ ही सरकार और देहातोंमें रहनेवाली अधिकांश जनताके बीच वास्तविक कड़ीका काम करनेवाला साधन है। यह वह विकासशीलकार्य है जिसके लिए अंग्रेजी पत्रोंके साथ-साथ देशी भाषाके अच्छे पत्र तथा सुदृढ रूपसे स्थापित अन्य पत्र अपने आपको तैयार करनेका प्रयत्न कर रहे हैं।

---

३. समाचार-समितियाँ

बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें भारतीय समाचारपत्रोंकी संख्या बढ जानेसे अधिक सस्तेमें समाचार प्राप्त करनेकी आवश्यकता समझी जाने लगी। अंग्रेजी तथा देशी भाषाके बडे पत्रोंने भारत सरकारकी राजधानी तथा महत्त्वपूर्ण नगरोंमें अपने विशेष संवाददाता नियुक्त कर दिये किन्तु केवल इस उपायसे अपेक्षाकृत थोडे खर्चमें व्यापक क्षेत्रीय समाचार प्राप्त करनेकी व्यवस्था न हो सकी। बडे बडे समाचारपत्र तो कतिपय स्थानों-में अपने निजी संवाददाता रखनेके प्रयत्न करते थे किन्तु छोटे पत्र प्रान्तके अन्य पत्रोंसे समाचारोंकी नकल करनेपर अवलम्बित थे।

रायटर कंपनीने सन् १८७८ में अपनी एक शाखा बम्बईमें स्थापित की। इसका उद्देश्य व्यापारियोंको बाजार-भावके आँकडे आदि देना था किन्तु शीघ्र ही इसने अपनी कार्य परिधि बढा ली और भारतीय पत्रोंको विदेशी समाचारोंका सारांश दिया जाने लगा। उन दिनों प्रथम पृष्ठके आधे कालममें रायटरके तार रहते थे और भारतीय समाचारोंके तार कालमके अष्टमांशमें आ जाते थे। शेष भारतीय समाचार कलकत्ते बम्बई तथा मद्रासके समाचारपत्रोंमें ले लिये जाते थे।[९]

वार्त्तावहनके साधनोंकी कमी तथा समाचार भेजनेकी दर बहुत ऊँची होनेके कारण रायटर कम्पनी धीरे धीरे सीमित प्रगति ही कर सकी। रायटर द्वारा समुद्री तारसे समाचार प्राप्त करनेकी पद्धति यहाँ रहनेवाले अंग्रेजोंने बहुत पसन्द की, क्योंकि अपने देशकी घटनाओंसे सम्पर्क बनाये रखनेमें वह सहायक थी। भारतीय समाचारपत्रोंमें भारतकी खबरें अब भी कम ही देखनेको मिलती थीं।

डा० के० सी० राय ही वह व्यक्ति थे, जिनके मनमें सबसे पहले

---

९ बार्न्स, पृ० २७७

वर्त्तमान शताब्दीके प्रारम्भिक कालमें भारतीय समाचार समितिकी स्थापनाका विचार उत्पन्न हुआ। रायसाहब कलकत्ते-बम्बईके कतिपय पत्रोंके भारत सरकारकी राजधानीमें स्थित विशेष संवाददाता थे। यदि वे केवल अपना ही काम करते रहते तो वे निर्वाहके लिए अच्छी रकम कमा सकते थे। किन्तु उन्होंने अनुभव किया कि मुझे जीवनमें एक विशेष कार्य पूरा करना है। देशके भीतरके समाचारोंके वितरणमें लगी हुई ब्रिटिश तथा अमेरिकन वृत्त-संस्थाओंकी कार्यविधि आदिका ज्ञान उन्होंने पहले ही प्राप्त कर लिया था।

'स्टेट्समैन'के विशेष संवाददाता एवेरार्ड कोट्स, तथा 'मद्रास मेल', 'दि एडवोकेट ऑफ इण्डिया', 'दि लन्दन डेलीमेल' तथा भारत सरकारके साथ रहनेवाले रायटरके प्रतिनिधि एडवर्ड बकके साथ समझौता कर रायने एक भारतीय समाचार समिति बनानेका निश्चय किया। यत 'इण्डियन पोस्ट्स एण्ड टेलीग्राफ्स ऐक्ट' के अनुसार केवल रजिस्ट्रीशुदा पत्रोंको ही रियायती दरपर समाचारसम्बन्धी तार भेजे जा सकते थे, इसलिए रायने कलकत्तेके तीन पत्रोंसे समझौता किया कि उनकी ओरसे जो समाचार 'दि इण्डियन डेली न्यूज' के नामसे जिसके वे संवाददाता थे, भेजे जायँ उन्हें वे परस्पर बाँट लें। इस अधिनियममें बादमें संशोधन कर दिया गया जिससे रजिस्ट्रीशुदा समाचारपत्र ही नहीं वरन् वृत्त संस्थाओंको भी प्रेससम्बन्धी तार इत्यादि रियायती दरमें भेजनेकी सुविधा प्राप्त हो गयी। इस प्रकार सन् १९१० में 'असोशिएटेड प्रेस ऑफ इण्डिया' के नामसे प्रथम भारतीय समाचार-समितिकी स्थापना की गयी।

श्री रायने भारतके मुख्य-मुख्य नगरोंमें शाखाएँ खोलकर इस समाचार-समितिको अखिल भारतीय संस्थाके रूपमें संघटित करनेका उपक्रम किया। उनकी सहायता श्री यू० एन० सेन (अब सर उषानाथ सेन) कर रहे थे, जिन्होंने 'हिन्दू' तथा 'स्वदेशमित्रम्'के सहयोगसे मद्रासमें एक शाखा स्थापित की। जहाँ भी तीन समाचारपत्र कुल एक हजार रुपये

देकर समाचार मँगानेको तैयार हो जाते थे, वहाँ ही श्री राय अपनी संस्थाकी शाखा खोल देते थे।

लगभग इसी समय अरबुथनॉट एण्ड कम्पनी नामक एक कम्पनीका जो बेंकिंग (महाजनी) का काम करती थी मद्रासमें दिवाला निकल गया। इस कम्पनीके फेल हो जानेका समाचार भारत सरकारको तबतक प्राप्त नहीं हुआ, जबतक एक छोटे सरकारी कर्मचारीने कुछ दिन बाद मद्रासके एक समाचारपत्रमें उसकी खबर छपी हुई नहीं देख ली। वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्के वित्त सदस्य सर विलियम मेयर कम्पनीके टूट जानेकी जानकारी न होनेसे बड़े परेशानसे थे। उन्होंने श्री कोट्सको सुझाव दिया कि महत्त्वपूर्ण नगरोंसे सरकारी अफसरोंके पास तार द्वारा समाचार भेजनेकी व्यवस्थाका संघटन करें। इस प्रकार इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए 'इण्डियन न्यूज एजन्सी' नामक संस्थाकी स्थापना हुई।

संवादसंस्थाके रूपमें 'असोशियेटेड प्रेस आफ इण्डिया' की स्थापना हो जानेसे समाचारपत्रोंको भिन्न भिन्न तरहके समाचार मिलने लगे। यह बात व्यक्तिगत साधनोंसे सम्भव नहीं हो सकती थी। वृत्त-संस्था द्वारा समाचार मँगानेकी व्यवस्थासे भारतीय पत्रकारीके वैयक्तिक संसर्ग या लगावकी जगह प्रतिदिनके बँधे हुए तरीकेसे समाचार भेजनेकी प्रणालीने ले ली।* समाचार-समिति द्वारा भेजे गये समाचारोंमें कोई राग या रंग नहीं रहता था।

भारतमें समाचार-समिति चलानेका काम आसान न था। इसका मुख्य कारण यह था कि बहुतसे समाचारपत्रोंने इसकी सेवाओंसे लाभ उठाकर इसे प्रोत्साहन नहीं दिया और कम्पनीके आर्थिक साधन परिमित ही थे। इस उद्योगकी सफलताके लिए प्रयत्न करनेमें संघटनकर्त्ताओंमें उत्साहकी कमी न थी। फिर भी राय तथा उनके यूरोपीय साथियोंमें असोशियेटेड प्रेस आफ इण्डियाके आन्तरिक प्रबन्धके बारेमें मतभेद

* बार्न्स, पृ० ३२२

उत्पन्न हो गया। श्री रायने उनसे सम्बन्ध विच्छेद कर लिया और उन्होंने अपने भारतीय सहायकोंके सहयोगसे एक समाचार-कार्यालयकी ('न्यूजब्यूरो' की) स्थापना कर ली। प्रतियोगिताके कारण इन दोनों प्रतिद्वन्द्विनी संस्थाओंके विकासकी आशा न थी।

"श्रीरायको अपने शिमला स्थित दोनों मकान बेच देने पड़े और इस कारण उन्हें बड़ी मानसिक परेशानी उठानी पड़ी। भारतके समाचार-पत्र भी उनके 'न्यूजब्यूरो' का समर्थन करनेसे उदासीनसे हो गये। जहाँ यूरोपियनों द्वारा संचालित समाचारपत्र उनकी समाचार प्रेषण-सेवाके लिए नियमित रूपसे अपने हिस्सेकी रकम भेज दिया करते थे, वहाँ कुछ भारतीय समाचारपत्र चन्दा घटा देनेके लिए सौदेबाजी करने लगे।"[1]

सन् १९१९ मे कोट्स लन्दन गये और उन्होंने रायटर कम्पनीके व्यवस्थापकोंसे प्रस्ताव किया कि वे असोशियेटेड प्रेस ऑफ इण्डिया, दि इण्डियन न्यूज एजेंसी तथा दि न्यूज ब्यूरो, इन तीनोंके आर्थिक साधन और दायित्व रुपया देकर खरीद लें और समाचारोंके संग्रह तथा वितरण-के लिए एक अन्तर्देशीय समाचार समितिका सञ्चालन करें। रायने भी प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। रायटरने भारतमें 'ईस्टर्न न्यूज एजंसी' नामक संस्थाका निर्माण किया जिसने उक्त संस्थाओंके आर्थिक साधन और दायित्व सँभाल लिये।

श्रीराय, जो भारतके बहुत ही विश्वासपात्र और सुख्यात पत्रकार माने जाते थे, अपनी मृत्युपर्यन्त (सन् १९३१) 'असोशियेटेड प्रेस ऑफ इण्डिया' के सञ्चालक बने रहे। उनके बाद श्री उषानाथ सेन उसके सञ्चालक तथा प्रबन्धकारी सम्पादक बने और सन् १९५० में अवसर ग्रहण करनेके पूर्वतक इस पदपर काम करते रहे। भारतीय पत्रकार-जगतकी विशेष सेवा करनेके उपलक्ष्यमें सन १९४७ में सरकारने उन्हें 'सर' की उपाधिसे विभूषित किया।

---

[1] ए० एस० प्रेयगर कृत 'ऑल थ्रू गार्डियन ईग', पृ० १२६

रायटरके अधिकारमें 'असोशियेटेड प्रेस ऑफ इण्डिया' के चले जानेके बाद बड़े बड़े शहरोंमें उसने अपना कारोबार फैला लिया। विदेशोंमें समाचार मँगाकर भारतीय पत्रोंको देने और साथ ही देशकी एक मात्र प्रभावशालिनी समाचार-संस्थाका स्वत्वाधिकारी एवं नियन्त्रक होनेकी लाभजनक स्थितिमें रहनेके कारण रायटरको अद्वितीय शक्ति प्राप्त हो गयी तथा उसका प्रभाव भी बढ़ गया, जो काफी लम्बे अरसेतक बराबर कायम रहा।

सार्वजनिक मामलोंमें लोगोंकी दिलचस्पी बढ़ती जा रही थी और राष्ट्रीय आन्दोलनकी प्रगतिके साथ-साथ बहुतसे भारतीय नेताओंके मनमें यह बात उठने लगी थी कि अंग्रेजों द्वारा नियन्त्रित संस्था हमारे विचार यथार्थ रूपसे प्रकट करनेमें सहायक नहीं हो सकती। श्री एस० सदानन्दने जो पहले रायटरके साथ काम कर चुके थे, सन १९२५ में 'फ्री प्रेस ऑफ इण्डिया' के नामसे एक राष्ट्रीय समाचार संस्था स्थापित करनेका और स्वयं उसके प्रबन्धकारी सम्पादक तथा सञ्चालकका स्थान ग्रहण करनेका निश्चय किया। "भारत तथा बर्माके सभी भागोंसे प्राप्त राष्ट्रीय विचारों सम्बन्धी समाचारोंका वितरण करनेवाली संस्थाके रूपमें ही 'फ्री प्रेस' का जन्म हुआ।"

आर्थिक कठिनाइयोंके कारण ऐसे पत्रोंकी संख्या अधिक नहीं हो सकती थी जो एकसे अधिक समाचार-संस्थाओंसे समाचार मँगाना स्वीकार कर लेते। यही वजह है कि थोड़ेसे पत्र ही 'फ्री प्रेस' के ग्राहक बने। फिर भी 'फ्री प्रेस' की समाचार-व्यवस्था बहुत ही सफल उद्योग प्रमाणित हुई और उसने 'असोशियेटेड प्रेस ऑफ इण्डिया' से गहरी प्रतिद्वन्द्विता की। सन १९३१ में श्री सदानन्दने भारतीय व्यापारी वर्गकी सहायतासे 'फ्री प्रेस जर्नल' नामक एक अंग्रेजी दैनिक बम्बईमें प्रकाशित किया। भारतके कुछ समाचारपत्रोंने इस बिनापर इसका विरोध किया कि अपने ग्राहकोंके ही साथ प्रतियोगिता करना किसी भी वृत्त-संस्थाके उद्देश्योंके अनुकूल नहीं माना जा सकता।

सन् १९३२ में 'फ्री प्रेस ऑफ इण्डिया' ने रायटरको छोड़कर लन्दनकी अन्य समाचार-समितियोंसे समझौता कर संसारभरके समाचार मँगाने तथा भेजनेकी व्यवस्था आरम्भ कर दी। भारतमें श्री सदानन्दने प्रान्तोंके अनेक नगरोंसे फ्री प्रेस जर्नल प्रकाशित करनेकी योजना बना ली थी। जब इस योजनाका हाल मालूम हुआ, तब कुछ पत्रोंने, विशेषकर कलकत्तेमें यह शंका प्रकट की कि क्या किसी समाचार-संस्थाके लिए यह उचित होगा कि वह समाचारपत्रोंका प्रकाशन भी करे?

समाचारों तथा घटनाओंका ऐसा विवरण छापनेपर जिसे सरकार राजद्रोहात्मक समझती थी, 'फ्री प्रेस' द्वारा जमा की गयी जमानत बार बार जब्त की गयी। इस कारण तथा समाचारपत्रोंसे उचित समर्थन एवं सहायता प्राप्त न होनेके कारण 'फ्री प्रेस ऑफ इण्डिया' ने १९३३ में अपनी समाचार-व्यवस्था बन्द कर दी। तब श्री बी० सेन गुप्तने जो फ्री प्रेसके कलकत्तेवाले कार्यालयमें सम्पादक थे, कलकत्तेके अखबारोंकी सहायतासे एक स्वतन्त्र संगठन बनानेका निश्चय किया। इसका नाम उन्होंने 'यूनाइटेड प्रेस ऑफ इण्डिया' रखा। 'फ्री प्रेस' में काम करनेवाले बहुतसे कार्यकर्ताओंको इसमें स्थान दे दिया गया और समाचारसंस्थाके रूपमें इसका काम शुरू हो गया। फिर धीरे धीरे किन्तु दृढ़ताके साथ यह संस्था अपना कार्यकलाप बढ़ाती गयी।

कांग्रेसके राष्ट्रीय आन्दोलनकी तीव्रता क्रमशः बढ़ती जा रही थी। देशकी एकमात्र प्रभावशील समाचार संस्था—असोशियेटेड प्रेस ऑफ इण्डिया—पर भी उसका असर पड़ा। उस समय श्री डब्ल्यू० जे० मोलोनी नामक आयरिश सज्जन भारतमें रायटर तथा असोशियेटेड प्रेसके प्रधान व्यवस्थापक थे। आन्दोलनकी शक्ति और प्रभाव समझनेमें उन्हें देर न लगी। उनका विश्वास था कि असोशियेटेड प्रेसको देशकी प्रमुख संवाद-समितिके रूपमें अपनी उच्च स्थिति बनाये रखनी चाहिये। यह तभी सम्भव था जब देशके राजनीतिक जीवनकी बढ़ती हुई हलचलके समय उसके द्वारा प्रस्तुत किये गये विवरणोंमें यथार्थ स्थितिकी उपेक्षा न होने

पावे। इस बदले हुए रुखका एक उदाहरण यह है कि उनके द्वारा भेजे गये सम्पादकीय परिपत्रोंमें समाचारोंके बीचमें आये ऐसे शब्दसमूह 'पुलिसको कांग्रेसके जुलूसपर गोली चलानेको बाध्य होना पड़ा' बदलकर इस रूपमें रख दिये जाते थे—' पुलिसने गोली चलायी।'

अगले कुछ वर्षोंतक 'असोशियेटेड प्रेस आफ इण्डिया' तथा कुछ हदतक 'यूनाइटेड प्रेस ऑफ इण्डिया'की भी, उन्नति स्थिर रूपमें होती रही। सन् १९३८ में समाचार संस्थाओंके विकासकी दृष्टिसे एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना हुई। वह यह कि असोशियेटेड प्रेस ऑफ इण्डियाने टेलीप्रिण्टर मशीन बैठाकर प्रान्तोंके प्रमुख नगरोंमें अपना सीधा सम्बन्ध स्थापित कर दिया। अभीतक समाचार भेजने, मँगानेके लिए समाचार-संस्थाओंको तारका सहारा लेना पड़ता था।

टेलीप्रिण्टर यन्त्र लगानेका परीक्षण इतना सफल हुआ कि कुछ ही वर्षोंके भीतर सारे देशमें इन यन्त्रोंका जाल बिछ गया, जिन्हें बैठानेका अधिकार समाचार संस्थाओंने सरकारके तार-विभागसे पट्टेपर प्राप्त किया था। तार विभागसे समाचार भेजनेमें जितनी शब्द-संख्या भेजना सम्भव था उससे अधिक बड़ी शब्द संख्या भेजना अब वृत्त संस्थाओंके लिए सम्भव हो गया।

पत्रोंके लिए अब समाचारोंका इतना अधिक भाग काममें लाना सम्भव हो गया कि उन्होंने इसके लिए अपनी पृष्ठ-संख्या बढ़ाना शुरू कर दिया। अधिक विस्तारसे समाचार जाननेकी जनताकी आशा जिस तरह अब पूरी की जाने लगी, उस तरह पहले कभी नहीं की गयी थी किन्तु इसका एक परिणाम यह हुआ कि समाचार लिखनेका स्तर पहलेकी अपेक्षा कुछ गिर गया। जब समाचार तार द्वारा भेजे जाते थे, तब समाचार-संस्थाके संवाददातागण शब्दोंका या विवरणोंका अनावश्यक विस्तार न बढ़ने देने और ठीक अर्थ प्रकट करनेवाला मसौदा बनानेका बराबर खयाल रखते थे जिससे अधिक खर्च न बढ़ने पावे। ए, ऐन जैसे शब्द, सम्बन्धसूचक शब्द तथा आसानीसे समझमें आ जानेवाले कितने

ही शब्द तारोंमें छोड़ दिये जाते थे। तार भेजनेकी प्रणालीमें कभी-कभी कुछ मजेदार बातें भी हो जाती थीं।

उस जमानेमें वाइसराय जब शिकार खेलने जाते थे, तब उसका विवरण भी पत्रोंमें छपनेके लिए भेजा जाता था। असोसियेटेड प्रेसके संवाददाताने एक आवश्यक संक्षिप्त समाचार भेजा—'वाइसरायने गोली चलायी' (वाइसराय शॉट)*। एक प्रान्तीय पत्रके उपसम्पादकने रातमें काफी देर हो जानेके बाद जब यह समाचार पाया तो यहाँ वहाँसे ढूँढ़कर झटपट वाइसरायकी संक्षिप्त जीवनी तैयार कर समाचारके साथ छाप दी। प्रातःकाल जब वह पत्र सड़कोंपर बिकने लगा तो लोगोंने देखा कि उसपर इसी आशयका पृष्ठव्यापी शीर्षक दिया गया है और वाइसरायके गोलीसे मारे जानेका संक्षिप्त प्रारम्भिक विवरण भी दे दिया गया है। प्रधान सम्पादकके मनमें उस समय कैसी परेशानी और हलचल मची होगी, इसकी कल्पना कर लेना ही बेहतर होगा, उसका वर्णन करना बेकार है।

कुछ समयके बाद यूनाइटेड प्रेस ऑफ इण्डियाने भी कतिपय मुख्य-मुख्य शहरोंके बीच अपनी अलग टेलीप्रिण्टर-शृंखला स्थापित कर ली।

इधर मुसलमानोंमें मुसलिम लीगकी लोकप्रियता बढ़ती जा रही थी और उर्दूके समाचारपत्रोंकी भी। इनका नियंत्रण प्रायः ऐसे मुसलमानोंके हाथमें था जो महसूस करते थे कि उन लोगोंके विचार तथा समाचार समाचारपत्रोंमें ठीकसे प्रकाशित नहीं हो पाते। लीगके कुछ अग्रगण्य सदस्योंने सरकारकी तथा हैदराबाद जैसी रियासतोंकी मददसे ओरियण्ट

---

*—'वाइसराय शाट' का अर्थ यह भी हो सकता है कि 'वाइसरायपर गोली चलायी गयी' (वाइसराय 'वाज' शाट)। यदि 'शाट' के बाद 'डेड' शब्द भी लुप्त मान लिया जाय तो अर्थ होगा वाइसराय गोलीसे मारे गये। उपसम्पादकने जल्दबाजीमें यही अर्थ लेकर धोखा खाया।

प्रेस ऑफ इण्डिया नामक समाचार-समितिकी स्थापना की। यह मुसलमानोंके विचारों आदिका प्रतिनिधित्व करती थी और देशका विभाजन होनेके ठीक पूर्वतक सीमित रूपसे बराबर काम करती रही। बादमें यह बन्द हो गयी।

विभाजनका एक और प्रभाव जो समाचार-संस्थाओं पर पड़ा, वह था कि 'असोशियेटेड प्रेस ऑफ इण्डिया' तथा 'यूनाइटेड प्रेस ऑफ इण्डिया की जो शाखाएँ पाकिस्तानमें काम कर रही थीं, उन्होंने अपने आपको 'असोशियेटेड प्रेस ऑफ पाकिस्तान' तथा 'यूनाइटेड प्रेस ऑफ पाकिस्तान के नामसे बिल्कुल पृथक् संस्थाओंके रूपमें परिणत कर लिया।

भारतीय संवाद-समितियोंके विकासकी दूसरी मंजिल द्वितीय महायुद्धके ठीक बादमें शुरू होती है। युद्धकालमें भारतीय समाचारपत्रोंने, एक तो युद्धके कारण आयी हुई तेजी, दूसरे समाचारपत्रोंकी माँग बढ़ जानेसे, अपना काफी विस्तार कर लिया। तब उन समाचारपत्रोंने, जो 'इण्डियन एण्ड ईस्टर्न न्यूज पेपर्स सोसाइटी' के सदस्य थे, अपनी पृथक् समाचार-समिति स्थापित करनेकी इच्छा प्रकट की। सन् १९४७ में स्वतन्त्रताका सुप्रभात होनेपर एक राष्ट्रीय समाचार-संस्थाकी आवश्यकता जोरोंसे महसूस की जाने लगी। इसीमें आगे चलकर 'प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया' की स्थापना हुई।

देशकी प्रमुख समाचार-संस्था, 'असोशियेटेड प्रेस ऑफ इण्डिया' का स्वत्व एक विदेशी कम्पनी रायटरके हाथमें हो, यह बात स्वतन्त्र भारतमें बड़ी अप्रिय तथा असह्य-सी लगने लगी। इसी समय 'इण्डियन एण्ड ईस्टर्न न्यूज पेपर्स सोसायटी' ने 'असोशियेटेड प्रेस ऑफ अमेरिका' से समाचार लेनेके सम्बन्धमें बातचीत शुरू की। साथ ही साथ रायटरके साथ भी बातचीत चलती रही। काफी अरसेतक पत्र-व्यवहार होते रहनेके बाद मई १९४८ में रायटरके साथ समझनेकी शर्तें तै करनेके लिए एक प्रतिनिधिमण्डल जिसमें ये लोग थे—सर्वश्री के० श्रीनिवासम्, रामनाथ गोयनका, सी० आर० श्री निवासम्, एस० सदानन्द तथा

ए०एम० भारतन—इग्लैण्ड गया। शिष्टमण्डल साझेदारीका प्रस्ताव लेकर वापस लौट आया। इसका स्वरूप उसी ढंगका था जैसा समझौता रायटरने आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्डके साथ किया था। 'इडियन एण्ड ईस्टर्न न्यूज पेपर्स सोसायटी' ने इसे स्वीकार कर लिया।

इस समझौतेके अनुसार रायटरका जितना भी कारोबार भारतमें चलता था, वह सब १ फरवरी १९४८ को एक ट्रस्टको हस्तान्तरित कर दिया गया। इसकी स्थापना समाचारपत्रोंने 'प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया' के नामसे की। ट्रस्टका नियन्त्रण करनेके लिए एक सचालकमण्डल बनाया गया जिसके सदस्य भारतीय समाचारपत्रोंके सम्पादकों तथा मालिकोंसे लिये गये। 'हिन्दू' के सम्पादक श्री के० श्रीनिवासन् इसके पहले अध्यक्ष हुए। श्री देवदास गान्धी लन्दनमें रायटर बोर्डके एक सञ्चालक नियुक्त हुए और श्री सी० आर० श्रीनिवासन् रायटरके ट्रस्टियोंमेंसे एक बनाये गये।

साझेदारीके समझौतेके अनुसार 'प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया' को काहिरासे लेकर सिंगापुरतकका क्षेत्र दिया गया, जहाँसे समाचारोंका सग्रह कर रायटरके विश्व भरके समाचार-भाण्डारमें भेज देना पड़ता था। इस क्षेत्रके सवाददाताओंका नियन्त्रण और निर्देशन करनेके लिए 'प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया' ही मुख्य रूपसे जिम्मेदार बना दिया गया। लन्दनमें 'प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया' के भारतीय प्रतिनिधिकी अधीनतामें एक विशेष भारतीय समाचार कार्यालय स्थापित कर दिया गया जिसमें भारतीय कर्मचारी ही रखे गये।

रायटरसे किये गये 'प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया' के समझौतेकी प्रस्तावनामें कहा गया था कि 'दोनों पक्ष घोषित करते हैं कि हमारी समाचार-सस्थाओंका लक्ष्य सत्य तथा निष्पक्ष समाचार प्रसारित करनेके सिवा और कुछ भी नहीं है, हम किसी भी तरहके सरकारी अथवा अनुचित प्रभाव डालनेवाले नियन्त्रणसे मुक्त हैं और हम एक दूसरेको जो समाचार देंगे, उनका चुनाव और सग्रह समाचारके रूपमें उनके यथार्थ मूल्य

की दृष्टिसे ही किया जायगा। समाचारोंकी सचाईके आधारभूत सिद्धान्तोंको समझकर और उन्हें पूर्णरूपसे मानते हुए ही हमने परस्पर यह समझौता किया है।'

यद्यपि इसकी गुंजाइश बहुत कम ही थी कि नयी नयी समाचार-समितियाँ स्थापित होकर आपसमें प्रतिद्वन्द्विता करें, फिर भी उत्साह और साहसकी कमी न थी। 'इण्डियन कम्पनीज ऐक्ट' के अनुसार बम्बईमें सन् १९४८ में 'हिन्दुस्तान समाचार-समिति' निगमित (सघटित) की गयी। इसका उद्देश्य समाचारपत्रोंको उनकी भाषामें ही समाचार पहुँचाना और प्रधान रूपसे प्रान्तोंके पत्रोंको प्रान्तके समाचार भेजना बताया गया। श्री एस० एस० आपटे इसके प्रबन्ध सचालक हैं और विभिन्न राज्योंमें इसका कामकाज चालू है किन्तु सीमित साधनों तथा उसके द्वारा भेजे जानेवाले समाचारोंकी सीमित माँग होनेके कारण उसकी अधिक उन्नति नहीं हो पा रही है।

रायटरके साथ चलनेवाली साझेदारीके कालमें 'प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया ने अपने कुछ संवाददाता दक्षिण-पूर्वी एशिया, 'मध्य पूर्व (उत्तरी अफ्रिका आदि) तथा वाशिंगटन, जेनीव्हा और लन्दनको भी भेजे। साझेदारीका सम्बन्ध सन्तोषजनक रूपसे चल नहीं पा रहा था। इसलिए चार वर्षकी मीयाद समाप्त होते ही प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डियाने उसे समाप्त कर देनेका निश्चय कर लिया।

'प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया' के इतिहासमें इसके बादकी मंजिल वह समझौता है जो रायटरके साथ जनवरी १९५३ में किया गया। वह एक तरहका व्यापारिक अनुबन्ध (करार) है जो मूल्य देकर समाचार खरीदने और बेचनेवालोंमें किया गया हो। 'प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया विश्वके समाचार रायटरसे खरीदता है और उन्हें भारतके समाचारपत्रों, अखिल भारतीय रेडियो तथा अन्य ग्राहकोंको बेच देता है। इसी तरह भारतके समाचार वह रायटरको देता है जहाँसे उनका वितरण विश्वके भिन्न-भिन्न देशोंमें किया जाता है।

भारतमें समाचार संस्थाओंकी स्थापना-सम्बन्धी अध्याय तबतक अधूरा माना जायगा जबतक 'प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया के वर्त्तमान प्रधान व्यवस्थापक श्री भारतनके उस आयासका उल्लेख न किया जाय जो उन्होंने इस संस्थाके निर्माण तथा स्थापनाके लिए किया है। सन् १९३० में वे संवाददाताके रूपमें रायटरकी संस्थामें नियुक्त हुए थे और जिस समय प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया तथा रायटरमें पत्रालाप हो रहा था, उस समय वे पूरबके लिए रायटरके उप-प्रधान व्यवस्थापक थे। वे प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डियाके प्रधान कार्याधिकारी नियुक्त किये गये। इसी हैसियतसे उन्होंने उसके लिए आवश्यक पूँजी इकट्ठी की। अपनी संघटनशक्ति, कार्यक्षमता तथा ब्यौरेकी बातें अच्छी तरह समझनेकी योग्यतासे श्री भारतनने केवल भारतमें ही प्रेस ट्रस्टकी समृद्धिमें सहायता नहीं पहुँचायी वरन् विदेशोंमें भी उसके प्रभावका विस्तार किया।

देशके भीतरके कार्यक्षेत्रमें उन्होंने २५ हजार मीलकी लम्बाईतक टेलीप्रिण्टरका जाल बिछा दिया और तीन वर्षके भीतर शाखाओंमें बढ़ाये गये यन्त्रोंकी संख्या २० से बढ़ाकर ६० तक पहुँचा दी। इसके साथ-साथ उन्होंने संस्थाके वित्तीय साधनोंमें भी यथेष्ट वृद्धि कर दी जिससे ५० लाख रुपयेके उसके आयव्ययमें घटी न होने पाये। सन १९४८ के बादसे वे चार बार ब्रिटेनकी यात्रा कर चुके हैं। इससे उन्होंने रायटर जैसी अन्तर्राष्ट्रीय समाचार प्रेषण व्यवस्थाके संचालनकी अच्छी जानकारी और अनुभव प्राप्त कर लिया।

उनका लक्ष्य 'प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया'को महत्त्वकी राष्ट्रीय संस्था बना देना ही नहीं है वरन उसे संसारमें एक अच्छी प्रभावपूर्ण समाचार संस्थाके रूपमें परिणत कर देना भी है। यह उद्देश्य सामने रखकर उन्होंने समुद्रपारके देशोंको समाचार भेजनेकी व्यवस्था शुरू कर दी है और इस तरह जापानी समाचारपत्रोंसे, जिनकी लाखों प्रतियाँ प्रतिदिन प्रकाशित होती हैं सम्पर्क स्थापित कर लिया है।

जहाँतक देशके भीतरके क्षेत्रमें समाचारोंके संग्रह, प्रेषण आदिका

प्रश्न है, प्रेस ट्रस्टने अपनी स्थिति काफी मजबूत बना ली है। अब वह विदेशोंमें अपना प्रसार बढ़ानेका उपक्रम कर रहा है। विदेशोंमें उसके अब बीस संवाददाता है जो पाकिस्तान, दक्षिण-पूर्वी एशिया पूर्वी एशिया, आफ्रिका, 'मध्यपूर्व' के विविध केन्द्रों तथा लन्दन और न्यूयार्कसे सीधे बम्बईको समाचार भेजा करते हैं। 'प्रेस ट्रस्ट' एक तो अपनी शक्ति और अपने साधन एशिया तथा आफ्रिकाके लिए समाचार-व्यवस्था स्थापित करनेके कार्यपर केन्द्रित कर रहा है, दूसरे वह अपनी सक्रियता बढ़ाकर भारतीय समाचारपत्रोंको विश्वके ताजे समाचार पहुँचानेका भी प्रयत्न कर रहा है। अपने विस्तारके लिए वह जितने अधिक साधन जुटा सकेगा, उन्हींपर उसकी भावी प्रगति अवलम्बित है।

इस दिशामें अग्रसर होनेके लिए उठाया गया पहला कदम यह है कि सन १९५७ के मध्यमें प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डियाने अपने विदेशी ग्राहकों के लिए प्रतिदिन बेतारके तार द्वारा विशिष्ट संकेत प्रणालीसे समाचार भेजनेका क्रम आरम्भ कर दिया। ये समाचार अब काबुल, काठमाण्डु तथा टोकियोमें ग्रहण कर लिये जाते हैं। क्वाला लम्पूर, सिंगापुर, रंगून तथा कोलम्बोमें भी वे इसी तरह ग्रहण कर लिये जायँ, इस सम्बन्धमें बातचीत चल रही है। बादमें यह व्यवस्था 'मध्यपूर्व' के भी कुछ देशोंमें शुरू कर दी जायगी।

प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया एक ट्रस्ट (न्यास) है जिसके स्वत्वाधिकारी भारतके समाचारपत्र हैं। मुख्य कार्यालय बम्बईमें तथा वर्तमान अध्यक्ष श्री गोयेनका हैं। इसके विपरीत 'यूनाइटेड प्रेस ऑफ इण्डिया' अभीतक सीमित प्रमण्डल बना हुआ है, जिसके हिस्सेदार कुछ समाचारपत्रोंके मालिक तथा कतिपय व्यवसायी हैं। उसके प्रबन्ध सम्पादक श्री बी० सेन गुप्त हैं जो उसके जन्मदाता भी हैं। कलकत्तेमें उसका प्रधान कार्यालय है और २५ बड़े शहरोंमें उसकी शाखाएँ हैं जो टेलीप्रिंटर यन्त्रोंसे तथा जिलोंमें अवस्थित बहुतसे संवाददाताओंसे सम्बद्ध हैं। वित्तीय साधनोंकी कमीके कारण उसकी उन्नतिमें रुकावट पड़ती रही है, किन्तु फिर भी

सन १९५१ मे 'एजेन्सी फ्रान्स प्रेसे' से समझौता कर उसने विदेशोंके भी समाचार प्राप्त करना शुरू कर दिया है।

समाचारपत्रोंको विभिन्न स्थानोंके समाचार देनेके सिवा भारतीय समाचार-समितियोंने व्यापारिक संस्थाओं तथा व्यवसायियोंको बाजार भाव और बाजारसम्बन्धी गतिविधिका विवरण भी देना शुरू कर दिया है। इस प्रबन्धसे भारतके वाणिज्य-व्यापारको बढ़ावा देनेमें सहायता मिली है और इससे समाचार-समितियोंको अच्छी आमदनी भी हो जाती है।

भारतमें समाचार संग्रहका काम केवल (उक्त प्रकारकी) बड़ी बड़ी संस्थाओं द्वारा ही नहीं किया जाता। कितने ही राज्योंमें अब भी व्यक्तिगत रूपमें यह काम किया जाता है जिसकी ओर ध्यान देना उचित होगा। बीस वर्षसे भी अधिक पुरानी लखनऊकी स्वतन्त्र समाचार समिति है। इसका परिचालन श्री अमीन सलोनवी करते हैं। ये समाचारोंका संग्रह कर मुख्य रूपसे उत्तरप्रदेशके हिन्दी-उर्दू पत्रोंके पास भेज दिया करते हैं। इसी तरह सन् १९४२ में लखनऊमें श्री विजयकुमार मिश्रने 'नेशनल प्रेस'की समाचार व्यवस्थाका आरम्भ किया। इसकी ओरसे उत्तर प्रदेशके हिन्दी पत्रोंको राज्यके समाचार भेजे जाते हैं। कलकत्तेकी 'हिन्द समाचार समिति' भी अब लगभग पाँच वर्षकी हो गयी। यह बंगालके पत्रोंको बँगलामें राज्यके समाचार पहुँचाती है।

अब दक्षिणकी ओर आइये। हैदराबादमें 'डेकन न्यूज एजेन्सी' (दक्षिण भारत समाचार-समिति) है जिसका परिचालन व्यक्तिगत रूपसे ही किया जाता है। यह जिले और शहरोंके समाचार उर्दूके पत्रोंको देती रही है किन्तु इसे अब असोसियेटेड प्रेस ऑफ हैदराबादसे जिसका आरम्भ असोसियेटेड प्रेस ऑफ इण्डियाके एक पुराने कर्मचारी श्री रजाअलीने किया है, कड़ा मुकाबला करना पड़ता है। राज्यके मुख्य मुख्य जिलोंमें संवाददाता नियुक्त कर श्री अलीने इसका संघटन किया है जिसका उद्देश्य राज्यके पत्रोंको राज्यके समाचार प्रदान करना है।

ट्रावनकोर कोचीनमें असोसियेटेड प्रेसके एक पुराने सदस्य श्री

सी० जी० केशवनने 'केरल प्रेस सरविस' जारी की है जिससे राज्यके पत्रोंको डाक द्वारा मलयालम्‌मे समाचार भेजे जाते है।

समाचार भेजनेका एक और प्रबन्ध देशी राज्योके क्षेत्रमे सन् १९४७ मे श्री जे० पी० चतुर्वेदी द्वारा किया गया था। (ये ही सन् १९५३ मे भारतीय श्रमजीवी पत्रकार संघके महामन्त्री बनाये गये) इसका उद्देश्य देशी रियासतोके सम्बन्धमे राजनीतिक समाचार भेजना था, विशेषकर ऐसे समाचार जिनका सम्बन्ध लोकतन्त्रात्मक पद्धतियोके लिए जनताकी महत्त्वाकांक्षाओसे होता था। राज्योके विलयनके बादसे इसका काम-काज बन्द हो गया है।

राज्योंमे ज्यो-ज्यो देशी भाषाके पत्रोका प्रसार बढता जायगा, त्यों-त्यो क्षेत्रीय (प्रान्तीय) समाचारोंकी मॉग भी बढती जायगी। तब उन लोगोंको अनुकूल अवसर मिलेगा जो क्षेत्रीय समाचारपत्रोंको क्षेत्रीय समाचार प्रेषित करनेके लिए समाचार संग्रहका काम करना चाहेगे।

यहॉ हम समाचार-समितियोंके सञ्चालन आदिसे सम्बन्ध रखनेवाली कुछ समस्याओकी चर्चा करेगे। समाचारपत्रोको मुख्य रूपसे उस आमदनीपर अवलम्बित रहना पडता है जो उन्हे विज्ञापनोंसे होती है किन्तु समाचार-समितियोके लिए तो उन समाचारपत्रो, संस्थाओ, व्यक्तियो आदिसे जो उनसे समाचार लेते हो, प्राप्त होनेवाली निर्धारित रकमके सिवा आमदनीका और कोई जरिया ही नहीं है। इसलिए समा-चार-समितियोकी उन्नति एव विस्तार तभी संभव है जब समाचारपत्रोंकी संख्यामे भी वृद्धि हो।

सरकार यदि अप्रत्यक्ष रूपसे सुविधा प्रदान करे तो भारतमे समाचार समितियोकी अभिवृद्धिमे बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। उदाहरणके लिए टेलीप्रिण्टर लाइन जारी करनेके किरायेमे कमी की जा सकती है और तार डाक आदिसे अधिक सस्तेमे समाचार भेजनेकी और भी अधिक सुविधाएँ प्रदान की जा सकती हैं। पाठकोकी संख्यामे वृद्धि होने तथा देशकी औद्योगिक उन्नति होनेसे समाचारपत्रोकी अधिक मॉग होना

निश्चित है किन्तु यहाँ भी भिन्न-भिन्न भाषाओंमें पत्रोंका निकलना बहुत बड़ी ग्राहक-संख्याके लिए बाधक है। यदि ग्राहकोंमें काफी वृद्धि हो जाय और पत्रोंको अच्छी आमदनी होने लगे तो समाचार प्राप्त करनेके लिए अधिक रुपया दिया जा सकता है।

एक और समस्या जिसका सामना यहाँकी समाचार-समितियोंको करना है, समाचार भेजनेके यान्त्रिक साधन प्राप्त करनेकी कठिनाई है। अभीतक ये यन्त्र विदेशोंसे मँगाये जाते थे किन्तु अब 'प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया'ने खुद अपनी निर्माणशालामें टेलीप्रिण्टर मशीनके कुछ अतिरिक्त कल पुरजे ढलवाना शुरू किया है ताकि संस्था इनके सम्बन्धमें आत्मनिर्भर हो जाय। मूल्य अधिक होने तथा मुद्राविनिमय सम्बन्धी कठिनाईके कारण बाहरसे मशीनें मँगाना मुश्किल हो रहा है।

'एक आनेमें एक शब्द' की जो दर ब्रिटिश राष्ट्रमण्डलके देशोंमें प्रचलित है, उससे विदेशी समाचार-समितियोंके विस्तारमें बहुत सहायता मिली है। भारतीय समाचार-समितियाँ तथा संवाददातागण भी राष्ट्रमण्डलके देशोंको समाचार भेजनेमें इस दरसे लाभ उठा सकते हैं, किन्तु राष्ट्रमण्डलके बाहरके देशोंके साथ समाचार भेजनेकी व्यवस्थाका विकास करनेके लिए सम्प्रेषणकी ऐसी सुविधाएँ प्रदान करनी होंगी जो अधिक महँगी न हों। उदाहरणके लिए यदि कोई समाचार टोकियोसे यहाँ मँगाया जाता है तो उसका खर्च ८॥ आने प्रति शब्द पड़ता है और जकार्तासे ६॥ आने प्रति शब्द।

समाचार समिति द्वारा बैठाये गये टेलीप्रिण्टरोंके संवादवहनका ढाँचा मोटे तौरसे उन दो त्रिकोणोंसे मिलता-जुलता है, जिनके बीचकी रेखा उभयनिष्ठ हो और प्रथम त्रिकोणका शीर्ष बम्बई हो तथा अन्य छोर दिल्ली, कलकत्ता एवं मद्रास हों—यही चार स्थान वे मूलकेन्द्र हैं जहाँसे उत्तर, पश्चिम, दक्षिण तथा पूर्वके अन्य उपकेन्द्रोंके साथ संवाद-

दिल्ली

बम्बई

कलकत्ता

मद्रास

वहनका सिलसिला सम्बद्ध कर दिया जाता है। प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डियाको विदेशी समाचार बम्बई स्थित टेलप्रिंटरपर प्राप्त होते हैं, जहाँसे वे अन्तर्देशीय टेलीप्रिण्टरों द्वारा दिल्ली आदि अन्यान्य केन्द्रोंको वितरित कर दिये जाते हैं।

समाचार-वितरणका माध्यम इस समय अंग्रेजी है। अभी कुछ समयतक इसीके बने रहनेकी सम्भावना है किन्तु अन्ततः इसका स्थान राष्ट्रभाषा हिन्दीको दिया जा सकता है। हिन्दी पत्रकारकलामें स्थिर-भावसे उन्नति हो रही है किन्तु अन्य देशी भाषाओंमेंसे बंगाली, तामिल, मलयालम्, गुजराती तथा मराठीके समाचारपत्र काफी आगे बढ़ चुके हैं। आगे भी इन पत्रोंकी उन्नति होती रहेगी, इसलिए अपने अपने क्षेत्रोंमें इन्हें जनताका जो समर्थन प्राप्त है और इनका जो प्रभाव है, उनसे इन्हें अपदस्थ करना हिन्दीके पत्रोंके लिए आसान न होगा। ऐसी स्थितिमें यदि दो तीन भाषाओंमें समाचार वितरणका प्रयत्न किया जाय तो इसके लिए तबतक ठहरना होगा जबतक संप्रेषणकी प्राविधिक सुविधाओंमें और सुधार नहीं हो जाता जिससे देशी भाषाओंके पत्र अपनी अपनी भाषामें ही समाचार प्राप्त कर सकें।

माध्यम चाहे अंग्रेजी हो या हिन्दी, अनुवादकी कठिनाई उसमें होती ही है। देशी भाषाओंमें किये गये भाषणोंका अनुवाद पहले अंग्रेजी-में किया जाता है और जब अंग्रेजीमें अनूदित ये भाषण देशी भाषाओंके पत्रोंके पास भेजे जाते हैं तो वहाँ फिर इनका अनुवाद जिस भाषाका पत्र हो, उसमें किया जाता है। इससे वक्ताकी शैलीकी ही हानि नहीं होती तथा उसका भाव भी बदल जाता है वरन् कभी-कभी तो अर्थका अनर्थ भी हो जाता है। एक संवाद-प्रेषकने किसी स्काउट मास्टरके भाषणकी रिपोर्ट भेजी जिसमें कहा गया था कि उसने छोटे छोटे बालचरोंको ('कब्स' को) सम्बोधन करते हुए भाषण किया। इसका अनुवाद जब उर्दूके एक अखबारमें छपा तो उसमें कहा गया था कि स्काउट मास्टरने 'शेरके बच्चों' को सम्बोधन करते हुए भाषण किया। [अंग्रेजीमें 'कब'

निश्चित है किन्तु यहाँ भी भिन्न-भिन्न भाषाओंमें पत्रोंका निकलना बहुत बड़ी ग्राहक-संख्याके लिए बाधक है। यदि ग्राहकोंमें काफी वृद्धि हो जाय और पत्रोंको अच्छी आमदनी होने लगे तो समाचार प्राप्त करनेके लिए अधिक रुपया दिया जा सकता है।

एक और समस्या जिसका सामना यहाँकी समाचार-समितियोंको करना है, समाचार भेजनेके यान्त्रिक साधन प्राप्त करनेकी कठिनाई है। अभीतक ये यन्त्र विदेशोंसे मँगाये जाते थे किन्तु अब 'प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया'ने खुद अपनी निर्माणशालामें टेलीप्रिण्टर मशीनके कुछ अतिरिक्त कल पुरजे ढलवाना शुरू किया है ताकि संस्था इनके सम्बन्धमें आत्म भरित हो जाय। मूल्य अधिक होने तथा मुद्राविनिमय सम्बन्धी कठिनाईके कारण बाहरसे मशीनें मँगाना मुश्किल हो रहा है।

'एक आनेमें एक शब्द' की जो दर ब्रिटिश राष्ट्रमण्डलके देशोंमें प्रचलित है, उससे विदेशी समाचार-समितियोंके विस्तारमें बहुत सहायता मिली है। भारतीय समाचार-समितियाँ तथा सम्वाददातागण भी राष्ट्र मण्डलके देशोंको समाचार भेजनेमें इस दरसे लाभ उठा सकते हैं, किन्तु राष्ट्रमण्डलके बाहरके देशोंके साथ समाचार भेजनेकी व्यवस्थाका विकास करनेके लिए सम्प्रेषणकी ऐसी सुविधाएँ प्रदान करनी होंगी जो अधिक महँगी न हों। उदाहरणके लिए यदि कोई समाचार टोकियोसे यहाँ मँगाया जाता है तो उसका खर्च ८॥ आने प्रति शब्द पड़ता है और जकार्तासे ६॥ आने प्रति शब्द।

वहनका सिलसिला सम्बद्ध कर दिया जाता है। प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डियाको विदेशी समाचार बम्बई स्थित ट्रेल प्रिंटरपर प्राप्त होते हैं, जहाँसे वे अन्तर्देशीय टेलीप्रिण्टरों द्वारा दिल्ली आदि अन्यान्य केन्द्रोंको वितरित कर दिये जाते हैं।

समाचार-वितरणका माध्यम इस समय अंग्रेजी है। अभी कुछ समयतक इसीके बने रहनेकी सम्भावना है किन्तु अन्तमें इसका स्थान राष्ट्रभाषा हिन्दीको दिया जा सकता है। हिन्दी पत्रकारकलामें स्थिर-भावसे उन्नति हो रही है किन्तु अन्य देशी भाषाओंमेंसे बंगाली, तामिल, मलयालम, गुजराती तथा मराठीके समाचारपत्र काफी आगे बढ़ चुके हैं। आगे भी इन पत्रोंकी उन्नति होती रहेगी, इसलिए अपने अपने क्षेत्रोंमें इन्हें जनताका जो समर्थन प्राप्त है और इनका जो प्रभाव है, उससे इन्हें अपदस्थ करना हिन्दीके पत्रोंके लिए आसान न होगा। ऐसी स्थितिमें यदि दो तीन भाषाओंमें समाचार वितरणका प्रयत्न किया जाय तो इसके लिए तबतक ठहरना होगा जबतक सम्प्रेषणकी प्राविधिक सुविधाओंमें और सुधार नहीं हो जाता जिससे देशी भाषाओंके पत्र अपनी अपनी भाषामें ही समाचार प्राप्त कर सकें।

माध्यम चाहे अंग्रेजी हो या हिन्दी, अनुवादकी कठिनाई उसमें होगी ही। देशी भाषाओंमें दिये गये भाषणोंका अनुवाद पहले अंग्रेजी-में किया जाता है और जब अंग्रेजीमें अनूदित ये भाषण देशी भाषाओंके पत्रोंके पास भेजे जाते हैं तो वहाँ फिर इनका अनुवाद जिस भाषाका पत्र हो, उसमें किया जाता है। इससे वक्ताकी शैलीकी ही हानि नहीं होती तथा उसका भाव भी बदल जाता है वरन् कभी-कभी तो अर्थका अनर्थ भी हो जाता है। एक संवाद-प्रेषकने किसी स्काउट मास्टरके भाषणकी रिपोर्ट भेजी जिसमें कहा गया था कि उसने छोटे छोटे बालचरोंको ('कब्स' को) सम्बोधन करते हुए भाषण किया। इसका अनुवाद जब उर्दूके एक अखबारमें छपा तो उसमें कहा गया था कि स्काउट मास्टरने 'शेरके बच्चों' को सम्बोधन करते हुए भाषण किया। [अंग्रेजीमें 'कब'

का अर्थ शेर या भालूका बच्चा भी होता है और छोटी उम्रका बालचर भी]।

बडे और छोटे अखबारोंकी अपनी-अपनी आवश्यकताओं तथा समाचारोंके लिए रुपया खर्च कर सकनेकी सामर्थ्यके अनुसार समाचार समितिको अपनी समाचार प्रेषण-व्यवस्थाके दो या तीन भेद कर देने पडते है। इससे छोटे-से-छोटा अखबार भी ४-६ सौ रुपये देकर देश विदेशके समाचार प्राप्त कर सकता है।

समाचारोंका सग्रह तथा वितरण एक विशेष ढगका काम है जिसमे सवाददाता, सहायक सम्पादक, यन्त्रचालक, प्राविधिज्ञ तथा व्यवस्थापक आदिके रूपमे सैकडो मनुष्योंकी नियुक्ति आवश्यक होती है। समाचार-समितियाँ समाचारोंके सप्रेषणके लिए प्राय टेलीप्रिण्टर, टेलीफोन तार और बेतारके तारका प्रयोग करती है। समितिके काममे नियोजित प्रत्येक व्यक्तिको समुचित कार्यक्षमता लानेके लिए बडी फुर्तीसे और एक दूसरेसे सहयोग करते हुए काम करना पडता है। इन समितियोंको समयका बडा ध्यान रखना पडता है, क्योंकि समाचार भेजनेमे उन्हे सबसे आगे रहना चाहिये। सवाददाताओंको ऐसा प्रशिक्षण देना पडता है जिससे वे घटनाओंका यथार्थ विवरण ही भेजे, उसमे अपनी ओरसे कोई टीका टिप्पणी न करे। समाचार भेजनेमे क्षिप्रता एव योग्यताका एक अच्छा उदाहरण ३० जनवरी सन् १९४८ को हुई महात्मा गान्धीकी हत्याका समाचार है। शामको ५-१० पर उन्हे गोली मारी गयी थी और दो मिनटसे भी कम समयके भीतर यह खबर दुनिया भरमे फैला दी गयी।

समाचार-सस्थाओंको—विशेषकर प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डियाको—प्रतिदिन कोई ५५ हजार से ६० हजारतक शब्द समाचारोंके रूपमे (देशी तथा विदेशी) भेजने पडते है। इतने अधिक समाचार कैसे भेजे जायँ, यह एक कठिन प्रश्न उठ खडा होता है क्योंकि २४ घण्टोंमे से प्रत्येक घण्टेमे इनका वितरण समान रूपसे नही किया जाता। समाचार भेजनेकी जब तेजी रहती है—प्राय १० बजे दिनसे सात रातितक कुछ

बाद तक—तब समाचारोंका बड़ा जमाव हो जाता है। स्थानकी कमीके कारण समाचारपत्र प्राप्त सामग्रीका मुश्किलसे कुछ ही अंश काममें ला पाते हैं।

स्वतन्त्रता-प्राप्तिके पूर्व भारतीय समाचारोंमें राजनीतिकी ही प्रधानता रहती थी किन्तु साथ ही खेलोंके तथा व्यापारसम्बन्धी समाचारोंकी भी उपेक्षा नहीं की जाती थी। देशके स्वतन्त्र हो जानेके बादसे तरह तरहके समाचार देनेकी प्रवृत्ति बढ़ने लगी है। यहाँके पत्रोंमें यद्यपि भारतीय समाचार ही अधिकतासे छपते हैं, फिर भी विदेशी समाचारोंको भी यथोचित स्थान दिया जाता है।

ज्यूरिच (स्विट्जरलैण्ड) में एक 'इण्टर नेशनल प्रेस' इन्स्टिट्यूट (अन्तर्राष्ट्रीय समाचारपत्र कार्यालय) है जिसमें ३२ देशोंके सम्पादक काम करते हैं। इसकी ओरसे भारतमें यह अनुसन्धान किया जा रहा है कि भारत तथा समुद्रपारके देशोंके बीच कितने समाचारोंका आदान-प्रदान होता है और अन्तर्राष्ट्रीय समाचारोंको भारतीय पत्रोंमें कितना महत्त्व दिया जाता है। जाँचके प्राथमिक परिणामोंसे विदित होता है कि भारतीय पत्र अपने स्तम्भोंमें लगभग ३० प्रतिशत स्थान अन्तर्राष्ट्रीय समाचारोंके लिए देते हैं। यहाँके पत्रोंमें जितने विदेशी समाचार छपते हैं, उनमेंसे एक बड़े अंशका सम्बन्ध संयुक्त राष्ट्रसंघके मामलों तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओंके कार्यकलापोंसे रहता है।

जो विदेशी समाचार छपते हैं उनमें बहुतसे एशियायी देशोंकी तुलनामें संयुक्तराष्ट्र अमेरिका ब्रिटेन तथा पश्चिमी यूरोपके ही समाचारोंका अधिक बाहुल्य रहता है। कारण यह है कि एशियायी देशोंमें समाचार-प्रेषण-व्यवस्थाका उतना विकास नहीं हो सका है, जितना उदाहरणार्थ, जापान तथा भारतमें हुआ है।

भारतमें जो राजनीतिक समाचार समाचार समितियों द्वारा वितरित किये जाते हैं उनमेंसे अधिकतरका सम्बन्ध भारत सरकारकी गतिविधिसे और संसदीय कारवाईसे होता है।

द्वितीय महायुद्धके समय अमेरिकन समाचार-संस्थाओंने देशमें अपने पाँव जमानेकी चेष्टा की थी। जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं 'इण्डियन एण्ड ईस्टर्न न्यूज पेपर्स सोसायटी' ने असोशियेटेड प्रेस ऑफ अमेरिकासे समझौतेकी बातचीत शुरू की थी किन्तु यह बातचीत सफल न हो सकी। तब 'असोशियेटेड प्रेस ऑफ अमेरिका' ने भारतमें समाचार-वितरक संस्थाके रूपमें काम करनेका विचार त्याग दिया। हालमें 'यूनाइटेड प्रेस ऑफ अमेरिका' ने टेलीप्रिण्टर बैठानेका पट्टा प्राप्त कर लिया और भारतमें अपने समाचार प्रसारित करना शुरू किया, किन्तु १ मार्च १९५३ से 'टाइम्ज ऑफ इण्डिया' ने इस समाचार संस्थाके समाचारोंके प्रयोगका एकमात्र अधिकार अपने समूहके पत्रोंके लिए खरीद लिया है।

यद्यपि अखिल भारतीय रेडियो तथा देशके २०० से भी अधिक समाचारपत्र अपने समाचारोंके लिए समाचार संस्थाओंपर, विशेषकर 'प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया' पर अवलम्बित रहते हैं, फिर भी इनमेंसे जो बड़े बड़े समाचारपत्र हैं, उन्होंने अपनी विशेषता और महत्त्व बनाये रखनेके लिए कितने ही विदेशी समाचारपत्रोंसे समाचारोंके आदान-प्रदानकी व्यवस्था कर रखी है और देशमें तथा विदेशोंमें भी प्रचुर संख्यामें अपने निजी संवाददाता नियुक्त कर दिये हैं।

भाग दो

लेखादि लिखने तथा सम्पादनकी कला

---

४ समाचार प्राप्त करना और लिखना

यदि समाचारपत्र लोकतन्त्रका मुख्य अंग है तो समाचार इकट्ठा करना और विवरण तैयार करना समाचारपत्रका सारभूत काम है। दैनिक पत्रकी तैयारीमें उसका बड़ा महत्त्व होता है। अतः यथार्थता और सुनिश्चितता, कौशल और क्षिप्रता, बुद्धि और साहसिकता तथा समाचार ढूँढ़ निकालने या पहचाननेकी योग्यता—ये ही वे प्रधान और महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं जिनसे अखबार समाचार देने लिखनेका काम किया जाता है। इसीसे आजका सभ्य समाज इसे गम्भीर दृष्टिसे देखता है। भारतमें भी यह काम बड़ा ही महत्त्वपूर्ण समझा जाता है।

इस विषयपर जितने अध्याय या ग्रन्थ लिखे गये, प्रायः सब इसी निष्पत्ति पर पहुँचते हैं कि समाचार वह विषय है जिसमें पाठककी दिलचस्पी हो। यह बात इन परिभाषाओंसे स्पष्ट हो जायगी। डाक्टर एम० लायल स्पेन्सरके अनुसार समाचारकी परिभाषा यह है—'वह सत्य घटना या विचार जिसमें बहुसंख्यक पाठकोंकी अभिरुचि हो।' क्लीवलैण्ड ओहियोके पत्र 'प्लेन डीलर' के सम्पादक श्री हरी सी० हापवुड का विचार है कि 'उन महत्त्वपूर्ण घटनाओंकी जिनसे जनताकी दिल-चस्पी हो पहली रिपोर्ट को समाचार कह सकते हैं। विलियम एस मालसबरी अपनी पुस्तक 'गेटिंग दि न्यूज' में कहते हैं 'किसी समय होनेवाली उन महत्त्वपूर्ण घटनाओंके सही और पक्षपातरहित विवरणको

जिसमे उस पत्रके पाठकोकी अभिरुचि हो, जो उन्हे प्रकाशित करता है, हम 'समाचार' कह सकते है।'

तात्पर्य यह निकला कि समाचारका सम्बन्ध किसी ऐसी हालकी घटनासे होता है जिसमे समाचारपत्रके पाठकोकी दिलचस्पी हो। समाचारका सग्रह करते समय विवरणका बिल्कुल यथार्थ होना महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि समाचारमे कही गयी प्रत्येक बातका सत्य और ठीक होना आवश्यक है। कुछ दिन पूर्वतक लोगोके मुँहसे अक्सर यह कथन सुना जाता था कि यदि कोई कुत्ता किसी आदमीको काट ले तो इसमे कोई समाचारत्व नहीं, किन्तु यदि कोई आदमी कुत्तेको काट ले तो इसे हम 'समाचार' कहेगे। अब स्थिति बदल गयी है। किसी आदमीका कुत्ते द्वारा काट लिया जाना भी समाचार माना जा सकता है, क्योंकि वह उन विनाशकारियोका कार्यसाधक (एजेण्ट) हो सकता है जिनका उद्देश्य पागल कुत्ते द्वारा रोग फैलाना हो। समाचारकी दृष्टिसे इस घटनाका मूल्य बहुत अधिक बढ जाता है।

विज्ञानकी प्रगतिके साथ-साथ दुनियाके विभिन्न देशोके बीचकी दूरी बहुत कम हो गयी है और इसलिए घटनाओंका विवरण या समाचार देना निश्चित रूपसे एक जटिल कार्य बन गया है। किसी महत्त्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय घटनाका समाचार देना, जैसे श्री आइसन हावरकी कोरिया यात्रा अथवा श्री जवाहरलाल नेहरूका श्री क्लीमेण्ट एटलीसे मिलनेके लिए लन्दन जाना, ऐसा काम है जिसे करते समय सवाददाता-को अनेक जटिलताओंका सामना करना पडता है। फिर भी समाचारका महत्त्व तभी होता है जब वह ताजा और सही हो।

अमेरिकन पत्रकारोंके जनक श्री जोसेफ पुलित्जरने समाचारकी मूल विशेषता यह मानी है—'यथार्थता, अविस्तार (संक्षिप्तता) तथा यथार्थता'।'

१—'दि न्यूज पेपर, इट्स मेकिग एण्ड इट्स मीनिग'—स्क्रिब्नर्स न्यूयार्क, १९४५

रिपोर्टिंग याने समाचार प्राप्त करने और देनेमे क्या तात्पर्य है? जो बात देखी, सुनी या कही गयी हो अथवा संवादके रूपमे प्राप्त हुई हो, उसे समाचारका रूप देकर लिखना, प्रकाशित करना ही 'रिपोर्टिंग' कहलाता है। 'न्यूयार्क टाइम्स' के श्री फ्रैंक एस ऐडम्सने 'रिपोर्टिंग' की यह परिभाषा दी है—'दुनियामे होनेवाली घटनाओंके सम्बन्धमे इस तरह बुद्धिसंगत रूपसे जिज्ञासाका प्रयोग करना जिसमे सचाई और ईमानदारीके सिद्धान्तोकी अवहेलना न होने पावे।' सुप्रसिद्ध अमेरिकन पत्रकार चार्ल्स ए डानाके शब्दोमे 'रिपोर्टिंग वस्तुत. एक ऊँची कला है और यह पूर्णताकी उच्चतम सीमातक पहुँचायी जा सकती है'।'

सचमुच 'रिपोर्टिंग' एक उत्कृष्ट कला है। जो कुछ हुआ हो या जिसके होनेकी सम्भावना हो, उसका सही पूरा पूरा और निष्पक्ष हाल ठीक समयपर देना ही सुन्दर ढगसे रिपोर्टिंग करनेकी कला है। यत. रिपोर्टिंगका सम्बन्ध मनुष्यके जीवनकी घटनाओ या परिवर्त्तनोमे है, इसलिए समाचारपत्रके लक्ष्यकी सिद्धिमे उसका बडा हाथ रहता है।

समाचार-संग्राहक (रिपोर्टर) की योग्यता

अब हमे यह देखना चाहिये कि रिपोर्टर या समाचार संग्राहकमे किन किन गुणोका होना आवश्यक है। मानव कार्योंका पर्यवेक्षक होनेके कारण उसे समाचारोके सही और अविलम्ब संग्रह करनेके कार्यका विशेषज्ञ होना चाहिये। उसका सुयोग्य वर्णनकर्त्ता होना भी आवश्यक है। पूरा विवरण शीघ्रसे शीघ्र तथा अधिकतम सचाईके साथ दे सकनेके लिए उसको द्रुतलिपि तथा मुद्रलेखन (टाइपिंग) भी जानना चाहिये। इन दो आवश्यक हुनरोका यथेष्ट ज्ञान प्राप्त किये बिना किसीको भी समाचार संग्रहका काम न करना चाहिये।

समाचारत्व हो, उसे वह दूरसे ही ताड ले। समाचारके रूपमे किसी घटना-का क्या मूल्य है, इसकी समझ होनेसे उसे बडी सहायता मिलती है। समाचार सामने आते ही वह उसे पहचान लेता है। घटनाकी महत्त्वपूर्ण बात चुनकर वह विवरणके अग्रभाग (लीड) मे दे देता है। किसी समाचारकी गध मिलनेके बाद ही वह इस बातका निश्चय करता है कि इसका विवरण लगभग कितने पृष्ठोंमे जाना चाहिये।

समाचार-सग्राहक जो विवरण देता है उसमे एक और महत्त्वपूर्ण बातका ध्यान उसे रखना पडता है और वह है पाठककी अभिरुचिका ध्यान। यह अभिरुचि ही समाचारके महत्त्वकी कसोटी है, अत रिपोर्टर-को अच्छी तरह जॉचकर पता लगा लेना चाहिये कि घटना कहॉ हुई या कोई बात कहॉ प्रकाशित हुई और उसमे क्या क्या कहा गया है। उसे समयका भी ध्यान रखना चाहिये—ऐसा न हो कि घटना बिल-कुल पुरानी तथा असामयिक हो गयी हो, अत उसमे 'समाचारत्व न रह गया हो।

अच्छे समाचार-सग्राहकके लिए यह भी आवश्यक है कि उसके पैरोमें ताकत हो, क्योंकि अक्सर उसे विभिन्न स्थानोमे घूम फिर कर ही समाचार इकट्ठा करना या उसकी बहुत सी बातोका पता लगाना पडता है। यह भी आवश्यक है कि उसका शरीर हृष्ट-पुष्ट और तगडा हो। जब सवारीका प्रबन्ध गडबडा जाय या ऐसी ही कोई अन्य बाधा उप स्थित हो जाय, तब उसे पैदल ही यात्रा कर अपना काम करना पडता है, नहीं तो वक्तपर वह अपना विवरण तैयार कर समाचारपत्रमे प्रका शनार्थ नहीं दे सकता।

छानबीन और पूछताछ करनेकी प्रवृत्ति अच्छे समाचार सग्राहकके लिए बडे कामकी चीज होती है। उसे समस्याओंकी बिल्कुल तहतक चले जाना चाहिये और अपनी चतुरता समझदारी, विवेक तथा सामान्य बुद्धिका प्रयोग करते हुए छिपे हुए रहस्यका पता लगा लेना चाहिये।

अपने विचारों, प्रवृत्तियोंसे अप्रभावित रहकर निरपेक्ष तथा

करना—अच्छी रिपोर्टिंगका यह एक और आवश्यक अंग है। इसमें सन्देह नहीं कि किसी भी रिपोर्टरके लिए लोगोंके या संस्थाओंके कार्यों आदिका यथातथ्य रागद्वेषविहीन, वर्णन करना बहुत मुश्किल होता है। उसके लेखों या विवरणोंमें उसकी अपनी निजी प्रवृत्तियों तथा भावनाओंका झलक उठना बहुत सम्भव है। अच्छे रिपोर्टरका यह कर्तव्य है कि जब वह कोर्ट विवरण तैयार करे तो वास्तविक सचाईका जितना ध्यान रखना सम्भव हो, उतना अवश्य रखे।

प्रत्येक समाचार-संग्राहकमें कुछ परमावश्यक गुण होने ही चाहिये। उनमेंसे कुछ उल्लेखनीय गुण ये हैं—जनताके प्रति अपने आवश्यक कर्त्तव्यकी जिम्मेदारी समझना, तात्कालिक समस्याओंकी जटिलताका ज्ञान होना और अच्छी तथा प्रतिदिन बढ़ती रहनेवाली जानकारी विशेषकर अपने देशके इतिहास, अर्थशास्त्र तथा राजनीतिसे सम्बन्ध रखनेवाली जानकारी रखना। यदि रिपोर्टरमें ये तीन आवश्यक गुण विद्यमान हों तो अन्य आवश्यक गुण वह स्वतः प्राप्त कर लेगा।

समाचारका मूल्य-निर्धारण

समाचार-संग्राहकको इस बातकी ओर ध्यान रखकर ही अपना काम करना पड़ता है कि जो समाचार वह देने जा रहा है उसमें लोगोंकी अभिरुचि है या नहीं। उसका काम केवल स्टेनो-टाइपिस्ट जैसा नहीं है कि जो भाषण आदि सुन पड़ा, लिख लिया और छाप दिया। जो कुछ देख पड़े उसे ही चित्रित कर देना, जैसा कि फोटोग्राफर करता है, उसका काम नहीं।

कोई भी समाचार हो, पुराना और बासी न हो। पुराना समाचार पढ़नेमें पाठककी कोई दिलचस्पी नहीं रहती। यह जमाना तार-व्यवस्था और बेतार-व्यवस्थाका है जिसके जरिये समाचार बहुत शीघ्रतासे प्रसारित किये जा सकते हैं। इसलिए समाचार एक तरहसे बहुत जल्द नष्ट होनेवाली वस्तु है। ऐसी स्थितिमें घटनास्थलपर स्वयं उपस्थित रहकर लिया गया समाचार पाठकके लिए अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। वह सारा हाल ताजासे ताजा घटनाक्रमके साथ जल्द ही पढ़ना चाहता है। हो सकता है कि कोई समाचार २४ घण्टेके बाद समाचार ही न रह जाय। इसलिए पाठक सबसे हालकी, ताजा घटनाओंका समाचार जानना चाहता है। तात्पर्य यह कि समाचारके मूल्य-निर्धारणमें सामयिकताका विशेष महत्त्व है।

दूसरा महत्त्व निकटताका है जिसका आशय केवल इतना ही है कि कोई घटना या समाचार पाठकसे कितने दूरका—अपने नगर, प्रान्त, देश या विदेशका—है। सामान्यतया पाठककी दिलचस्पी उस घटनामें अधिक होती है जो उसके अपने नगर या प्रान्तकी हो, बहुत दूरकी घटनामें उतनी नहीं। परिचित नामों और परिचित स्थानोंके सम्बन्धमें पाठकोंकी अधिक अभिरुचि होती है। इसलिए निकटताका भी विशेष महत्त्व है।

प्रमुख व्यक्ति या व्यक्तियोंसे सम्बन्ध होना भी किसी समाचारके मूल्य-निर्धारणमें सहायक होता है। किसी प्रमुख या प्रसिद्ध व्यक्तिसे सम्बन्ध रखनेवाली कोई घटना हो तो पाठकोंकी उसमें विशेष अभिरुचि होती है क्योंकि लोग ऐसे व्यक्तिका हाल जाननेको उत्सुक रहते हैं। आजकल पाठकोंकी अभिरुचिका क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है, इसलिए प्राय किसी भी व्यक्ति या विषयका समाचार अथवा कोई भी स्थानीय, प्रान्तीय या राष्ट्रीय घटना उन समाचारोंकी परिधिके भीतर आजाती है जिनकी रिपोर्टिंग करना आवश्यक हो।

रिपोर्टरमें यह योग्यता अवश्य होनी चाहिये कि जो समाचार उसे

प्राप्त हो, उसका महत्त्व वह समझ सके। उसे पाठकोंकी विशेष रुचिका ही नहीं उनकी समस्याओंका भी ज्ञान होना चाहिये। किसी विशेष विषय या घटनाकी छानबीन कर जो समाचार दिया जाता है, कभी-कभी उसकी समाप्ति एक या दो दिनोंमें ही नहीं हो जाती। उसमें नयी शाखाएँ-प्रशाखाएँ उत्पन्न हो सकती हैं, नये गुल खिल सकते हैं। समाचार संग्राहकको बारीकीसे उनपर नजर रखनी चाहिये और बराबर उनके समाचार देते रहना चाहिये। इस दृष्टिसे रिपोर्टिंग ऐसी प्रक्रिया है जो बराबर जारी रहती है। आन्ध्रराज्यके निर्माणसम्बन्धी समाचारको यदि हम प्रथम श्रेणीका विषय या कथा मानते हैं तो इसका कारण यह नहीं कि उसमें नेहरूजी प्रकाशम् तथा राजाजी जैसे सुख्यात व्यक्तियोंके नाम आते हैं वरन् इसलिए कि सारे देशके पाठकोंके स्वार्थ हितोंसे उसका सम्बन्ध है। इसलिए समाचारके मूल्यांकनमें सार्वजनिक महत्त्वकी भी गणना की जानी चाहिये।

मानव अभिरुचिकी कथाएँ उन घटनाओं या विषयोंसे सम्बन्ध रखती हैं जिनमें कुछ असाधारणसी बातोंके कारण लोगोंकी दिलचस्पी उत्पन्न हो जाती है। दूसरोंके तथा राष्ट्रके जीवन और कल्याणसम्बन्धी मामलोंमें पाठकोंकी अभिरुचि होती ही है। उदाहरणके लिए वित्तमन्त्री श्री सी० डी० देशमुखके साथ श्रीमती दुर्गाबाईके विवाहका समाचार मानव-अभिरुचि उत्पन्न करनेवाला समाचार है। स्वभावतः पाठक उक्त समाचारका विवरण पढ़ते समय इस बातकी आशा करता है कि उसमें यह भी बताया गया होगा कि उक्त संस्कारके समय वरवधू कैसी वेश-भूषामें थे कौन कौनसे प्रसिद्ध व्यक्ति उस समय वहाँ उपस्थित थे क्या क्या वहाँ हुआ खुशी और आनन्दोल्लासका कैसा वातावरण रहा एक दूसरेके प्रति कैसी प्रतिज्ञाएँ उन्होंने कीं और किस तरहके उपहार तथा बधाइयाँ उन्हें भेजी गयीं इत्यादि।

कहा गया है, उसके भीतर क्या है, इसीपर यह अवलम्बित है। उसमे उसका उल्लेख हो सकता है, अथवा यह बताया गया हो सकता है कि घटनासे सम्बद्ध व्यक्ति स्त्री है या पुरुष, कोई झगडा है या बच्चेका मामला है, अथवा बच्चों या सौन्दर्य और मानव अभिरुचि, दुविधाकी स्थिति, व्यक्तिगत अपील, सहानुभूति आदिकी बात उसमे कही गयी हो सकती है।

समाचार प्राप्त करनेके साधन

समाचार हमे कहॉ-कहॉसे प्राप्त हो सकते है, अब हम इसकी चर्चा करगे। समाचार लानेवाले प्रत्येक व्यक्तिको चाहे वह नवसिखुआ युवक हो और चाहे अनुभवी प्रौढवयस्क, यह जान लेना चाहिये कि समाचार कहॉ मिलेगा। समाचारके प्राप्ति स्थानोका पता लगानेकी योग्यता भी उतनी ही आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है जितनी अन्य योग्यताएँ। रिपोर्टरको चाहे छोटे शहरमे काम करना पडता हो, चाहे बडे शहरमे, उसका पहला काम यह होना चाहिये कि वह अपने नगरका रत्ती रत्ती हाल जान ले। कोतवाली कहॉ है, कचहरी, म्यूनिसिपल कार्यालय, टाउनहाल, स्टेशन, मोटर-स्टैण्ड, अस्पताल, स्कूल-कालेज आदि सार्वजनिक स्थान कहॉ कहॉ अवस्थित है, यह उसे जानना चाहिये।

समाचार-सग्राहकके लिए समाचार प्राप्त करनेका एक महत्त्वपूर्ण स्थान सरकारका सूचना-कार्यालय है। सामान्यत ससारके प्राय सभी देशोंमे एक सूचनामन्त्री तथा सूचना-सचिवालय होता है। सरकारके कितने ही क्रियाकलापोका समाचार सचिवालयके अधिकारियोसे मिल सकता है। इसके सिवा, सूचना कार्यालयोंसे भी प्राय प्रतिदिन समाचार पत्रोंके लिए कतिपय सूचनाएँ, विज्ञप्तियॉ तथा हस्तविवरण (हैण्ड आउट्स) प्रकाशित किये जाते है।

समाचार प्राप्त करनेका एक और साधन है खास खास लोगोंसे मिलना-जुलना, उनसे सम्पर्क बनाये रखना। यदि किसी आदमीसे

रिपोर्टरका व्यक्तिगत तथा सामाजिक सम्पर्क हो, तो मामलेकी घनिष्ठ जानकारी होनेके कारण वह अपने ढंगपर अच्छा विवरण तैयार कर सकता है। वह अपने कथानकोंपर मानवताका पुट चढ़ा सकता है।

व्यापारिक तथा औद्योगिक संस्थाओंमें भी अपने अलग जन-सम्पर्क-विभाग होते हैं जहाँसे रिपोर्टरोंको समाचार प्राप्त हो सकते हैं। इनसे समाचार लेते समय इस बातका ध्यान रखना आवश्यक है कि उनका जो महत्त्व हो वही उन्हें दिया जाय अर्थात् उनमें प्रचारका जो अंश है उसके फेरमें न पड़ा जाय।

समाचार प्राप्त करनेका एक नया साधन, जिसका प्रचलन इधर कुछ ही वर्षोंसे शुरू हुआ है, पत्र प्रतिनिधियोंके सम्मेलनका आयोजन करना है। सरकारके प्रमुख अधिकारी, राजनीतिक दलोंके नेता तथा किसी संस्थाके अध्यक्ष आदि पत्रोंके प्रतिनिधियोंको निमन्त्रित कर अपनी सरकार या संस्थाका दृष्टिकोण उन्हें समझाते और वार्तालाप या प्रश्नोत्तरों द्वारा उसकी गतिविधि या उन्नतिके कार्योंपर भी प्रकाश डालते हैं। कभी कभी ऐसे सम्मेलन महत्त्वपूर्ण गैर सरकारी व्यक्तियों द्वारा भी बुलाये जाते हैं। इन सम्मेलनोंके जरिये रिपोर्टरोंको प्रमुख अधिकारियों तथा व्यक्तियोंसे सीधे बातचीत करनेका अवसर मिलता है। सम्मेलनका आयोजन करनेवाला पहले एक औपचारिक वक्तव्य देता या कोई कथन करता है, और तब प्रश्नोत्तर शुरू हो जाता है। पतेकी बातें जाननेके लिए प्रश्न करनेका और उनके उपयुक्त उत्तर पानेका अवसर रिपोर्टरोंको मिलता है।

रिपोर्टिंग अर्थात् घटनास्थलपर जाकर वहाँसे ठीक ठीक समाचार ले आना और उन्हें क्रमबद्ध कथा या विवरणके रूपमें अपने पत्रमें प्रकाशनार्थ देना यह प्रत्येक समाचारपत्रका एक महत्त्वपूर्ण अंग है। मनुष्यों तथा मामलोंके सम्बन्धमें मत या निर्णय देनेकी भारी जिम्मेदारी समाचार-सम्पादकको मानी जाती है। विशेषकर लोकतन्त्रमें उसे लोगोंके आचरण-व्यवहार और सार्वजनिक मामलोंके बारेमें छानबीन कर अपना विवरण

तैयार करना पड़ता है। इसलिए जिन लोगोंके बीचमें उसे रहना पड़ता है, उनके प्रति उसका मुख्य कर्त्तव्य होता है। इस पथमें हृदयकी सचाई और ईमानदारी तथा सत्य और यथार्थता ही ऐसे प्रदीप हैं जिनके प्रकाशमें उसे, समाचार या विवरण तैयार करते समय, आगे बढ़ना चाहिये।

इन सिद्धान्तोंको सामने रखकर ही भारतमें रिपोर्टिंगका काम बड़े परिश्रम और कठिनाइयोंके साथ होता रहा है। किन्तु जब हम उसकी तुलना संयुक्तराष्ट्र अमेरिका तथा ब्रिटेनके साथ करते हैं, तो हमें मानना पड़ता है कि इसमें अभी वह उच्च कोटिकी पूर्णता नहीं आयी है जो वहाँ दृष्टिगोचर होती है। फिर भी भारतीय स्वातन्त्र्य-आन्दोलनके समय तथा उसके बाद लगभग ४० करोड़ लोगोंके भाग्यका निर्माण करनेमें उसने महत्त्वपूर्ण हिस्सा ग्रहण किया है।

इस सिलसिलेमें यह बात कही जा सकती है कि जहाँतक समाचारोंके मूल्यांकनका, तथ्योंके संग्रहका और सुसम्बद्ध कथाके रूपमें उन्हें पत्रमें प्रकाशित करनेका प्रश्न है, भारतमें रिपोर्टिंगका काम काफी आगे बढ़ गया है। देशभक्तिकी प्रेरणासे ही भारतीय पत्रकारोंका जन्म हुआ है। राजनीतिक स्थिति लोगोंकी समझमें आ जावे, मुख्यतः इसी दृष्टिसे यहाँ रिपोर्टिंग की जाती रही है। रिपोर्टिंगकी विशेष प्रविधियाँ यहाँ अज्ञात थीं और बहुधा उनके सम्बन्धमें विचारतक नहीं किया जाता था, क्योंकि सबसे अधिक जोर कथाके सार-भागपर ही दिया जाता था, उसके समुन्नत तरीकों या प्रविधियोंपर नहीं।

१५ अगस्त १९४७ को भारत पराधीनतासे मुक्त होकर पूर्ण स्वतन्त्र हो गया। इस तिथिसे एक युगकी समाप्ति हो गयी और नये युगका आरम्भ। अकेले भारतके लिए ही नहीं, एशियाके लिए भी, सारे विश्वके लिए, इसका एक विशेष महत्व था, यह इस बातका संकेत था कि अब विश्वराष्ट्रोंके बन्धुत्वमें अपरिज्ञात सम्भावनाओंवाले एक नये राष्ट्रका प्रवेश हुआ जिसे मानव जातिके राजनीतिक, सामाजिक सांस्कृतिक तथा

आध्यात्मिक भविष्यका निश्चय करनेमें प्रमुख हिस्सा ग्रहण करना है। भारतीय स्वतन्त्रताके जन्मके बाद अब भारतीय समाचारपत्रोंका तथा समाचारिक कथानक तैयार करनेकी कल्पनाका इतिहास दूसरी तरहसे लिखा जायगा।

भारतमें अनेक भाषाओंका प्रचलन होनेके कारण यहाँके समाचार-पत्रोंके रूप-रंग आदिमें प्रत्यक्षतः विभिन्नता और वैषम्य देख पड़ना अनिवार्य हो गया। भारतकी १५ विभिन्न भाषाओंमें इस समय जो लगभग तीन हजार समाचारपत्र निकल रहे हैं, कुछ तो दैनिक हैं और कुछ साप्ताहिक, पाक्षिक तथा मासिक, किन्तु दैनिक पत्रोंमें जितने समाचार या घटनाओंके विवरण प्रकाशित होते हैं, उतने अन्य किन्हीं पत्रोंमें नहीं और जनसाधारणके विचारोंपर जितना प्रभाव इनका पड़ता है उतना उनका नहीं।

यद्यपि भारतमें समाचारपत्रोंका प्रारम्भ, वास्तविक अर्थमें, अंग्रेजों द्वारा लगभग डेढ़ शताब्दी पूर्व किया गया था, पर अब यह बिल्कुल अपने देशकी चीज बन गयी है और देशकी ही भूमिमें उत्पन्न पौधेकी तरह इसमें जान है, दम है। साधारणतः इन्हें अच्छी जानकारी रहती है, इनकी भाषा जोरदार होती है और इनमें बहुत-सी ज्ञातव्य बातोंका समावेश रहता है। साथ ही यह बात भी मान ली गयी है कि सार्वजनिक मतके निर्माणपर इनका बड़ा प्रभाव पड़ता है।

बीसवीं शताब्दीके आरम्भमें सारे देशमें समाचारपत्रोंकी भारी हल-चल शुरू हो गयी। सबसे महत्त्वकी बात यह हुई कि यहाँ भारतकी प्रथम संघटित समाचार संस्था—असोसियेटेड प्रेस ऑफ इण्डिया—की स्थापना हुई। इसके पहले प्रत्येक समाचारपत्रको अपने निजी संवाद-दाताओंके जरिये स्वतन्त्र रूपसे समाचारोंका संग्रह करना पड़ता था।

बिजलीके तार द्वारा समाचार भेजनेके तरीकेका प्रादुर्भाव एवं विकास होनेके बादसे समाचार समितियोंका महत्त्व बढ़ गया। समा-चारोंके वितरणमें इनके कारण भारी परिवर्तन हो गया, विशेषकर

समाचार सम्बन्धी तारोंकी दर घटा दिये जानेके बादसे। (समाचार-समितियोंके इतिहास आदिके लिए तीसरा अध्याय देखिये।)

घटनाओं आदिका विवरण तथा समाचार प्राप्त करनेका दूसरा महत्त्वपूर्ण तरीका देशके प्रमुख नगरोंमें अपने विशेष संवाददाता रखकर उनसे समाचार मँगाना है। अंग्रेजी तथा देशी भाषाओंके पत्र, दोनोंने ही विशेष संवाददाता नियुक्त कर रखे हैं। भारतकी राजधानी नयी दिल्लीमें तो इन विशेष संवाददाताओंका मानो जमघट लगा रहता है। (सातवाँ अध्याय देखिये।)

भारतीय समाचारपत्रमें जो विशेष रिपोर्टर या समाचार-संग्राहक होते हैं, उन्हें खास खास विषयोंकी—खेलों, व्यापार-वाणिज्य, मुकदमों-मामलोंकी सुनवाई आदिकी—रिपोर्टिंग करनी पड़ती है। खेलोंके समाचार लानेवाले रिपोर्टरके लिए आवश्यक है कि उसे क्रिकेट, हाकी, फुटबाल, मुष्टि-द्वन्द्व आदिका अच्छा ज्ञान हो। कुछ पत्रोंमें खेलों आदिके लिए विशेष स्तंभ-लेखक भी होते हैं। भारतीय समाचारपत्रके जिस पृष्ठ पर खेलों सम्बन्धी समाचार छपते हैं, उसे प्रायः सबसे अधिक लोग पढ़ते हैं। खेलोंके अन्तर्राष्ट्रीय द्वन्द्वोंके समाचारोंमें इधर हालमें लोगोंकी काफी दिलचस्पी बढ़ गयी है।

व्यापार-वाणिज्यके समाचार देनेवाले रिपोर्टरका काम विशेषरूपमें व्यापारिवर्गकी सेवा करना है। वह वस्तुओंके बाजारभाव ही नहीं देता वरन् वह बाजारके रुखसे सम्बन्ध रखनेवाले तथ्य भी देता है और रुपये-पैसेकी (वित्तीय) स्थितिकी भी चर्चा करता है।

पत्रोंमें अक्सर फिल्म-रिपोर्टर भी होता है, जो अब रिपोर्टरोंमें महत्त्वपूर्ण स्थान पानेका दावा करने लगा है। वह केवल पत्रकार ही नहीं होता वरन् आलोचक भी होता है। यह कर्तव्य पूरा करनेके लिए उसे कला, संगीत तथा चित्रपटों सम्बन्धी अन्य प्राविधिक बातोंकी जानकारी हासिल करनी पड़ती है जिससे अपने विषयपर वह योग्यतापूर्वक विचार कर सके। चित्रोंके पूर्व प्रदर्शनमें वह सम्मिलित होता है, उसकी

रोजमर्राकी गश्तमें वह इस उद्योगके प्रमुख व्यक्तियोंसे मिलता रहता है और जिन कथानकोंमें सिनेमा जानेवालोंकी विशेष दिलचस्पी हो, उनके सम्बन्धमें वह अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियोंसे मिलकर उनके विचार जाननेका भी प्रयत्न करता है।

मुकदमे-मामलोंकी रिपोर्ट लानेका काम खास तरहका काम होता है। जिस रिपोर्टरको यह कार्य सौंपा गया हो उसे अदालतके अपमानका कानून अच्छी तरह जान लेना चाहिये और कार्यपद्धति सम्बन्धी छोटी-छोटी बातोंकी भी जानकारी उसे होनी चाहिये।

इन विशेष समाचार-संग्राहकोंके सिवा सामान्य रिपोर्टर भी होते हैं जिनका काम सभाओं-जल्सोंकी रिपोर्ट लेना, प्रसिद्ध व्यक्तियोंसे मिलकर प्रश्नोत्तर द्वारा उनके विचार जानना, पत्र प्रतिनिधियोंके सम्मेलनमें जाना तथा कभी कभी किसी विवादग्रस्त विषयके सम्बन्धमें ऐसे लोगोंके पास जा जाकर उनका मत जानना जिनके विचारोंका कुछ महत्त्व हो। स्वरालेखन (शार्ट हेंड) ये जानते हैं, इसलिये भाषणों, अभिभाषणों आदिकी अक्षरशः रिपोर्ट भेज सकते हैं। इनमें शीघ्रता करनेका उन्हें विशेष ध्यान रखना पड़ता है, क्योंकि इस क्षेत्रमें प्रतिद्वन्द्विता काफी बढ़ गयी है। इस सम्बन्धमें रिपोर्टरको प्रायः अपने विवेकसे काम लेकर यह निश्चय करना पड़ता है कि जिसकी रिपोर्ट उसे देना है, समाचारकी दृष्टिसे उसका कितना महत्त्व है। उसे उन विषयोंकी भी अच्छी जानकारी होनी चाहिये जिनके सम्बन्धमें उसे लिखनेकी आवश्यकता पड़े।

भारतमें बहुतसे रिपोर्टर प्रसिद्ध नेताओं आदिसे बातचीत करके बातें जान लेनेकी कलामें अधिक निष्णात नहीं हैं और बहुत थोड़े मामलोंमें ही समाचार प्राप्त करनेके लिए इस विशेष पद्धतिका सहारा लिया जाता है। प्रसिद्ध व्यक्तिसे बातचीत कर दो एक महत्त्वकी बातें जान लेनेमें पत्र-प्रतिनिधियको तभी सफलता मिल सकती है जब उसे स्थितिकी बहुत अच्छी जानकारी हो, उसके भीतर-बाहरकी बातें वह समझता हो। महान व्यक्तिसे उसे बड़ी ही चतुराईसे बातचीत करनी

चाहिये जैसी कोई होशियार वकील प्रतिपक्षीके गवाहसे जिरह करते समय प्रदर्शित करता है।

राष्ट्र-नेताओ आदिसे इस तरह बातचीत करनेके बाद ही कितने ही पत्र-प्रतिनिधियोने ऐसी बातें प्रकाशित करनेमें सफलता प्राप्त की है जिनसे चारो तरफ सनसनी फैल गयी है। भारतमें प्रसिद्ध नेता, राष्ट्रनायक आदि या तो बहुत ज्यादा प्रकाशमें आना—अपना प्रचार कराना—पसन्द नही करते, या फिर पत्र-प्रतिनिधियोंके साथ किसी विषयपर गम्भीरता पूर्वक बातचीत करना उन्हें स्वीकार नहीं होता। कुछ ऐसे भी बड़े आदमी होते है जो बिना माँगे ही किसी भी विषयपर लम्बा-चौड़ा वक्तव्य देनेको तैयार रहते है। भारतीय रिपोर्टरके लिए इसके सिवा और कोई रास्ता नहीं कि वह समाचार प्राप्त करनेकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण समझे जाने वाले इन विभिन्न तरहके व्यक्तियोसे भेंट-मुलाकात कर अपना भाग्य आजमानेका प्रयत्न करे।

नवयुवक रिपोर्टर समाचारपत्रमे काम करनेवाले परिवारके सबसे छोटे (लघुवयस्क) सदस्य समझे जाते है। अक्सर इस उद्योगमें नये नये प्रविष्ट होनेवाले लोग इसी श्रेणीमे आते है। उनका काम शहरमें इधर उधर घूमकर नियमित स्थानो, जैसे कोतवाली, सरकारी दफ्तरो आदि से समाचार प्राप्त करना रहता है। अक्सर तो सूचना प्रसारित करनेवाली सरकारकी विभिन्न सस्थाओ समितियोसे जो समाचार हस्तपत्रक (हैंडआउट्स) के रूपमे उन्हे प्राप्त हो जाते है, उन्हे ही बटोरकर ले आते हैं। कभी-कभी उन्हे अन्य छोटे-मोटे काम भी सौंप दिये जाते है, जैसे किसी दुर्घटनीकी, अग्निकाण्डकी या किसी छोटे समारोह आदिकी रिपोर्ट ले आना। इस सीमित क्षेत्रमे काम करते समय नव-रिपोर्टरको अपने आपको प्रशिक्षित बनानेका ही अवसर नही मिलता वरन उसे अपनी भावी सम्भावनाएँ और प्रवृत्तियाँ प्रकट करनेके लिए भी पर्याप्त अवसर प्राप्त होता है।

रिपोर्टरो द्वारा किसी घटना आदि सम्बन्धी विवरण या कथानादी

जो कापी तैयार की जाती है, सहायक सम्पादकगण सम्पादन करते समय उसमें खूब काट छाँट और फेर-बदल करते हैं। उसका अग्रभाग बदल दिया जा सकता है, विवरण अधिक संक्षिप्त कर दिया जा सकता है, शैलीमें इधर उधर कुछ सुधार करनेकी गरजसे कलम चलायी जा सकती है या फिर पत्रकी आवश्यकताके अनुसार वह पूरीकी पूरी नये सिरेसे लिख दी जा सकती है। भारतके रिपोर्टरोंमें कुछ तो कार्य पद्धति सम्बन्धी तथा कुछ अन्य तरहकी न्यूनताएँ हैं। व्यक्तियों तथा घटनाओंके सम्बन्धमें उनकी जानकारी सीमित ही होती है। हो सकता है कि वे अच्छे लेखक न हों। बहुतसे रिपोर्टर शीघ्र लिपि तथा मुद्रलेखन भी नहीं जानते। समाचार लिखनेकी कला और पद्धति सुप्रचलित एवं सुज्ञात नहीं है। यदि भारतके किसी पत्रकारकी इच्छा घटनाओं आदिका समाचार और विवरण तैयार करनेकी कलामें पारंगत होनेकी हो तो उसे अपने आपको इसके लिए हर तरहसे सुसज्जित और सन्नद्ध करना होगा।

दूसरी बात यह है कि यहाँ 'रिपोर्टर को प्रायः' बहुत कम वेतन मिलता है। उसे जो पारिश्रमिक दिया जाता है उससे उसका पूरा नहीं पड़ता। इसलिए अच्छा काम कर दिखानेकी उसे कोई प्रेरणा ही नहीं होती। यदि समाचारपत्रोंके मालिक उनका वेतन बढ़ा दें तो यह दोष आसानीसे दूर किया जा सकता है। अक्सर तो ऐसा होता है कि भारतमें जो व्यक्ति रिपोर्टर होता है उसे ही सहायक सम्पादक, पुनर्लेखक तथा समाचार-सम्पादकका भी काम करना पड़ता है। देशके कितने ही समाचारपत्र ऐसी स्थितिमें नहीं हैं कि वे इन सब पृथक्-पृथक् कामोंके लिए अलग अलग आदमी रख सकें। इसलिए कभी-कभी ऐसे छोटे पत्रोंमें रिपोर्टरसे ही आशा की जाती है कि वह इन सबका काम करे। इसका मतलब यह हुआ कि उसे स्वयं ही अपने कथानक या घटना विवरणका सम्पादन करना होगा और उसके ऊपर उपयुक्त शीर्षक देना होगा। बहुधा रिपोर्टरमें इतनी योग्यता नहीं होती कि वह स्वयं ही अपने समाचारका अच्छा कथानक तैयार कर सके।

वह तो समाचारोंका सग्राहकमात्र होता है। इसलिए इस तरह एक ही आदमीसे सब काम करानेका नतीजा भद्दी, नीरस, त्वरायुक्त और तथ्यहीन पत्रकारीके रूपमें प्रकट होता है।

भारतमें घटनास्थलपर जाकर समाचार लाने एव तत्सम्बन्धी विवरण तैयार करनेका काम मुख्य रूपमे छोटे और बडे नगरोतक ही सीमित रहता है। नगरेतर क्षेत्रके लिए शायद ही एक दो रिपोर्टर रखे जाते हों। वे भी प्राय. अननुभवी, प्रशिक्षण विहीन एव कम वेतन पानेवाले होते है। सामान्य मनुष्य सम्बन्धी समाचारोंकी उपेक्षा की जाती है। भारतम लोकतन्त्रके सफल सञ्चालनके लिए आवश्यक है कि पाठकोंको जन-साधारणके समाचार मुख्य रूपसे पढनेको मिलें। किन्तु भारतीय समाचारपत्रोंमें मन्त्रियो तथा बडे आदमियोके राजनीतिक भाषणोंको ही बहुत अधिक स्थान दिया जाता है और ऐसे छोटे-छोटे समाचार बिल्कुल छोड दिये जाते हैं जिनका प्रभाव सडकोंपर चलने-फिरनेवाले मामूली आदमियोंपर विशेष रूपसे पडता है। इसलिए इस बातकी आवश्यकता है कि जनसाधारणकी प्रतिदिनकी समस्याओ और घटनाओंपर विवरणात्मक लेख, समाचार आदि प्रकाशित किये जायँ तथा समाजके सामान्य वर्गके लोगोंकी खोज-खबर लेते रहनेके लिए प्रशिक्षित सवाददाता नगरेतर क्षेत्रोंमें भी भेजे जाया करें।

कितने ही भारतीय रिपोर्टरोंमे समाचार पहचानने या ढूँढ निकालनेकी प्रवृत्ति ही नहीं होती। समाचारकी परख न होनेके कारण जो विवरण या कथानक तैयार किये जाते हैं वे नीरस और शुष्क ही रह जाते हैं। मौलिक रूपसे और खुद देख-सुनकर तैयार की गयी रिपोर्टों या घटना-विवरणोंका प्राय' अभाव ही रहता है।

रिपोर्टरको प्राय गवेषणाका भी काम करना पडता है। वह जो विवरण तैयार करता है, उसमें आये हुए आँकडे या निदश ठीक हैं या नहीं, इसकी जॉच कर लेना उसके लिए आवश्यक होता है। इस दृष्टिसे एक अच्छे, अद्यावधिक पुस्तकालयका होना जरूरी है। अन्ततोगत्वा

इससे उन्हें बड़ा लाभ होता है। समाचारपत्रोंके कितने ही कार्यालयोंमें आकर-ग्रन्थों (निर्देश ग्रन्थों) की, अच्छे पुस्तकालयकी और काम करने-की अन्य सुविधाओंकी बड़ी कमी रहती है। यदि भारतीय पत्रोंमें होने-वाली रिपोर्टिंगमें सुधार करना अभीष्ट हो, तो समाचारपत्रोंके मालिकों तथा सम्पादकोंको इस तथ्यकी ओर अविलम्ब ध्यान देना चाहिये।

भारतीय पत्रोंकी रिपोर्टिंगमें एक और बड़ी असुविधा देशमें बहुत सी भाषाओंका प्रचलन है। सारे देशकी कोई एक सामान्य भाषा नहीं है और राष्ट्रभाषाका अभी पूर्ण विकास नहीं हुआ है, इसलिए देशी भाषाके रिपोर्टरोंको अंग्रेजीपर अवलम्बित रहना पड़ता है। इसमें देर बहुत लग जाती है। अक्सर गलतियाँ भी बहुत छूट जाती हैं। राष्ट्रभाषाका अच्छा विकास होजाने तथा सबके लिए उपयोगी सामान्य समाचार-पत्रोंके चलने लगनेसे यह दोष बहुत अंशतक दूर किया जा सकता है।

टेलीफोन तथा मुद्रलेखन-यन्त्रकी सुविधाओंकी कमीका भी सामना अक्सर भारतीय पत्रोंके रिपोर्टरोंको करना पड़ता है। सभी बड़े नगरोंमें टेलीफोन नहीं हैं और जहाँ हैं भी वहाँ उनकी संख्या कम ही है। उन-तक पहुँच होनेमें कठिनाई होती है। थोड़ेसे ही रिपोर्टर ऐसे हैं जो अंग्रेजीके मुद्रलेखनयन्त्र (टाइप राइटर) रखे हुए हैं। देशी भाषाओंके भी टाइप राइटर इधर तैयार हुए हैं किन्तु सामान्य लोगोंके प्रयोगके लिए अभी बड़े पैमानेपर उनका निर्माण नहीं हो रहा है। इसलिए टेली-फोन और मुद्रलेखनयन्त्र सम्बन्धी अत्यन्त कम सुविधाओंके कारण भार-तीय रिपोर्टरोंको सचमुच कठिनाईका सामना करना पड़ता है।

समाचार-लेखन

सारे वृत्तान्तका सारभाग आ जाता है। थोड़ेमें, वह सारी कथाका पहला अनुच्छेद है जिसमें उसकी मुख्य-मुख्य बातें आ जाती हैं।

एक अच्छे 'अग्रभाग' से कथाकी लय और झुकावका ही पता नहीं चलता वरन् किसी घटनाका हाल मालूम होनेपर पाठकके मनमें उत्पन्न होनेवाले प्रश्नोंका उत्तर भी उसमें मिल जाता है। वह आकर्षक होता है और उसमें सुन्दर ढंगसे समाचार लिखनेकी कलाके सिद्धान्तोंका अनुपालन किया जाता है। यह अग्रांश (लीड) कई तरहका होता है। सबसे महत्त्वपूर्ण अग्रांश वे हैं जिनमें कौन, क्या, क्यों आदि प्रश्नोंका उत्तर देते हुए वृत्तान्तका आरम्भ किया जाता है। उदाहरण ये हैं—

'कौन' के उत्तरवाला अग्रांश

आन्ध्र प्रजा-समाजवादी दलके नेता तथा 'प्रजा पत्रिका' के सम्पादक श्री टी० प्रकाशम्, आज नये आन्ध्र राज्यके मुख्य मन्त्री चुने गये।

'क्या' के उत्तरवाला अग्रांश

कलकत्ता नैशनल बैंकमें हुई डकैतीके रहस्यका अभीतक उद्घाटन नहीं हुआ किन्तु उसमें आहत हुए व्यक्तियोंका अन्तिम संस्कार आज कर दिया गया।

'क्यों' के उत्तरवाला अग्रांश

अपनी माताके प्राण बचानेके लिए श्री गोविन्द बक्सारोने कल मद्रासमें बैंककी अपनी नौकरीकी परवाह न कर हवाई जहाज द्वारा बंग-लोरकी यात्रा की और वहाँ ऐन वक्तपर पहुँच गया जिससे उसके रक्तदान द्वारा माँकी प्राणरक्षा हो सकी।

'कब' के उत्तरवाला अग्रांश

अब अगले सोमवार या मंगलवारतक नये विद्यार्थी मसूर विश्व-विद्यालयके पत्रकार-विद्यालयमें नाम न लिखा सकेंगे, क्योंकि विद्यालयके भावी प्राध्यापकको शिक्षार्थियोंके आवेदन-पत्रोंको देख लेनेका समय अभीतक नहीं मिल सका—यह बात विश्वविद्यालयके अधिकारियों द्वारा आज यहाँ प्रकाशित की गयी।

'कहाँ' के उत्तरवाला अग्रांश

(न्यूयार्कका समाचार) मैसूर, भारत,मे आज महाराजके प्रथम राजपुत्रका जन्म हुआ । यह जन्म उस देशके बडेतर राजवंशके इतिहासमे नये परिच्छेदके आरम्भ होनेका सूचक है ।

'कैसे' के उत्तरवाला अग्रांश

पार्लिमेण्टके कतिपय सदस्योने जब बडी भावुकताके साथ साम्यवादियोके एक संशोधनका समर्थन किया, तब नेहरूजीकी सामयिक चेतावनीने ही उन्हे साम्यवादके सिद्धान्तका पोषक बननेसे रोक लिया ।

अग्रभाग यदि ठिकानेसे लिख लिया जाय तो फिर कथानकका शेष भाग स्वाभाविक रूपसे स्वत ही विकसित होता चलता है, बशर्ते कि नया लेखक इस बातका हमेशा ध्यान रखता चले कि सबसे महत्त्वकी बात पहले लिखी जाय । कोई वृत्तान्त या विवरण किस रूपमे लिखा जाय इसका एक तरीका यह है कि विवरणमे दी जानेवाली बात बिन्दुके ऊपर खडे हुए त्रिकोणके रूपमे रखी जायँ ।

साप्ताहिक या मासिक पत्रकी रिपोर्टिंग

लेख-प्रधान साप्ताहिक या मासिक पत्रोमे रिपोर्टिंगका काम सम्पादकीय विभागके कर्मचारियो द्वारा किया जाता है और कभी कभी स्वतन्त्र पत्रकारो द्वारा । भारतके ऐसे बहुतसे पत्रोमे बाहरके लोगो द्वारा लिखित बहुत कम लेख ही होते है । समाचारो आदिका अधिकाश उनके अपने आदमियो द्वारा तैयार किया जाता है ।

कुछ साप्ताहिक या मासिक पत्रोंमें बाहरी लोगोंके भी लेख छपते हैं। इनमें से कुछ पुरस्कृत भी होते हैं किन्तु भारतमें अभी स्वतन्त्र पत्रकारीकी (लेखादि लिखकर रोजी कमानेकी वृत्तिकी) अधिक उन्नति नहीं हुई है। पत्रोंको भारतके बाहरसे लेख या फीचर कचित् ही प्राप्त होते हैं। हाँ, कुछ बड़े और प्रसिद्ध पत्र बाहरसे भी लेखादि मँगाते हैं और इन्हें लोग चावसे पढ़ते हैं। दैनिक पत्रोंके कुछ विशेष संवाददाता भी साप्ताहिक या मासिक पत्रोंके रिपोर्टर बन जाते हैं। उन्हें जब अवकाश मिलता है, तब वे अपने पत्रोंके लिए समाचारों संबंधी फीचर लिखते हैं या किसी बड़े आदमीसे की गयी मुलाकातका विवरण प्रस्तुत करते हैं। किन्तु इन थोड़ी-सी बातोंको छोड़कर लेख-प्रधान पत्रोंमें रिपोर्टिंगकी अच्छी उन्नति अभी नहीं हो सकी है।

रेडियोके लिए रिपोर्टिंग

रेडियो सम्बन्धी पत्रकारीके लिए भारतमें अधिक विस्तृत क्षेत्र नहीं है, क्योंकि रेडियोपर सरकारका नियन्त्रण है। अखिल भारतीय रेडियोका प्रधान कार्यालय नयी दिल्लीमें है और उसकी शाखाएँ देशके कोई बीस बड़े नगरों—बम्बई, मद्रास, कलकत्ता, लखनऊ—आदिमें। इसके समाचार-विभागका संचालन करनेके लिए सम्पादक, सहायक सम्पादक तथा रिपोर्टरों आदिके रूपमें अनुभवी पत्रकारोंकी आवश्यकता होती है।

बहुतसे बड़े बड़े नगरोंमें अखिल-भारतीय रेडियोके अपने विशेष संवाददाता नियुक्त हैं जो रेडियोके लिए पृथक् रूपमें समाचार भेजा करते हैं। उनको छोड़कर अन्य समाचारोंके लिए रेडियोको पूर्णरूपसे समाचार-समितियोंपर निर्भर रहना पड़ता है। राज्यकी ओरसे होनेवाले उत्सवों तथा टेस्टमैच आदिका आँखों-देखा हाल सुनाने, प्रसारित करनेका काम (अपने विशेष कर्मचारियों या) संवाददाताओं आदिसे कराया जाता है। इसके सिवा रेडियोमें समाचारोंके लिए और कोई विशेष आयोजन या आडम्बर नहीं है।

---

५. उपसम्पादकका काम

भारतीय समाचारपत्रोंके आरम्भिक कालमे समाचारों, रिपोर्टों आदिके सम्पादनका काम या तो होता ही न था, या फिर बहुत सीमित परिमाणमे ही होता था। मनुके युगमे और मुगलोंके समयमे भी समाचारपत्र निकलते थे। व्यक्ति-विशेष ही इन लघु समाचारपत्रोंमे सब कुछ लिखा करते थे और उन्हे प्रकाशित करते थे। उनमेंसे प्रत्येक प्राय एक आदमीका ही उत्पादन होता था।

भारतमे सबसे पहला अग्रेजीका पत्र २९ जनवरी सन १७८० को जेम्स आगस्टस हिकी द्वारा छापा और प्रकाशित किया गया था। हिकी ही अखबारके सर्वेसर्वा थे। रिपोर्टर, उपसम्पादक समाचार सम्पादक, सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक—सबका काम वे अकेले ही करते थे। उस समय समाचारपत्रोंका परिचालन प्राय एक ही व्यक्ति अकेले किया करता था। पत्रका आकार छोटा था और सामग्री भी कम ही छापनी पड़ती थी इसलिए अधिक कर्मचारियोंके रखनेकी आवश्यकता ही न थी। जब प्रासगिक लेखों (फीचर्स) की सख्या बढ़ने लगी और कामका परिमाण भी बढा तब ऐसे आदमियोंका रखना आवश्यक हो गया जो दूसरोंकी लिखी हुई चीजोंको अखबारमे छापने लायक बनानेके लिए उनकी समीक्षा करते तथा उचित सशोधन कर उन्हे सुन्दर रूप दे देते। यही आदमी उपसम्पादक (सब-एडिटर) कहलाये।

वही छपने योग्य बनाता है। शुष्क और नीरस तथ्योंको वह मनोरञ्जक कथाओंमे बदल देता और उन्हे ऐसा जामा पहना देता है जिससे आँखें अनायास ही उनकी ओर आकर्षित होकर ठहर जाती है। तथ्य सम्बन्धी कोई भूल न रह जाय और लिखनेके ढगमे कोई त्रुटि न होने पावे, इस बातकी भरपूर चेष्टा करता है वह। विश्वभरके समाचार और बहुत-से प्रासगिक लेख शीघ्रतापूर्वक—सही सही और आकर्षक ढगसे—प्रस्तुत करनेकी जिम्मेदारी वह अपने ऊपर लेता है। उसका अध्ययन गहन होता है और जानकारी विस्तृत। वह स्वय बहुत कम लिखता है। उसे बडे बडे लेखकोकी भी रचनाओंमे इस दृष्टिसे सशोधन करना पडता है जिससे वे समाचारपत्रकी शैलीके अनुरूप हो जायँ।

उपसम्पादकोंका कमरा

उपसम्पादकोंके कमरेमें मुख्य उपसम्पादकका ही आधिपत्य रहता है। उसकी मेजपर प्रकाशनार्थ आये हुए समाचार तथा चित्रादिका अम्बार लगा रहता है। वह एक तरहसे सब कापियोको 'चखने' का काम करता है। उन्हे देखकर ही वह निश्चय करता है कि वृत्तान्त ज्योका त्यो छपेगा या घटाकर आधा कर दिया जायगा अथवा पाँच लाइनकी सामग्रीको बढाकर एक कालम या उससे भी अधिकमे छापना ठीक होगा।

इस कठिन काममे कई उपसम्पादक भी उसकी सहायता करते है। पत्रके कार्यालयमे साधारणतया दो पालियोंमें काम होता है—दिनकी पाली तथा रातकी पाली। हर एक पालीका पृथक्-पृथक् प्रधान होता है। कुछ पत्रोंमें एक और पाली—'बीचकी' पाली—भी होती है। इसका परिचालन प्रायः एक मामूली उपसम्पादक करता है, और जैसा कि नामसे स्पष्ट है, यह दोनो पालियोको परस्पर सम्बद्ध करनेमे बीचकी कडीका काम करती है।

प्रधान उपसम्पादक (चीफ सब) का मुख्य काम उपसम्पादकोंके कामकी निगरानी करना और उसमें तालमेल बैठाना है। पत्रके किसी भी सस्करण विशेषके निकालनेका वही जिम्मेदार होता है। वह उप-

सम्पादकोंमें तार या समाचारादिकी कापी वितरित करता है, उनका लेखा-जोखा रखना है और किस व्यक्तिके जिम्मे कौन काम है, इसकी जानकारी भी उसे रहती है। उसके मस्तिष्कमें समाचारपत्रका पूरा चित्र विद्यमान रहता है। वह सरसरी तौरपर आपको बता सकता है कि किस पृष्ठके किस कालममें किस जगह कोई विशेष समाचार या चित्र दिया जा रहा है।

प्रधान उपसम्पादकको हम शिल्पी (आर्किटेक्ट) कह सकते हैं, क्योंकि खेलकूद तथा वाणिज्य व्यापार सम्बन्धी पृष्ठोंको छोड़कर अन्य सब पृष्ठोंका गठन एवं शृंगार (मेकअप) वही करता है। कुछ पत्रोंमें तो इन पृष्ठोंका मेक-अप भी वही कराता है। अखबारकी सामग्री मशीन-पर चढ़ानेके कुछ ही पहले उसे छापेखानेमें जाकर मेक अपका निरीक्षण करना पड़ता है।

भारतीय पत्रोंकी पृष्ठ सज्जा तथा छपाई-सफाईकी आरम्भिक कालसे अबतककी स्थितिका अवलोकन करनेसे पत्रकारकलाका अध्ययन करनेवाले किसी भी व्यक्तिको विश्वास हो जायगा कि इस दिशामें अब यथेष्ट उन्नति हो गयी है। प्रारम्भिक कालके पत्रोंमें मेक अपका ढंग ऊपरसे नीचेकी ओर लम्बाईके बल होता था। सारा कालम, ऊपरसे नीचे तक, ठोस मैटरसे भरा रहता था—चित्रोंके रखनेके लिए कॉलमोंको अवकाश ही नहीं मिलता था। मुद्रण सौन्दर्यका तो मानो किसीको ज्ञान ही न था।

मेक-अप ध्यान आकर्षित करने तथा पढ़नेकी रुचि उत्पन्न करनेके रूपमें सफल हो रहा है।

प्रधान उप-सम्पादक जब पत्रके मेक-अपका खाका बनाने लगता है, तब अपने अन्य साथियों, विशेषकर समाचार-सम्पादकसे तथा विज्ञापन व्यवस्थापकसे परामर्श कर लिया करता है। समाचार-सम्पादक उसे बता देता है कि कौन-कौन मुख्य समाचार दिये जा चुके हैं और कौन-कौन अभी और दिये जानेवाले हैं तथा स्थूल रूपमें उनके कितने स्थानमें आनेकी सम्भावना है। विज्ञापन-व्यवस्थापक उसके हाथमें उस दिनके अखबारका एक छोटा सा प्रारूप थमा देता है जिसमें इस बातका निर्देश रहता है कि किस पृष्ठके किस हिस्सेमें किस विज्ञापनके लिए कितना स्थान सुरक्षित रखा गया है। कौन-कौनसे फीचर तथा अन्य सामग्री अंकविशेषमें देना है, इसका पता जब मुख्य उपसम्पादकको लग जाता है, तब वह एक खाका-सा बना लेता है। यदि समाचारोंकी स्थितिके कारण आवश्यक हो जाय तो पृष्ठसज्जाकी अपनी योजनामें थोड़ा सा हेर फेर करने या मैटर खण्डित कर अन्य पृष्ठादिमें ले जानेमें भी वह नहीं हिचकता।

भारतीय पत्रोंमें समाचार-सम्पादकके ही जिम्मे चित्रोंकी व्यवस्था भी रहती है। फोटोग्राफ तैयार करनेवाली समितियोंसे, दूतावासोंके सूचनाधिकारियोंसे, समाचारपत्रोंको सूचना देनेवाले कार्यालयसे, विभिन्न प्रचार-संस्थाओं तथा शौकिया छायाचित्र लेनेवालोंसे वह चित्र इकट्ठे करता है। प्रथम पृष्ठका मुख्यचित्र, यथासम्भव सम्पादकीय विभागके फोटोग्राफरका ही लिया हुआ होता है। समाचारोंके साथ ही तत्सम्बन्धी चित्रोंका भी विचार प्रधान उपसम्पादकको करना पड़ता है। ऐसे चित्रों को, जिनमें कोई काम करना या दौड़-धूप आदि दिखाई गयी हो, जिनका समाचारोंकी दृष्टिसे विशेष महत्त्व हो तथा जिनमें दर्शकका ध्यान अपनी ओर खींच लेने और उसे रोक रखनेकी क्षमता हो, अन्य चित्रोंकी अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया जाता है।

चित्रोंके ऊपर-नीचेके शीर्षक

अखबारमें छापनेके लिए जो चित्र चुने जायँ उन्हें सुन्दर ढंगसे सजानेके लिए प्रधान उपसम्पादकमें कलाकार जैसी सूझ बूझ होना आवश्यक है। नुमायश पेजिंगमें वह उतनी जगह घेर देता है जितनीमें उसे कोई चित्र देना होता है। चित्रकी लम्बाई-चौड़ाई नापते समय उसे इस बातका भी ख्याल रखना पड़ता है कि उसके ऊपर तथा नीचे जो परिचयात्मक शीर्षक या पंक्तियाँ दी जायँगी उनमें कितनी जगह लगेगी। पत्रोंमें छपनेवाले चित्रोंके साथ अक्सर 'ऊर्ध्व पंक्ति' तथा 'अधो-पंक्ति' दोनों ही जाती हैं। 'ऊर्ध्व पंक्ति' में केवल उस व्यक्ति, स्थान या वस्तुका नाम रहता है जिसका समाचार वहाँ दिया गया हो और नीचेकी पंक्तिमें घटना सम्बन्धी कोई विवरण या हवाला आदि रहता है।

किसी घटना या समाचार सम्बन्धी स्थिति स्पष्ट करनेके लिए या उसकी पृष्ठभूमि दिखानेके लिए प्रधान उपसम्पादकको कभी कभी पुराने ढेरमेंसे एक आध ब्लाक ढूँढ निकालना पड़ता है। उसके साथ दिये गये विवरणको वह फिरसे देख लेता है। हो सकता है कि उसके नीचे केवल इतना ही लिखा हो—'सतारावाले महाराज'। इससे यह सन्देह रह जाता है कि चित्र वर्तमान महाराजका है या स्वर्गीय नरेशका। इसका निवारण उसे कर देना चाहिये।

चित्रके नीचे परिचयके रूपमें जो कुछ लिखा जाता है उसे प्रधान उपसम्पादक अच्छी तरह देख लेता है। पुराने रखे हुए ब्लाकोंके नीचे दिया गया मैटर यदि पुराना तथा असामयिक प्रतीत होने लगा हो तो उसे ठीककर सामयिक बना दिया जाता है और ताजे समाचारोंके सम्बन्धमें बने ब्लाकोंके नीचेका मैटर भी जाँचकर देख लिया जाता है कि कहीं फोटोग्राफरसे कोई गल्ती तो नहीं हो गयी है। यह काम या तो वह स्वयं करता है या किसी ऐसे उपसम्पादकको सौंप देता है जो सचित्र पत्रकारीमें सिद्धहस्त हो।

मुख्य समाचारका विवरण मुख्य उपसम्पादक स्वयं ही देखता है और उसमें संशोधन, परिवर्त्तन आदि करता है। अन्य महत्त्वके विवरण तथा नियमित रूपसे जानेवाले विषय भी वही देखता है। वह कमरेके मुख्य भागमें एक बड़ी मेजके सिरेपर या बड़ी सी डेस्कपर बैठता है या फिर उस अर्द्धचन्द्राकार मेजके भीतरी भागमें बैठता है, जहाँ बैठकर उपसम्पादक लोग काम करते हैं। मामूली और कम उन्नति किये हुए अखबारोंके दफ्तरोंमें वह उस कम रोशनीवाले गन्दे कमरेमें, जो उपसम्पादकोंका कमरा कहलाता है, अपने अन्य साथियोंके साथ ठूँस दिया जाता है। उसे पहचाननेमें आपको प्रायः अधिक दिक्कत नहीं होती, क्योंकि उसके चेहरेपर जल्दबाजी और फुरतीलेपनके चिह्न स्पष्ट रूपमें दिखाई पड़ते हैं। वह बार बार घड़ीकी तरफ देखता है और कभी किसी कापीके लिए या किसी आदमीके लिए चीखता-चिल्लाता रहता है।

प्रधान उपसम्पादक अपने दलका मुखिया होता है। उसे कार्य सम्बन्धी निर्देश समाचार-सम्पादकसे लेने पड़ते हैं और सन्देह या कठिनाईके समय भी वह उसीसे सलाह-मशविरा करता है। नियमानुसार सम्पादन, संशोधन हो जानेपर भी सारी कापीका निरीक्षण उसके लिए आवश्यक है, किन्तु इसके लिए वह अपने अनुभवी सहयोगियोंपर भी विश्वास कर सकता है। नये या कम अनुभवी उपसम्पादकों द्वारा सम्पादित की गयी कुल कापीकी जाँच मुख्य उपसम्पादकको करनी चाहिये।

उपसम्पादकका काम

उपसम्पादक समाचारपत्रके कार्यालयमें सबसे अधिक बहुमुखी प्रतिभावाला कर्मचारी होता है। उसे प्रत्येक विषयका थोड़ा-थोड़ा और किसी एक विषयका पूरा ज्ञान रहता है। स्वराष्ट्र, परराष्ट्र वित्त सम्बन्धी, वाणिज्य-व्यापार तथा खेलकूद आदि किसी भी विषयकी खबरोंके सम्पादन आदि कार्योंमें वह कुशल होता है। सब विषयोंकी अच्छी सामान्य शिक्षा तथा प्रशिक्षण और अभ्यासके कारण किसी भी तरहकी खबरोंका, जिसमें पारिभाषिक शब्द आये हों तथा किसी जटिल प्रश्नका वर्णन किया गया हो सम्पादन आसानीसे और बड़ी योग्यताके साथ वह कर सकता है। वह कथानकोंको समाचारोंके ढंगपर सामान्य जनताकी भाषामें, लिख सकता है।

उपसम्पादक अपने इन औजारोंसे सज्जित होकर ही काम शुरू करता है—पेंसिल, पैड और कैंची। उसके कुछ बँधे हुए संकेत होते हैं जिन्हें वह प्रेसकी हिदायतके लिए कापीपर लिखता चलता है। ये संकेत यह सूचित करते हैं कि कथानकमें किस तरहका परिवर्तन संशोधन किया जाय। मुद्रकोंके लिए ये संकेत प्रायः पाण्डुलिपिमें रहते हैं और इनसे समय तथा स्थानकी बचत होती है। कापीके सम्पादनमें कुछ संकेत तो वही प्रयुक्त होते हैं जो प्रूफ पढ़ते समय काममें आते हैं। केवल उनके प्रयोगके ढंगमें अन्तर होता है। उपसम्पादक संशोधन करते समय संकेतोंका प्रयोग पंक्तियोंके भीतर करता है। प्रूफरीडर समस्त संशोधन हाशियेपर करता है और छपी हुई पंक्तियोंमें संशोधन किये जानेवाले स्थानपर सम्बन्धित चिह्न बना देता है।

है पर इस तरह नहीं कि कापी पढी ही न जा सके। अन्तमें कभी कभी वह काटे हुए अशको फिर ज्योंका त्यों बना रहने देता है और उसपर 'स्टेट' लिख देता है।

नये उपसम्पादकको प्राय. ऐसा काम दिया जाता है जिसे कोई भी पसन्द नहीं करता। प्राय उसे मुफस्सिलकी कापी ठीक करनेको दी जाती है। यह काम बडा टेढा-सा होता है। मुफस्सिलके सवाददाता बहुधा अनभ्यस्त और अनुभवहीन होते है। निठल्ले वकील, बेकार व्यापारी तथा अवकाशप्राप्त व्यक्ति जो अच्छे पत्रके साथ अपने नामका सम्बन्ध दिखानेके लिए उत्सुक रहते हैं, सवाददाता बन जाते है। ये लोग समाचारोका विवरण इस तरह लिखते है मानो किसी सभाकी कारवाई विवरण-पुस्तकमे लिखी जा रही हो। जहाँ तहाँ सम्पादककी तरह वे अपनी राय प्रकट करने लगते हैं—अपने कृपापात्रकी प्रशसा और वैरियोकी निन्दा करते हैं। अनुभवशून्य सवाददाताकी अनेक त्रुटियोका सुधार करता है उपसम्पादक। उपसम्पादक ही उनका रक्षक होता है।

इसके बावजूद भी उपसम्पादकको दोषी ठहराया जाता है कि वह सुन्दर कथानकोंको 'हत्या' कर डालता है, निष्ठुरताके साथ उन्हे काट कूटकर रख देता है या 'अग भग' कर देता है। उसे दोष देनेवाले वे ही रिपोर्टर होते हैं जो समाचार लिखनेकी कलासे अनभिज्ञ होते है और जो अपनी लिखी हुई भद्दी वृत्तान्त-गाथाओको बडी सुन्दर रचना मानते है। यदि कोई समाचार या विवरण भद्दे ढगसे लिखा गया हो तो उसका सम्पादन करनेमे सिर खपानेके बजाय नये उपसम्पादकके मनमें उसे अस्वीकार कर देनेकी ही इच्छा होती है।

नहीं। जहाँतक सम्भव होता है वह मूल कथानक बना रहने देता है। एक शब्द इधर या एक वाक्य उधर निकाल देना, एक स्थानसे एक पैरा बिल्कुल हटाकर अन्यत्र कुछ शब्द बढ़ा देना आदि, आदि—यही सब उसका काम है।

ध्यानकर वह एक सरसरी नजर डालता है और उसमें क्या लिखा है यह समझ लेता है। वह देख लेता है कि समाचार प्रेषित करनेवालेने उसका अग्रभाग (लीड) ठिकानेसे लिखा है या नहीं जिसमें पाठकोंके इन प्रश्नों—क्यों कहाँ कैसे कौन क्या कब इत्यादिका—उचित समाधान किया गया हो। वह यह भी देखता है कि अग्रभागमें सबसे पहला स्थान सबसे महत्त्वपूर्ण अंशको दिया गया है या नहीं। स्थानका विकास ठिकानेसे हुआ है या नहीं और मामूली महत्त्वहीन विवरण बिल्कुल अन्तमें ही दिया गया है न।

यहाँ यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि उपसम्पादक समाचार या विवरणका कोई भी महत्त्वपूर्ण अंश अन्तके पैराग्राफमें न रहने देगा, क्योंकि मेक-अपके समय उसके निकाल दिये जानेका खतरा रहता है जब कालमकी लम्बाईके अनुसार मैटरको छाँटनेकी आवश्यकता हो। यदि ऊपरके किसी मुख्य भागमें कोई बात कही गयी हो जो अन्तिम पैरामें होनेके कारण मुख्य मैटरसे निकाल दी गयी हो, तो ऐसे समय बड़ी भद्दी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। पाठक शीर्षक देखकर विवरणमें उसकी तलाश करता है लेकिन उसमें उसकी कोई चर्चा न होनेसे उसे बड़ा आश्चर्य होता है। समाचारपत्रके प्रति उसके हृदयमें अविश्वास उत्पन्न हो जाता है।

सम्पादन इस दृष्टिसे करना पड़ता है कि वह उसके समाचारपत्रमें बरती जानेवाली परम्परा या पद्धतिके अनुरूप हो जाय।

समाचार-संस्थाओं द्वारा प्रेषित रिपोर्टों तथा सूचनाकार्यालयोंसे लिफाफोंमें भरकर भेजी गयी सूचनाओं, विवरणों आदिका प्रयोग सावधानीसे करना चाहिये। ये सब विवरण सभी समाचारपत्रोंमें समान रूपमें ही प्रकाशित होते हैं। यदि इनमेंसे किसीको अपने पत्रके लिए अपना निजी अथवा पृथक् रूप देनेकी इच्छा हो, तो अग्रभागका तथा शीर्षककी पंक्तियोंका ढाँचा बदलकर उसे अपने ढंगसे लिख डालना चाहिये।

पाठक केवल समाचार चाहते हैं—विशुद्ध, बिना मिलावटवाले समाचार—इसलिये उपसम्पादक किसी रिपोर्टर द्वारा संगृहीत समाचार या किसी घटनाके विवरणमेंसे वह अंश सावधानीसे निकाल देता है जिसमें रिपोर्टरने अपनी व्यक्तिगत राय प्रकट की हो। उसे यदि इस बातकी शंका हो कि कुछ तथ्योंको छिपाकर अपने विचार प्रकट किये गये हैं या कुछ बातोंका अत्यधिक या अनुचित महत्त्व दे दिया गया है, तो वह तुरन्त ही इस दोषके परिमार्जनका प्रयत्न करता है। उक्त रिपोर्टरको तुरन्त इस बातकी चेतावनी दे दी जाती है।

कुछ व्यक्तियों तथा संस्थाओंके अपने विज्ञापन-तथा-सूचना-विभाग होते हैं जो समाचारपत्रके समाचारोंवाले स्तम्भोंमें चुपकेसे अपना विज्ञापनयुक्त या प्रचारात्मक विवरण प्रविष्ट करानेकी फिक्रमें रहते हैं। उपसम्पादकको अनायास ही इसकी गन्ध मिल जाती है और वह इन अवाञ्छनीय हरकतोंके सम्बन्धमें तनिक भी दया दिखाना नहीं चाहता।

समाचारोंकी सत्यता ही परम लक्ष्य

समाचारोंकी सत्यता ही उपसम्पादकका परम लक्ष्य है। किसी घटना या वक्तव्यकी विश्वसनीयताके सम्बन्धमें यदि ज़रा-सा भी सन्देह उसके मनमें उत्पन्न हो जाता है तो उसकी जाँच करानेके लिए वह सभी सम्भव उपायोंसे काम लेता है। किसी भी हालतमें वह कोई सन्देहयुक्त

निर्दोष नागरिककी ओर संकेत करता-सा जान पड़े तो उसकी ओरसे हरजानेका दावा किया जा सकता है।

तिथियों और आँकड़ोंका मिलान अच्छी तरह कर लिया जाता है। जहाँ सन्देह होता है, वहाँ उपसम्पादक मूल स्रोतका सहारा लेता है और जाँच करनेके बाद भूल दुरुस्त कर दी जाती है। चतुर रिपोर्टर तिथियाँ तथा संख्याएँ अक्षरोंमें लिख देते हैं। उपसम्पादक उनके चारों तरफ घेरा डाल देते हैं ताकि कम्पोजिटर उनके स्थानपर अंक रख दे।

उपसम्पादक प्रायः साहित्यिक या ऊँचे दर्जेकी भाषाको प्रोत्साहन नहीं देता। पत्रोंमें छपे हुए समाचार, लेख, विवरण आदि अधिकतर ऐसे सामान्य पाठकोंके लिए होते हैं जो अक्सर अपने अपने कामपर — आफिस, दुकान, स्कूल, कालेज आदि — जानेकी जल्दीमें रहते हैं। उनके पास न इतना धैर्य होता है और न समय कि वे किसी वाक्य या शब्द का अर्थ समझनेके लिए कोशके पन्ने उलटनेका कष्ट करें। उपसम्पादक इस तरहके कठिन पारिभाषिक शब्द निकाल देता है और [illegible] पाठकोंके समझने लायक भाषामें रखनेका प्रयत्न करता है। हाँ, भाषामें व्याकरण तथा मुहावरे सम्बन्धी अशुद्धियाँ न रहने पायें, इसका ध्यान वह अवश्य रखता है।

बडा सुन्दर और सर्वांगपूर्ण मालूम पडता है। चतुर उपसम्पादक प्रत्येक कथाको यथोचित रूप देनेके लिए इसी तरह परिश्रम करता है। उसके प्रयत्नोंका परिणाम छपकर निकले हुए अखबारके रूपमे स्पष्ट दिखाई देता है। पाठक उसे अधिकाधिक पसन्द करने लगते है।

कानूनका लिहाज

उपसम्पादकसे समाचारपत्रोंपर लागू होनेवाले कानूनोंकी अच्छी जानकारीकी आशा की जाती है—झूठी बदनामी फैलानेका कानून, अदालतकी अवहेलनाका कानून तथा १९५१ का प्रेस ऐक्ट (चौदहवॉ परिच्छेद देखिये)।

ऐसे वाक्य वह कापीमेसे निकाल देता है जिनसे किसीकी बदनामी होती हो तथा जिनसे देशकी न्याय-व्यवस्थामे अनुचित हस्तक्षेप होता हो। प्रधान उपसम्पादक ऐसा अप्रिय और नग्न सत्य सम्पादकसे सलाह लेकर तभी प्रकाशित होने देता है जब सार्वजनिक हितकी दृष्टिसे ऐसा करना आवश्यक होता है। बुराइयो तथा कुकृत्योंका भण्डाफोड कर सम्पादक अपने पत्रका गौरव बढानेका प्रयत्न करता है और कानूनमे दिये हुए अपवादोंका हवाला देकर अपने कृत्यका औचित्य प्रमाणित करता है।

किसी भी समाचारपत्रके लिए न्याय-व्यवस्थामे बाधा डालकर या न्यायाधीशकी ईमानदारीपर आक्षेप करनेके बाद बच निकलना बहुत मुश्किल होता है। न्यायालयकी अवहेलनाका कानून ही ऐसा है कि उसमे अपराध प्रमाणित हो जानेपर तुरन्त और निश्चित रूपसे दण्ड मिलता है। बचावका सभवत एक ही मार्ग है—बिना किसी शर्तके और बिना मीन-मेखके क्षमायाचना कर लेना। न्यायधीश उसे मजूर करे या न करे, यह उसकी इच्छापर है। यदि किसी सम्पादकसे कई बार ऐसी गलती हो जाती है तो सम्भावना यही है कि क्षमायाचना कर लेनेके बावजूद उसे अविलम्ब अपराधकी सजा मिल जाय। यदि क्षमायाचना जल्दसे जल्द और पूरी सचाईके साथ कर ली जाय तो अक्सर

दण्डसे मुक्ति मिल जाती है या फिर दण्डकी कठोरता बढ़वानेमें सहायता मिलती है।

उपसम्पादक अच्छी तरह जानता है कि मौलिक रचनाओंमें प्रकाशनाधिकार लेखकका रहता है। वह यह भी जानता है कि मौलिकता कुछ विचारोंको अपने ढंगसे संकलित कर प्रकाशित करनेमें है, स्वयं विचारोंमें नहीं जो प्रत्येक व्यक्तिकी सम्पत्ति माने जाते हैं। आलोचना तथा समाचारपत्रके लिए सारांश देते समय मौलिक ग्रन्थों लेखों आदिसे उद्धरण बिना किसी भयके लिये जा सकते हैं। कई फोटो या चित्र यदि किसी सार्वजनिक स्थानमें रखा गया हो तो वह समाचारपत्रमें प्रकाशित किया जा सकता है और जो भाषण किये जाते हैं उनमें भी प्रकाशनाधिकारका कोई झगड़ा नहीं रहता।

पुनर्लेखनका काम

दृष्टिकोणसे लिख डालता है जिसकी ओर अन्य लोगोंका ध्यान ही नहीं गया था। कभी-कभी वह 'आगेकी सम्भावना'को ही अग्रभागमें महत्त्व-का स्थान देता है। मान लीजिये, मूल समाचार किसी पदाधिकारीके पदत्यागका है। उपसम्पादक अब जो समाचार अपने पत्रमें देनेके लिए तैयार करेगा, उसमें उस व्यक्तिका भी नाम दे देगा जिसकी नियुक्ति उक्त पदाधिकारीके रिक्त स्थानपर होनेकी विशेष सम्भावना हो। हाँ, भविष्यके ऐसे अनुमानका प्रयोग वह अपने वृत्तान्तमें न करेगा जिसका खण्डन किये जानेकी आशंका हो।

सहयोगी पत्रोंसे कतरकर लिये गये समाचारोंकी छानबीन सतर्कतासे की जाती है और उन्हें बड़ी सावधानीसे नये ढंगसे लिखकर पत्रमें देनेका प्रयत्न किया जाता है। समाचारको पुनः लिखते समय वह केवल अग्रभाग ही नहीं बदलता वरन सारी कहानी नये सिरेसे लिख डालता है और उसके क्रममें भी परिवर्त्तन कर देता है—नीचेका हिस्सा ऊपर, ऊपरका नीचे। प्रत्येक पैरा, प्रायः प्रत्येक वाक्य, वह नये ढंगसे लिखता है। और इस तरह कहानीको नया रूप देकर उसमें अधिक अच्छी लगने-वाली विशेषता ला देता है। यदि छपा हुआ कोई विवरण लम्बा होता है तो वह उसका तृतीयांश या अर्द्धांश कम कर देता है। वृत्तान्त छोटा हो तो उसमें और बात बढ़ाकर उसका विस्तार कर दिया जाता है। पुनर्लेखन द्वारा मूल समाचारका स्वरूप निश्चित रूपसे अधिक सुन्दर बना दिया जाता है। उसकी शैली और भी हृदयग्राही हो जाती है। उसका रूप निखर-सा उठता है। चीज नयी लगने लगती है, और कभी-कभी उसमें नये तथ्योंका समावेश भी हो जाता है।

भाषापर जिसका अच्छा अधिकार हो और समाचारोंका महत्त्व पहचाननेमें जिसकी बुद्धि प्रखर हो, ऐसा उपसम्पादक यह काम करनेके लिए सबसे अधिक उपयुक्त होता है। अपनी लेखनीके जादूसे वह पुरानी चीजको नया बना सकता है, उसमें नवजीवनका सञ्चार कर सकता है।

उपसम्पादकका वेतन

भारतीय पत्रोंमें उपसम्पादकोंको दिये जानेवाले वेतन-क्रममें कोई समानता नहीं है। कहीं तो अच्छा वेतन दिया जाता है और कहीं बहुत ही कम। अंग्रेजीके पत्रोंमें उनका आरम्भिक वेतन प्रायः १५० से लेकर २५० रुपये मासिक तक होता है। अनुभवी उपसम्पादकको ३०० से ६०० रुपये मासिक तक मिलता है और प्रधान उपसम्पादकका वेतन ५०० से १००० तक होता है। महँगाईका भत्ता अलगसे दिया जाता है।

यह काफी अच्छी स्थितिका चित्र है जो मैंने यहाँ दिया है। मैं ऐसे पत्रोंकी भी चर्चा कर सकता था जो केवल १०० रुपये मासिकपर उपसम्पादक नियुक्त करते हैं। हाँ, हिन्दीके पत्रोंकी स्थिति अवश्य उतनी अच्छी नहीं जितनी अंग्रेजीके पत्रोंकी है। इनमें नये उपसम्पादकोंका वेतन प्रायः ८० रुपये से १२५ तक, पुरानोंका १०० से २५०–३०० तक तथा प्रधान उपसम्पादक या सहायक सम्पादकका वेतन ३५० से ५०० तक होता है।

समाचार-संस्थाओंके उप-सम्पादक

मृत्यु हो जाती है। समाचार-संस्थाके बम्बई-स्थित कार्यालयमें इस घटनाका जो समाचार लिखा जायगा वह समान रूपसे सारे देशके उपयोगके लिए होगा। इसके अग्रभाग और शेष भागकी भाषा ऐसी नहीं रखी जा सकती जो देश भरमें फैले हुए पाठकोंके विभिन्न समूहोंके लिए समान रूपसे उपयुक्त हो। जब यह समाचार उक्त संस्थाके नयी दिल्ली स्थित कार्यालयमें पहुँचता है, तब वहाँ उस समय कार्य करते रहने वाला उपसम्पादक दुर्घटनामें मारे गये दिल्लीके करोड़पतिकी मृत्युको विशेष महत्त्व देते हुए अग्रभागको नये सिरेसे लिख डालता है और इसी तरह मुख्य समाचारका ढाँचा भी ऐसा बना देता है जिससे स्थानीय अंशको अधिक महत्त्व एवं प्राधान्य प्राप्त हो जाय। स्थानीयताका यह पुट चढ़ जानेसे दुर्घटनाका विवरण हजारों पाठकोंके लिए अधिक सार्थक तथा ग्राह्य बन जाता है।

एक और समाचार लीजिये जिसमें, लन्दन, दिसम्बर ३१ की तारीख पड़ी हुई है। इसमें सर जार्ज ब्रोकेनहेडकी मृत्युका उल्लेख है। इन महाशयके सम्बन्धमें यहाँ किसको दिलचस्पी हो सकती है! और ये सज्जन हैं कौन, यह भी तो पता चले। इस समाचारका रद्दी-की टोकरीमें फेंक दिया जाना निश्चित है, किन्तु यदि उपसम्पादकको जानकारी हो और वह मूल समाचारमें इतना और बढ़ा दे कि सर जार्ज ब्रोकेनहेड भारतके एक प्रान्तके पूर्वकालीन गवर्नर थे जिन्होंने सन् १९१७ के भूकम्प तथा बाढ़से पीड़ित लोगोंको सहायता पहुँचानेके लिए अद्वितीय उत्साहसे काम किया था, तो यह समाचार निःसन्देह महत्त्वपूर्ण बन जायगा। समाचार संस्थाका उपसम्पादक किन्हीं निर्देश ग्रन्थोंको उलट पुलट कर समाचारके साथ जार्ज ब्रोकेनहेडकी संक्षिप्त जीवनी भी दे दे तो भारतीय पाठकोंके लिए इसमें सार्थकता आ जायेगी। ब्रोकेनहेडका धुँधला चित्र स्पष्ट हो जायगा और पुरानी स्मृतियाँ जागरित हो उठेंगी।

समाचार-समितिका उपसम्पादक हर एक समाचारपर कड़ी नजर

रखता है और यदि सम्भव होता है तो उसमें स्थानीयताका पुट देनेसे कभी नहीं चूकता। जब कोई समाचार दूरके किसी ऐसे स्थानसे प्राप्त होता है जहाँके सम्बन्धमें भारतीय पाठकोंको शायद ही कुछ मालूम हो तो उसका अर्थ स्पष्ट करनेके लिए वह उसके साथ कुछ व्याख्यात्मक वाक्य या पाद-टिप्पणी जोड़ देता है। यदि समाचार-समितिके उप-सम्पादकोंकी निगाहोंसे बचकर कोई चीज अपूर्ण रूपमें निकल जाती है तो उसे आगे चलकर समाचारपत्रोंके उपसम्पादक अनायास ही सुधार कर सार्थक बना देते हैं।

मासिक या साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओंका सम्पादन

पडता है और सामग्रीकी दृष्टिसे भी उन्हे अपने आपको दैनिक पत्रोंके रविवारवाले संस्करणोंसे अधिक परिपूर्ण और विविध विषयोंके लेखोंसे सुसज्जित रखना पडता है।

लेखप्रधान पत्रिकाएँ फुरसतके समय पढी जाती है, और फुरसतके ही समय उनका रसास्वादन किया जा सकता है। उनकी सामग्री ऐसे समय लिखी और छापी जाती है जब कामकी उतावली नहीं रहती। ऐसी पत्रिकाओंका उपसम्पादक अक्सर कई सप्ताह पहलेसे ही अपने आगामी अकका ढॉचा तैयार कर रखता है। उसके पास पर्याप्त समय होता है। समयकी सीमारेखाका भय उसे नही सताता। उसके पाठक क्या चाहते है, यह वह जानता है और उनकी इच्छित वस्तु वह उन्हें भेंट करता है।

प्रथम पृष्ठ सुन्दर और रग-बिरगा होता है। पाठककी निगाह बर-बस उसकी ओर आकर्षित हो जाती है। भीतरका हिस्सा भी वैसा ही मनोमोहक होता है। लेख-सूची पढनेसे आशा बॅधती है कि अच्छी अच्छी चीजे पढनेको मिलेगी, मनको सुस्वादु भोजन प्राप्त होगा। एक एक विषय बडी सावधानीसे तथा ठीक ढगसे प्रस्तुत किया जाता है। शीर्षक बडे आकर्षक होते है और वे हमारी जिज्ञासाको प्रदीप्त कर देते हैं। समय और स्थलकी आवश्यकताके अनुरूप उन्हें बनानेका श्रेय कलाकारको है। लेख या विषयके ऊपर बडे सुन्दर ढगसे वे सजाये जाते है और उपशीर्षक सामग्रीके बीच-बीचमे लगाये जाते है।

लेख-विषयक पत्रिकाओंमे बहुतसे ग्राफ, नक्शे, हास्यचित्र, छाया चित्र आदि रहते है और उनमेसे कुछ तो पाठ्य-सामग्रीके बीचमे इस तरह सजा दिये जाते है कि देखनेमे बडे भले मालूम होते है। इनमें छपनेवाली कहानियाँ प्राय शुरू होकर एकतारमे समाप्त कर दी जाती है। पाठकको उनका सिलसिला मिलाकर अन्तिमाश ढूढनेकी आवश्यकता नहीं पडती। जितना स्थान उपलब्ध होता है उसीके अनुसार कहानियों का मेल बैठा दिया जाता है या उनमे काट छॉट कर दी जाती है।

उसकी अच्छी तरह समीक्षा की जाती है और उन लोगोंके लाभके लिए जिन्होंने पहली बार प्रसारित किये जाते समय उसे नहीं सुना था, वह संक्षिप्त रूपमें पुनः प्रसारित कर दिया जाता है। समाचारोंका मूल्यांकन करते समय रेडियोके उपसम्पादकको भी उसी तरह सतर्कतासे काम लेना पड़ता है जिस तरह समाचारपत्रके उपसम्पादकको, बल्कि उसे तो उस समय और भी सतर्कता दिखानी पड़ती है जब किसी समाचारका रूप या आकार बदलनेकी अथवा यह निश्चय करनेकी आवश्यकता पड़ती है कि कोई समाचार जो पहले सुनाया जा चुका है, दुबारा या तिबारा भी सुनाया जाय या नहीं। रेडियोका उपसम्पादक अनावश्यक शब्दोंको ही छाँट नहीं देता वरन् कुछ तथ्योंको भी निकाल देता है। समाचारका सार भाग या परमावश्यक अंश वह सुरक्षित रखता है। वह बोलनेकी भाषाका प्रयोग करता है और विराम चिन्ह भी इस दृष्टिसे प्रयुक्त करता है कि अभिभाषक समाचार पढ़ते समय जहाँ आवश्यक हो वहाँ रुक सके और शब्दोंपर जोर दे सके।

भारतीय रेडियो सरकारी संस्था है। इस कारण रेडियोके उपसम्पादक पर एक और जिम्मेदारी आ जाती है। यदि सरकारसे किसी समाचारका सम्बन्ध हो या उसपर उसका प्रभाव पड़ता हो, तो उसे प्रसारित करनेके पूर्व उसकी सचाई आदिकी अच्छी तरह पुष्टि कर लेना उसके लिए आवश्यक है। आल इण्डिया रेडियोका मुख्य समाचार विभाग चौबीसों घण्टे काम करता रहता है, और प्रत्येक पालीमें कमसे कम एक सम्पादक तथा एक उपसम्पादक अवश्य रहता है। प्रेस ट्रस्ट, यूनाइटेड प्रेस तथा रायटरसे और सरकारी स्रोतों तथा आल इण्डिया रेडियोके विशेष संवाददाताओंसे और विदेशी रेडियो सुनकर समाचार इकट्ठे करनेवाले कर्मचारियोंके जरिये प्राप्त होनेवाले समाचारोंका ताँता बराबर लगा रहता है। समाचार-विभाग ही समाचारोंका चुनाव और संकलन करनेके लिए जिम्मेदार होता है। ये चुने हुए समाचार बादमें १६ अन्य दलोंके पास भेज दिये जाते हैं। ये दल आवश्यकता-

नुसार रूप देकर देशके तथा बाहरके विभिन्न भाषा-भाषी क्षेत्रोंके उपयुक्त बनाकर प्रसारित करते हैं।

सबसे महत्त्वपूर्ण समाचार वे हैं जो अंग्रेजी और हिन्दीमें स्वदेशके लिए प्रसारित किये जाते हैं। ये दिनमें चार बार सुनाये जाते हैं, ८ बजे प्रातः, १॥ बजे दोपहरमें, ६ बजे शामको तथा ९ बजे रातमें। दूसरी और चौथी बारके समाचार १५-१५ मिनटके तथा शेष दोनों १०-१० मिनटके होते हैं। १५ मिनटमें रेडियोसे अभिभाषक केवल दो हजार शब्द ही पढ़कर सुना पाता है, जब कि समाचारपत्रके प्रत्येक स्तम्भमें ८०० शब्द होते हैं।

होता है। इसी तरह किसी विशेष भाषावाले क्षेत्र या भौगोलिक इकाइके लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि तैयार करनेकी दृष्टिसे भी समाचारोंका फिरसे लिखा जाना आवश्यक होता है।

समाचारपत्रका उपसम्पादक महत्त्वके अनुसार समाचारोंका प्रदर्शन करता है। रेडियोका उपसम्पादक पढ़े जानेवाले समाचारोंको दूसरे ढंगसे रखता है। प्रथम समाचार तो अवश्य सबसे महत्त्वका होता है किन्तु दूसरा समाचार उसके बादके महत्त्ववाला ही हो, इसका कोई नियम नहीं। रेडियोके उपसम्पादकने यदि मद्रास राज्यके किन्हीं जिलोंमें हुए उपद्रवके समाचारको एक स्थानपर रखा है तो बहुत संभव है कि दुनियाके अन्य हिस्सोंमें हुई वैसी ही घटनाओंका समाचार भी वह इसीके साथ रख दे और इस तरह समाचारोंके रूप या ढंगके अनुसार उनका वर्गीकरण कर दे।

या फिर वह स्वदेशके अन्य समाचार भी उसी सिलसिलेमें दे सकता है जिससे भौगोलिक परम्पराको भंग किये बिना समाचारोंका प्रवाह निर्विघ्न रूपसे जारी रह सके। जिस तरह समाचारपत्रमें प्रकाशित समाचारोंमें विभिन्नता होती है, उसी तरह आकाशवाणी द्वारा प्रसारित समाचारोंमें भी। एक तरहके या मिलते-जुलतेसे समाचार या फिर एक ही क्षेत्रके सब समाचार एक साथ रख दिये जाते हैं और हर बारके प्रसारणमें समाचारोंके प्रायः तीन या चार गुच्छे या समूह होते हैं।

रेडियोका उपसम्पादक कथानकके वे अंश छोड़ देता है जिनके कारण विभिन्न सम्प्रदायों तथा विभिन्न वर्गोंमें परस्पर दुर्भावना भाव उत्पन्न होनेकी सम्भावना हो या जिनसे सरकारकी प्रतिष्ठाकी हानि होती हो अथवा जिनके कारण देशमें प्रचलित स्थितिके सम्बन्धमें गलतफहमी होने या प्रतिकूल प्रभाव पड़नेकी आशंका हो। किसी तरहका सन्देह उत्पन्न होनेपर समाचार-विभाग उच्च अधिकारियोंसे पूछताछ कर समाचारकी पुष्टि करा लेता है। देश और समाजके हितकी रक्षाके

सम्बन्धमें समाचारपत्र भी उत्साहपूर्वक स्वागत करता है किन्तु आल इण्डिया रेडियोकी नीति आवश्यकतासे अधिक सावधान रहनेकी है।

शीर्षकका उपयोग

यह बात सभी स्वीकार करते हैं कि शीर्षक एवं उपशीर्षकका लक्ष्य होता है पाठकको महत्त्वपूर्ण बातोंका निचोड़ देना, समाचारपत्रके रूपको अधिक आकर्षक बनाना तथा उसमें प्रकाशित पाठ्य सामग्रीका विज्ञापन करना।

खण्डो या मचोंवाले* शीर्षक देते हैं जो प्रथम पृष्ठपर दो या दोसे अधिक स्तम्भोंमे फैले रहते है। अन्य सब महत्त्वके समाचारोंपर दो या एक खण्डवाले शीर्षकका प्रयोग होता है, वे भले ही दो स्तम्भमे फैले हो या एकमे। कभी-कभी इस सामान्य नियमका अपवाद भी दिखाई पड सकता है। दिल्लीसे प्रकाशित होनेवाले अंग्रेजी दैनिक 'इण्डियन एक्सप्रेस' ने कुछ नयी बाते पैदा की है, विशेषतया शीर्षक पंक्तियोंके रूप और प्रयोगमे। मुख्य समाचारके साथ तो वह तीन मच शीर्षक देता है जो दो या तीन कालम तक फैले रहते हैं किन्तु और सब महत्त्वपूर्ण समाचारोके ऊपर केवल एक-मच शीर्षक ही रखा जाता है जो तीन कालमका, दो कालमका या एक कालमका भी होता है।

शीर्षक-पंक्तियोंके कारण समाचारपत्रके रूप, छपाई तथा बनाव-सजावमे भिन्नता आ जाती है और इस प्रकार उसकी चमक दमक बढ जाती है। यहाँसे वहाँतक फैले हुए काले-काले अक्षरोंकी छपाईमे उत्पन्न मनको उबा देनेवाली एकरूपताको भग करनेमे उनसे सहायता मिलती है। सडकके उसपार दौडकर बस पकडनेके लिए आतुर हुए पाठककी आँखोंको वे अपनी ओर आकर्षित करती और अखबार खरीदनेके लिए प्रोत्साहित करती है।

अखबारके लिए शीर्षक-पंक्तियाँ शीशा लगी उन खिडकियोका काम देती हैं जिनके भीतर सजाकर रखा हुआ बिक्रीका माल देखकर दर्शकका मन ललचा जाता है और वह उसे खरीदनेको उत्सुक हो उठता है। वे बिक्रीके माल अर्थात् अखबारके लेख, प्रासंगिक वृत्तान्त आदिका विज्ञापन करती हैं।

भारतीय पत्रोंमे प्रकाशित होनेवाले शीर्षकोंमे एकसे लेकर चार खण्डोंवाले शीर्षक होते है। इन शीर्षकखण्डोंको एक दूसरेसे पृथक

---

* शीर्षकमे अक्सर एकसे अधिक भाग या खण्ड होते है, जिन्हे हम मच (डेक) कह सकते है। प्रत्येक मच या खण्डमे एक या एकसे अधिक पंक्तियाँ होती है।

समान अन्तर छोड़ा जाता है। यह अनोखा-सा लगनेवाला शीर्षक 'स्टेट्समेन' तथा 'इण्डियन एक्सप्रेस' के पाठकोंकी नजरोंके सामने प्राय नित्य ही आता रहता है।

अत्यधिक महत्त्ववाले समाचारके ऊपर भारतीय पत्रोंमें प्राय पताका शीर्षक (पृष्ठ-शीर्षक) दिया जाता है। यह मोटे टाइपकी उस पार-रेखाको कहते हैं जो पृष्ठके ऊपरी हिस्सेमें बायें सिरेसे दाहिने सिरेतक पूरी-पूरी फैली रहती है। सबसे महत्त्वके समाचारके लिए यह पंक्ति शीर्षकके प्रथम मच या भागका काम देती है। बड़े और मोटे टाइपमें दिये गये ऐसे शीर्षक पोस्टरमें रख दिये जाते हैं, जिनसे सड़कके किनारे बिकनेवाले पत्रकी बिक्री बढ़ जाती है। सनसनीखेज अखबार इसके लिए ७२ पाइण्ट टाइप (छ लाइन पेका) का प्रयोग करते हैं जो पाठकोंका ध्यान बरबस अपनी ओर खींच लेता है।

भारतीय पत्रोंमें सबसे महत्त्वपूर्ण समाचारका शीर्षक बहुधा तीन चार गावदुम (इनवर्टेड पिरामिड) शीर्षकोंको मिलाकर बनाया जाता है। उपसम्पादक चाहे तो गावदुम शीर्षकके साथ नीचेमें से कोई एक या एकाधिक मच या भाग जोड़कर मुख्य समाचारका शीर्षक बना सकता है—

(क) दायें-बायें पूरी फैली पंक्तियोंवाला शीर्षक (Flush right and left)

(ख) कटि-रेखावाला शीर्षक (Waist Line)

(ग) पार-रेखावाला शीर्षक या पताका शीर्षक (Cross Line or Streamer)

मुख्य समाचारोंके शीर्षक चौड़ाईमें प्राय दो कालमके होते हैं। गावदुम शीर्षककी पहली पंक्ति अक्सर दो कालमकी पूरी चौड़ाई की होती है और दूसरी पंक्ति या तो दोनों तरफ समान स्थान छोड़कर बीचोबीच रखी जाती है या फिर बायें पार्श्वमें दायें पार्श्वकी पूरी चौड़ाई पर उतनी ही जगहमें रखी जाती है जितनी जगहमें अन्य मच

या फोर पैका और शीर्षक गावदुम होगा या ओर किसी तरहका, इत्यादि। कापीका सम्पादन हो चुकनेके बाद ही शीर्षक लिखा या बनाया जाता है। उसे अक्सर अलग कागजपर लिखना पडता है। हॉ, यदि शीर्षक पैका या ग्रेट टाइपमें, विशेषकर १२ या १४ पाइटके टाइपमें हो तो जिस मशीनसे मामूली मैटर कपोज होता है उसीसे शीर्षक भी कम्पोज हो सकता है।❋ अधिक बडे टाइपके शीर्षक या तो किसी दूसरी मशीनकी सहायतासे कम्पोज किये जाते है या फिर उन्हे हाथसे कम्पोज करना पडता है।

टाइप लचीले नही होते—खींचकर या दबाकर उनका आकार हम बढा या घटा नही सकते—और स्तम्भकी चोडाई पहलेसे निश्चित होती है, इसलिए शीर्षक-पक्तियॉ खूब सोच-विचारकर लिखनी पडती है जिससे वे उतनी जगहमे आ जाय जो उनके लिए निश्चित हो। यदि किसी पक्तिमे किसी खास टाइपके बीस अक्षरो (या इकाइयो) की गुञ्जाइश हो तो उपसम्पादक किसी कम्पोजिटरसे यह आशा नहीं कर सकता कि वह उसमें एक इकाईके लिए और जगह कर दे। ऐसा करना किसी भी तरहसे सम्भव नही।

उपसम्पादक जानता है कि शीर्षककी किसी पक्तिमे कितने अक्षर आ सकते है। यदि उसके पास शीर्षक पक्तियो सम्बन्धी नक्शा मोजूद नहीं रहता तो वह समाचारपत्रके पुराने अकोको देखकर अपने लिए स्वय ही एक बना सकता है। इकाइयोंकी गणना करते समय उसे प्रत्येक अक्षरके लिए एक इकाई माननी पडती है—केवल अग्रेजीके दो अक्षरों एम तथा डबलूके लिए ओर डैशके लिए भी डेढ-डेढ इकाइ ग्रहण करनी पडती है। हिन्दीमे त्य, म्ह, त्व, म्म, व्म, ल्य आदि सयुक्ताक्षर इकहरे अक्षरोंसे अधिक स्थान लेते है। पूर्णविराम, अल्प-

---

❋ सब मशीनोंमें इसकी गुञ्जाइश नहीं होती और जहॉं समाचारों का मैटर हाथसे कम्पोज करना पडता है वहॉ तो ग्रेट टाइपके लिए भी अन्य टाइपोंकी तरह अलगसे कम्पोजिंग करनी पडती है।

कही गयी मुख्य बातोंके आधारपर शीर्षक-पंक्तियाँ बनाता है। शीर्षकके पहले मञ्चमें सबसे महत्त्वके प्रसंगका उल्लेख रहता है और उसके बादके मञ्चमें उससे कम महत्त्वकी घटनाओं या बातोंकी ओर संकेत किया जाता है। अक्सर किसी एक शब्द या शब्द-समूहको सबसे ऊपरके मंच (खंड) में प्रथम स्थान मिलना चाहिये। उद्देश्य है तथ्य सामने रखना, जहाँतक सम्भव हो वहाँतक। विशेष महत्त्वकी बातोंका समावेश शीर्षक-पंक्तियोंमें कर लिया जाता है। गोल-मटोल सामान्य शीर्षक दिया जाना लोग पसन्द नहीं करते। अपनी व्यक्तिगत राय प्रकट करना भी निषिद्ध है किन्तु कभी-कभी इसका ध्यान नहीं रहता और इस तरहकी शीर्षक-पंक्तियाँ पत्रोंमें देखनेको मिल ही जाती है जैसे 'पटनामें पुलिसकी अन्धेर गरदी'।

चतुर उपसम्पादक अतिशयोक्ति कभी नहीं करता और जरा सा भी सन्देह होनेपर शीर्षकके सामने प्रश्नका चिह्न लगा देनेसे नहीं हिचकता जैसे 'सुभाष बसु मास्कोमें ?' किन्तु पत्रके किसी एक ही अंकमें यदि कई स्थानोंपर प्रश्नचिह्नका प्रयोग किया जाय तो इससे पाठकोंके मनमें पत्रके प्रति अविश्वासकी भावना उत्पन्न हो सकती है। उपसम्पादक प्रश्नका चिह्न देनेसे बचनेकी भरसक कोशिश करता है। वह उसका प्रयोग तभी करता है जब वह जानता है कि ऐसा करना नितान्त आवश्यक है।

किसी भी समाचार या विवरणमें पाठककी अभिरुचि 'क्या हुआ' यह जाननेमें ही होती है। किसी बातका होना केवल क्रियासे ही प्रकट हो सकता है। इसलिए उपसम्पादक जब कोई शीर्षक गढ़ने लगता है तब वह कोई ऐसा क्रिया शब्द ढूँढता है जिससे समाचारमें वर्णित घटनाका स्पष्ट द्योतन हो सके। कर्मवाच्यकी अपेक्षा वह कर्तृवाच्य क्रियाको अधिक पसन्द करता है। वह मंचकी पंक्तियोंमें मूल शब्द बहुत ही कम दोहराता है। उनके बजाय वह पर्यायवाची शब्दोंका प्रयोग करता है।

सामग्रीको अन्तिम रूप देनेमें उसे सहायता मिलती है और पत्रका मनमोहक एवं पठनीय अंक प्रस्तुत करनेमें वह सफल होता है।

भारतीय समाचारपत्रोंमें मेकअपका तरीका प्रायः नियत होता है, इसलिए सब काम बड़ी आसानीसे चलता रहता है। हाँ, यदि ऐन मौके पर कोई विशेष महत्त्वका समाचार आ जाय तो फिर सम्पादकीय विभागके सम्बद्ध सदस्योंमें परस्पर सलाह मशविरा करना आवश्यक हो जाता है और मेकअपमें हेरफेर करनेका निश्चय पलभरमें करना पड़ता है।

प्रधान उपसम्पादक (सहायक सम्पादक) छापनेका अन्तिम आदेश देनेसे ठीक पहले बँधे हुए पृष्ठके खण्ड प्रूफपर सरसरी निगाह डाल लेता है। उसकी अभ्यस्त निगाहें सहजहीमें जान लेती हैं कि एक ही समाचार दो बार छप गया है, एक समाचारकी शीर्षक-पंक्ति किसी दूसरेपर रख दी गयी है, मुख्य समाचारसे सम्बन्धित प्रधान व्यक्तिका जो चित्र दिया गया है उसका मुँह छपे हुए मैटरकी ओर न होकर पृष्ठके बाहरकी तरफ हो गया है, कहीं पर गलत तारीख दे दी गयी है, किसीके नामके पहले "लाला" के बजाय "साला" छप गया है, इत्यादि। इनपर वह नीली पेन्सिलसे निशान बना देता है। मुद्रक आवश्यकतानुसार संशोधन कर देता है।

ज्यों ही सहायक सम्पादक हुक्म देता है कि 'छापो', मशीन चल पड़ती है और देखते-देखते एक चमत्कार हो जाता है—समाचारपत्र जन्म ग्रहण कर लेता है।

हम जो समाचारपत्र पढ़ते हैं और जिसे इतना ज्यादा पसन्द करते हैं, वह उस अविख्यात वीरकी उपज है जिसे हम 'उपसम्पादक' कहते हैं। उसे कम ही लोग जानते हैं। समाचारपत्रकी सृष्टि, उसके रूप-रंग और कलेवरका श्रेय पर्याप्त मात्रामें उसीको है, और हम उसके आभारी हैं।

अनौपचारिक, यहाँ तक कि घुल-मिलकर की जानेवाली बातचीतकी, शैलीमे लिखा जाना चाहिये।

दोनोंमे जो अन्तर है वह वर्ण्य विषयका नहीं वरन् लिखने या वर्णन करनेके ढंगका है। किसी विषयका वर्णन आप जिस तरहसे करते है, इसीपर यह निर्भर है कि आपकी रचना लेखकी कोटिमे आयगी या 'फीचर' समझी जायगी। फिर भी कुछ विषय ऐसे है जिनपर लेख लिखनेके बजाय 'फीचर' ज्यादा अच्छे लिखे जा सकते है। यदि कोई पत्रकार इस बातका वर्णन करे कि किसी सुप्रसिद्ध व्यक्तिने अपना जन्म-दिवस किस धूमधामसे मनाया, तो उसकी इस कृतिको लेख न कहकर 'फीचर' कहना अधिक उपयुक्त होगा। लेख प्रायः किसी समस्याके, या समस्याके किसी पहलूके, व्यापक अध्ययनका नाम है। बँधी हुई परिपाटीके अनुसार उसका प्रारम्भ किया जाता है, उसी तरह उसका परिपाक होता है और उसीके अनुसार उसकी समाप्ति की जाती है। अवश्य ही 'फीचर'मे भी आदि, मध्य और अन्त होता है किन्तु इसमे कुछ भिन्नता होती है। उसका प्रारम्भ और अन्त अप्रत्याशित ढंगसे या अकस्मात् हो सकता है। वह कोई विशेष परिश्रमसे और विस्तारके साथ तैयार की गयी रचना नहीं होती। थोडे शब्दोमे चित्रण करना ही 'फीचर' की जान है, आत्मा है। अधिक शब्दोंके प्रयोग और इधर-उधरकी बातोंके वर्णनसे उसका मूल्य घट जाता है। 'फीचर' मे एक ही स्थितिका वर्णन किया जाता है। गद्यमे लिखा हुआ वह एक तरहकी गीतिका (लिरिक) है—मनकी एक क्षणिक स्थिति जो शब्दोमे संगृहीत, सन्निहित कर दी गयी हो। लेखमे गम्भीरसे लेकर उल्लासपूर्णतक, दिव्यसे लेकर हास्यास्पदतक कई तरहकी मनःस्थितियोंका वर्णन किया जा सकता है। लेख उस महलके सदृश होता है जिसमे कई कमरे और कई मंजिलें हों लेकिन 'फीचर' की तुलना हम एक साफ-सुथरे, एक कमरेवाले छोटे घरसे ही कर सकते है।

लेख हमे शिक्षा देता है, 'फीचर' हमारा मनोरञ्जन करता है। लेख

आवश्यकतासे अधिक छोटा तथा पढनेमें जी उबा देनेवाला होनेपर भी अच्छा हो सकता है। फीचर मुख्य रूपसे विनोद और आनन्दके लिए लिखा जाता है। लेख जानकारी बढानेवाला होना चाहिये और उसमें तर्क-वितर्कका या उनसे निकलनेवाले नतीजोंका समावेश किया जा सकता है। 'फीचर' में आपको अपनी मनोवृत्ति और अपनी समझके मुताबिक किसी विषयका या व्यक्तिका चित्रण करना पडता है। आप उसकी प्रशंसा कर सकते हैं या उसे नीचे गिरा दे सकते हैं। 'फीचर' लिखनेमें हास्य और कल्पनाका विशेष हाथ रहता है।

यदि कोई पत्रकार भारतमें भिक्षुओंकी समस्यापर लेख लिखना चाहे तो पुस्तकोंमें उसे तथ्य ढूँढ निकालने होंगे, उनका पारस्परिक समन्वय दिखाना होगा, और उन्हें उचित क्रमसे रखते हुए अपना निष्कर्ष निकालना पडेगा। किन्तु उसे यदि किसी एक खास भिक्षुकके जीवनकी दुःखद स्थितिका वर्णन करना हो, तो उसे कुछ समय उसकी संगतिमें बिताना होगा और उससे, उसके मित्रोंसे, उसकी पत्नी और बच्चोंसे, यदि हों तो, भेंट कर पूछ ताछ करनी होगी। जीवनके सम्बन्धमें उसकी अपनी जो जानकारी है और अवलोकन तथा निरीक्षणकी जो शक्ति उसमें है 'फीचर' लिखते समय उसीपर उसे निर्भर होना पडेगा। किन्तु यह कहना भी गलत है कि 'फीचर' के लेखकको अध्ययनकी कोई आवश्यकता नहीं।

विशेषत ऐतिहासिक 'फीचर' लिखते समय हमें निर्देश ग्रन्थोंका प्रयोग करनेकी आवश्यकता पडती है। इसे मैं एक उदाहरण देकर समझाऊँगा। एक बार मैं खुसरूबाग गया जो इलाहाबादका एक ऐतिहासिक बाग है। मैंने एक चोकोर पत्थर देखा जिसपर शाहजादा खुसरू-की दुःखमय कहानी लिखी हुई थी। वह अपने भाई खुर्रम द्वारा कत्ल कर दिया गया था, जो बादमें शाहजहाँके नामसे बादशाह हुआ। मुझे इस कहानीमें, यद्यपि वह दुःखपूर्ण थी, मनुष्यकी अभिरुचि बढानेवाली यथेष्ट सामग्री प्रतीत हुई। इसने मेरी कल्पनाको उभाडा और मेरी

जिज्ञासाको प्रज्वलित कर दिया, जो तभी शान्त हुई जब मैने चुनरुके व्यक्तित्वका पुनर्निर्माण करने योग्य काफी मसाला इकट्ठा कर लिया।

'फीचर' के भेद

भारतीय पत्र-जगत्मे शायद सबसे लोकप्रिय 'फीचर' वह है जिसे हम व्यक्तित्व सम्बन्धी 'फीचर' कह सकते है। भारतमे, अन्य देशोसे अधिक, यह मान्यता है कि जीवन-चरित्रोंके विस्तृत रूपका ही नाम इतिहास है। उन महापुरुषोंको लेकर, जो जनताके मनमें घर कर चुके हैं, 'फीचर' लिखे जाते है, विशेषकर उस समय जब उनके जन्मोत्सव मनानेका अवसर आता है।

जीवन-चरित्रसे मिलते-जुलते 'फीचर' के सिवा एक और प्रकार वह है जिसे हम पौराणिक 'फीचर' कह सकते है। प्राय प्रति वर्ष दशहरा, दिवाली आदि पर्वोंके समय लेखक इन उत्सवोका धार्मिक महत्त्व दिखलाते हुए 'फीचर' लिखते हैं और उन देवी-देवताओंकी कथाओंका वर्णन करते है जिनकी स्मृति इन उत्सवो तथा मेलोंके रूपमे कायम रखी गयी है। पौराणिक 'फीचर' नीरस और निस्तत्त्व-सा लगने लगता है, क्योंकि अक्सर उसमे विचारोंकी एक बँधी हुई परम्पराका ही अनुसरण किया जाता है।

मनुष्यकी दिलचस्पी बढानेवाले 'फीचर' का जन्म अभी कुछ ही वर्ष पहले हुआ है। इसके उद्गम और प्रचारका श्रेय ब्रिटिश तथा अमेरिकन समाचारपत्रोंके प्रभावको है। भारतके लेखक भी अब ऐसे विषयोपर लिखनेका महत्त्व समझने लगे है जैसे 'पॉचवी बार विवाह करनेवाला सौ वर्षका बूढा' या 'शहरकी सडकोंपर ठाटसे चलनेवाला ३६ इंचका बौना।' 'मनुष्यने कुत्तेको काट लिया' जैसी कथाओंने अब अनोखी घटनाओंके महत्त्वकी ओर नये सिरेसे हमारा ध्यान आकृष्ट कर दिया है। 'फीचर' लिखनेवाले लेखक अब ऐसी वारदातो या चीजोंकी खोज-फिक्रमे रहने लगे है जो अलौकिक, विचित्र तथा असाधारण हो।

चित्रमय 'फीचर' भी अब पसन्द किया जाने लगा है। इसमे उन

चित्रोंके सहारे सारा कथानक लिखा जाता है जो एक खास ढंगसे सजा-कर रखे जाते हैं। किन्तु अखबारी कागजकी कमी, ब्लाक तैयार करनेकी सुविधाओंके अभाव तथा मुद्रण कला एवं प्रकाशनकी पिछड़ी हुई स्थितिके कारण चित्रमय 'फीचर' अभी अधिक उन्नति नहीं कर सका है। फिर भी भविष्यमें उसके अधिक विकासकी संभावना है।

कितने ही पत्रों (अंग्रेजी) में, जो विनोद चित्रावली (कामिक स्ट्रिप) छपने लगा है, उसका कोई स्वदेशी प्रतिरूप अभी तक हमारे यहाँ तैयार नहीं हो पाया है।* अंग्रेजीके अखबारोंमें इस तरहके जो चित्र छपते हैं, वे अमेरिकन तथा ब्रिटिश कलाकारों द्वारा तैयार कराकर भेजे जाते हैं। हमारे देशकी उपज न होनेके कारण इस तरहके 'फीचर' भारतीय पाठकोंको विशेष प्रभावित नहीं कर सकते। देशमें इसकी उन्नति या प्रसार तबतक होनेकी सम्भावना नहीं है जबतक कोई भारतीय कलाकार भारतीय संस्कृति तथा भारतीय परिस्थितियोंका ध्यान रखते हुए उसे तैयार नहीं करता। श्री जवाहरलाल नेहरूने इस सम्बन्धमें ठीक ही कहा था और इस मामलेमें उन्होंने अधिकतर भारतीय पाठकोंके हृदयकी भावनाओंका ही द्योतन किया था कि "मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि भारतके कुछ पत्र ऐसी चित्रावली प्रकाशित करते हैं, मैं तो उनसे बचनेके लिए पैसा भी खर्च करनेको तैयार हो जाऊँगा। ये विनोदचित्र मुझे रंजीदा बना देते हैं।"

विनोद चित्रावलीकी अपेक्षा व्यंग्य चित्रोंका भविष्य अधिक उज्ज्वल है। भारतके सुप्रसिद्ध व्यंग्य-चित्रकार शंकरने ब्रिटिश शासनकालमें राजनीतिक दृष्टिसे शासकपर कटाक्ष करने, उनका मजाक उड़ानेके लिए शक्तिशाली शस्त्रके रूपमें व्यंग्य चित्रोंका प्रयोग किया था और सन १९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलनके समय उनके चित्रोंमें घृणा और क्रोधके उस भावका तीव्र प्रदर्शन होता था जो भारतीयोंके हृदयमें

---

*अमृतपत्रिका, युगान्तर, आनन्दबाजार पत्रिका आदिमें इसका श्रीगणेश अब हो गया है।

जिज्ञासाको प्रज्वलित कर दिया, जो तभी शान्त हुई जब मने पुसल्के व्यक्तित्वका पुनर्निर्माण करने योग्य काफी ममाला इकट्ठा कर लिया।

'फीचर' के भेद

भारतीय पत्र-जगत्मे शायद सबसे लोकप्रिय 'फीचर' वह है जिसे हम व्यक्तित्व सम्बन्धी 'फीचर' कह सकते है। भारतने, अन्य देशोसे अधिक, यह मान्यता है कि जीवन-चरित्रोके विस्तृत रूपका ही नाम इतिहास है। उन महापुरुषोको लेकर, जो जनताके मनमे घर कर चुके है, 'फीचर' लिखे जाते है, विशेषकर उस समय जब उनके जन्मोत्सव मनानेका अवसर आता है।

जीवन-चरित्रसे मिलते-जुलते 'फीचर' के सिवा एक ओर प्रकार ह है जिसे हम पौराणिक 'फीचर' कह सकते है। प्राय प्रति वर्ष दशहरा, दिवाली आदि पर्वोके समय लेखक इन उत्सवोका धार्मिक महत्त्व दिखलाते हुए 'फीचर' लिखते हैं और उन देवो देवताओकी कथाओका वर्णन करते हैं जिनकी स्मृति इन उत्सवो तथा मेलोके रूपमे कायम रखी गयी है। पौराणिक 'फीचर' नीरस और निस्तत्त्व-सा लगने लगता है, क्योकि अक्सर उसमे विचारोकी एक बँधी हुई परम्पराका ही अनुसरण किया जाता है।

मनुष्यकी दिलचस्पी बढानेवाले 'फीचर' का जन्म अभी कुछ ही वर्ष पहले हुआ है। इसके उद्गम और प्रचारका श्रेय ब्रिटिश तथा अमेरिकन समाचारपत्रोके प्रभावको है। भारतके लेखक भी अब ऐसे विषयोपर लिखनेका महत्त्व समझने लगे है जैसे 'पॉचवी बार विवाह करनेवाला सौ वर्षका बूढा' या 'शहरकी सडकोपर ठाटसे चलनेवाला ३६ इचका बौना।' 'मनुष्यने कुत्तेको काट लिया' जैसी कथाओने अ। अनोखी घटनाओके महत्त्वकी ओर नये सिरेसे हमारा ध्यान आकृष्ट कर दिया है। 'फीचर' लिखनेवाले लेखक अब ऐसी वारदातो या चीजोकी खोज फिक्रमे रहने लगे है जो अलौकिक, विचित्र तथा असाधारण हो।

चित्रमय 'फीचर' भी अब पसन्द किया जाने लगा है। इसने उन

चित्रोंके सहारे सारा कथानक लिखा जाता है जो एक खास ढंगसे सजाकर रखे जाते हैं। किन्तु अखबारी कागजकी कमी, ब्लाक तैयार करनेकी सुविधाओंके अभाव तथा मुद्रण कला एवं प्रकाशनकी पिछड़ी हुई स्थितिके कारण चित्रमय 'फीचर' अभी अधिक उन्नति नहीं कर सका है। फिर भी भविष्यमें उसके अधिक विकासकी संभावना है।

कितने ही पत्रों (अंग्रेजी) में, जो विनोद चित्रावली (कामिक स्ट्रिप) छपने लगा है, उसका कोई स्वदेशी प्रतिरूप अभी तक हमारे यहाँ तैयार नहीं हो पाया है।* अंग्रेजीके अखबारोंमें इस तरहके जो चित्र छपते हैं, वे अमेरिकन तथा ब्रिटिश कलाकारों द्वारा तैयार कराकर भेजे जाते हैं। हमारे देशकी उपज न होनेके कारण इस तरहके 'फीचर' भारतीय पाठकोंको विशेष प्रभावित नहीं कर सकते। देशमें इसकी उन्नति या प्रसार तबतक होनेकी सम्भावना नहीं है जबतक कोई भारतीय कलाकार भारतीय संस्कृति तथा भारतीय परिस्थितियोंका ध्यान रखते हुए उसे तैयार नहीं करता। श्री जवाहरलाल नेहरूने इस सम्बन्धमें ठीक ही कहा था और इस मामलेमें उन्होंने अधिकतर भारतीय पाठकोंके हृदयकी भावनाओंका ही द्योतन किया था कि 'मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि भारतके कुछ पत्र ऐसी चित्रावली प्रकाशित करते हैं, मैं तो उनसे बचनेके लिए पैसा भी खर्च करनेको तैयार हो जाऊँगा। ये विनोदचित्र मुझे रंजीदा बना देते हैं।'

विनोद चित्रावलीकी अपेक्षा व्यंग्य चित्रोंका भविष्य अधिक उज्ज्वल है। भारतके सुप्रसिद्ध व्यंग्य-चित्रकार शंकरने ब्रिटिश शासनकालमें राजनीतिक दृष्टिसे शासकोंपर कटाक्ष करने, उनका मजाक उड़ानेके लिए शक्तिशाली शस्त्रके रूपमें व्यंग्य चित्रोंका प्रयोग किया था और सन १९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलनके समय उनके चित्रोंमें घृणा और क्रोधके उस भावका तीव्र प्रदर्शन होता था जो भारतीयोंके हृदयमें

* अमृतपत्रिका, युगान्तर, आनन्दबाजार पत्रिका आदिमें इसका श्रीगणेश अब हो गया है।

उत्पन्न हो गया था। उन्होंने 'शकर्स वीकली' नामक एक अलग पत्र निकाला है जिसमें अब सामाजिक कुरीतियों तथा दोषोंका उपहास करनेके लिए भी व्यग्य-चित्रोंका प्रयोग किया जाता है। उनमें वे राज-नीतिक नेताओंकी दुर्बलताओं तथा प्रशासन सम्बन्धी बुराइयोंपर अपनी तूलिकासे तेज रोशनी डालनेका प्रयत्न करते है। उनके व्यग्य-चित्रोंने, जो अब सिण्डिकेट द्वारा अन्य-अन्य पत्रोंमें भी प्रकाशनार्थ भेजे जाने लगे हैं, नये क्षेत्रकी ओर कदम बढाया है जिसमें अधिकाधिक प्रगति होनेकी सम्भावना है।

'फीचर' लिखनेमें बाधाएँ

"फीचर" लिखनेकी कलाका भारतमें अधिक विकास नहीं हो पाता है, इसके कई कारण है। निरक्षरता इसके लिए बहुत हदतक जिम्मे-दार है। मॉग होने पर ही पूर्ति की जाती है। 'फीचर" के ढगपर लिखे गये लेखोकी अधिक मॉग नहीं है, क्योंकि देशके कमसे कम ८५ प्रति-शत लोग समाचारपत्र ही नही पढ सकते।

स्वातन्त्र्य-सग्रामके समय देशके करीब-करीब सभी समाचारपत्र ब्रिटिश राजके विरुद्ध एक आदमीकी तरह सन्नद्ध हो गये थे। उनका अधिक स्थान राष्ट्रीय आन्दोलन सम्बन्धी समाचार, नेताओंके क्रिया-कलाप और अग्रेजी सरकारके दुष्कृत्योंका ब्योरा छापनेमें लग जाता था। राष्ट्रीय मॉग और राष्ट्रकी आकाक्षाओंका समर्थन करनेवाले लेख तथा विवरण प्रतिदिन निकलते थे। उस समय शुद्ध मनोविनोदकी दृष्टिसे लिखे गये लेखोंके लिए गुञ्जाइश ही कहॉ थी?

स्वातन्त्र्य-आन्दोलनके कारण लोग बराबर राजनीतिक विषयोंमें ही, उसीकी चर्चामें व्यस्त रहते थे। इसीसे दैनिक, साप्ताहिक तथा मासिक-पत्रोंमें लेखोंके लिखे जानेको ही स्फूर्ति मिली। "फीचर" लिखनेकी प्रवृत्ति, जिसमें जीवनके रञ्जनकारी अग, मानव पहलूका चित्रण होता है, यहॉके लेखकोंमें बढने नहीं पायी। राजनीतिमें सराबोर रहना ही १५ अगस्त सन् १९४७ तक भारतीय पत्रोंकी विशेषता थी। स्वतन्त्रताकी

भावनाका प्रसार करनेके लिए कितने ही भारतीय नेताओंने साप्ताहिक पत्र निकाले। महात्मा गान्धी 'हरिजन' का सम्पादन करते थे। डाक्टर पट्टाभि सीतारामैया, जो बीसों वर्षतक कांग्रेस कार्यसमितिके सदस्य रहे और जो बादमें मध्यप्रदेशके राज्यपाल बनाये गये, "जन्मभूमि" नामक पत्र निकालते थे। पञ्जाब-केसरी लाला लाजपतरायका भी एक पत्र था—दि "पीपिल" (जनता)। महान् देशभक्त श्रीसुरेन्द्रनाथ बनर्जी "बंगाली' के सम्पादक रहे और श्री सुभाषचन्द्र बसुने "फारवर्ड" नामक पत्र निकाला था।

ये सब पत्र भारतीय राष्ट्रीयताके मुखपत्र थे। उनकी पहली दृष्टि और अन्तिम दृष्टि भी राजनीतिपर ही रहती थी। कला, साहित्य, संगीत और जीवनके रञ्जनकारी अंगकी ओर वे ध्यान नहीं दे सकते थे। अंग्रेजी शासनकी तीव्र आलोचना करने और उन्हें खरी खोटी सुनानेके लिए जुटायी गयी सामग्री देकर ही वे पनप रहे थे। पाठकोंको भी राजनीतिके सिवा अन्य विषयोंकी चर्चाका अभाव खटकता नहीं था, क्योंकि उनका दिल और उनकी आत्मा राष्ट्रीय आन्दोलनमें ही निमग्न थी। ऐसी स्थितिमें "फीचर' लिखनेवाले लेखकोंको भी अपने निर्वाहके लिए 'फीचर' न लिखकर लेख लिखनेकी ओर ही प्रवृत्त होना पड़ा।

एक बार मैंने 'मामूली लोगोंसे मिलिये' शीर्षक एक लेख लिखा। उसमें मैंने एक माली, घरेलू नौकर, मेहतर, खटिक, ताँगेवाला तथा होटलमें काम करनेवाले एक लड़केके बारेमें लिखा। उनमें मैंने फोटो भी दिये थे, फिर भी १२ समाचारपत्रोंने उसे छापनेसे इनकार कर दिया। केवल एकने उसे छापना स्वीकार किया, वह भी तब जब उसके सम्पादकको मेरे इस कथनपर किसी तरह विश्वास हो गया कि "फीचर" लिखनेकी प्रवृत्तिको बढ़ावा देना आवश्यक है—हमेशा बड़े आदमियोंकी ही चर्चा करते रहना तथा मामूली व्यक्तिकी सर्वथा उपेक्षा करना ठीक नहीं।

मैंने पत्रकारीके अपने छोटेसे जीवनमें सैकड़ों लेख लिखे हैं और

देशके दर्जनों पत्रोंमे ये सब प्रकाशित होते रहे है किन्तु जब भी मैंने "फीचर" लिखनेकी चेष्टा की, पत्रोंसे मुझे यथेष्ट प्रोत्साहन नहीं मिला। "फीचर" लिखकर मै बहुत कम ही पैसा प्राप्त कर सका। कभी-कभी तो मेरा वह खर्च भी वसूल नहीं हो सका जो मुझे किसी "फीचर" के तैयार करनेमे उठाना पडा। फिर भी "फीचर" लिखनेकी ओर मेरा विशेष आकर्षण है और मेरा इरादा उसे छोड बैठनेका नहीं है। मेरा विश्वास है कि स्वतन्त्रताके इस उज्ज्वल प्रभातके बाद ज्यो-ज्यो साक्षरता बढती जायगी, पश्चिमके देशोसे अधिकाधिक सम्पर्क होगा तथा फोटोग्राफीका विकास होता जायगा, त्यो-त्यो "फीचर" लिखनेकी प्रवृत्ति भी बढेगी और उनकी अधिक मॉग होने लगेगी। अब म फीचर लिखकर कई पत्रोमें छपवा सकता हूँ। सम्पादकगण अब "फीचर" लिखनेको भी प्रोत्साहन देने लगे है।

भारतीय पत्रकारीका यह अभिशाप है कि हमारे पत्रोका ९० प्रतिशत स्थान लम्बे वक्तव्यो तथा उबा देनेवाले भाषणोंसे ही भर जाता है। उनके कारण पत्र बिलकुल नीरस, एक ही रगके और निष्प्राणसे प्रतीत होने लगते है। उनमें "फीचरो" तथा लेखोके लिए बहुत थोडी जगह बच पाती है। जो हो, लम्बे वक्तव्योको अब काफी काट-छॉटकर छापनेकी प्रवृत्ति बढ रही है जिससे समाचारोको छोड लेखो आदिको भी स्थान दिया सके।

"फीचर" लिखनेवालोंको किसी तरहका पथप्रदर्शन शायद ही कभी प्राप्त होता है। उन्हे अपनी ही आन्तरिक प्रवृत्ति, ज्ञान और अनुभवका भरोसा करना चाहिये। उन्हे 'फीचर' तैयार करनेकी, और लेख लिखनेकी भी, कला या प्रविधि कभी सिखायी नहीं जाती। 'फीचर' लिखनेकी कोई पुरानी परम्परा भी उनके सामने नहा है। इस कलाके कोई अच्छे बढिया उदाहरण भी आसानीसे उपलब्ध नहा, जिनके आदर्शपर वे अपने 'फीचर' तैयार कर सके या जिन्हे देखकर वे आन्तरिक प्रेरणा प्राप्त कर सके। 'फीचर' लिखनेवालोको इस कलाके सम्बन्धमे जो थोडेसे

विचार ज्ञात हो सके है, वे 'लाइफ' तथा 'पिक्चर पोस्ट' जैसे अमेरिकन एव ब्रिटिश पत्रोको यदाकदा पढनेसे सगृहीत किये गये है।

देशी भाषाओके पत्र भी अब 'फीचर' निकालनेमे दिलचस्पी लेने लगे है। वे अभी प्रारम्भिक अवस्थामे ही है। उनमे महिलाओका पृष्ठ, बच्चोका पृष्ठ तथा ऐसे ही अन्य विषय रखे जाने लगे है किन्तु 'फीचर'की आत्मा या मूलभाव उनमे नही आ पाता। 'फीचर' के लिए निर्धारित उनके पृष्ठोमे कितनी ही चीजोकी खिचडी पकायी जाती है—अग्रेजीमे लिखे गये लेखोके अनुवाद, फोटोग्राफ, विनोद चित्रावली तथा व्यग्य चित्र आदि सभी उसमे मनमाने तौरसे ठूॅस दिये जाते है। उनके लेख-फीचरवाले पृष्ठोमे यथेष्ट मनोरञ्जनका अभाव रहता है। फिर भी उनके कारण लम्बे भाषणो तथा नीरस लेखोको पढनेसे ऊब उठनेवाले पाठकको थोडी-सी राहत मिल जाती है। यही बात उन विशेषाङ्को पर लागू होती है जो समाचारपत्रो द्वारा अक्सर (दिवाली, दशहरा, होली, स्वतन्त्रता-दिवस आदिके अवसरो पर) निकाले जाते है। इनमे कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियोसे लेख मॉगकर छाप दिये जाते है और बीच बीचमे दो चार दस चित्र भी इधर उधर रख दिये जाते है। परिणाम यह होता है कि बहुतसे पाठक इन्हे सरसरी तौरसे भी पढनेका प्रयत्न नही करते और इन्हे रद्दी कागजकी टोकरीमे फेक देते है। वे समझ गये है कि ये विशेषाङ्क केवल पैसा कमानेके तरीके है। उनका लक्ष्य, बहुतसे उदाहरणोमे, विज्ञापनदाताओको आनन्दित करना मात्र होता है।

इनके लेखकोंको प्रोत्साहित करते हैं। मैंने एक बार एक मेहतरपर छोटा-सा 'फीचर' लिखा था। केवल 'नेशनल हेरल्ड' ने ही उसे प्रकाशित किया। ऐसे असाधारण विषयपर लिखनेके लिए कुछ लोगोंने पत्र भेजकर मुझे बधाई दी। पाठकोंको इस बातकी विशेष खुशी हुई कि पत्रने मेहतरका चित्र भी प्रकाशित किया जिसमें वह अपनी टोकरी तथा झाड़ू लिये खडा था।

भारतमें लेख तथा 'फीचर' लिखवाकर उन्हें विभिन्न पत्रोंके पास प्रकाशनार्थ भेजनेका काम ठिकानेसे करनेवाली शायद ही कोई संस्था हो। कुछ लोगोंने ऐसी संस्था चलानेका प्रयास किया किन्तु उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली, क्योंकि सुख्यातनामा महत्त्वपूर्ण लोगोंसे लेख प्राप्त करनेमें वे असमर्थ रहे।

भारतमें, जैसा कि पश्चिममें भी होता है, बड़े आदमीके मामूली से लेखको भी उस बढ़िया लेखसे अधिक तरजीह दी जाती है जो ख्याति-अर्जनका प्रयत्न करनेवाले किसी नये लेखक द्वारा लिखा गया हो। ऐसे पत्र थोड़े ही हैं जो 'फीचर' छापते हैं और 'फीचर' लिखनेवाले उनसे भी कम हैं। कुछ समाचार-संस्थाएँ कभी-कभी लेख भी भेज देती हैं किन्तु वे 'फीचर' लिखवाकर पत्रोंमें प्रकाशनार्थ भिजवानेकी व्यवस्था शायद ही कभी करती हों।

'फीचर' कैसे लिखे जायँ

अब प्रश्न यह है कि 'फीचर' तथा लेख कैसे लिखे जायँ। एक अण्डर ग्रेजुएट भी (एफ० ए० पास व्यक्ति) किताबोंकी सहायतासे अच्छा लेख लिख सकता है, यदि वह मेहनती हो तथा अपने विचार अच्छी तरह प्रकट कर सकता हो। किन्तु कोई व्यक्ति 'फीचर' तभी लिख सकता है जब उसकी निरीक्षणशक्ति खास तौरसे प्रबल हो तथा उसे मनुष्यों और वस्तुओंका अच्छा ज्ञान हो। 'फीचर' तैयार करनेकी अपेक्षा लेख लिख डालना अधिक आसान है।

मान लीजिये किसीको जीवन-चरित्र सम्बन्धी अथवा कोई ऐतिहा-

सिक लेख लिखना है। वह पुस्तकालयमे बैठकर बड़े मजेमे ऐसा कर सकता है। किन्तु यदि कोई व्यक्ति किसी मेले या संगीत-सम्मेलन आदि-पर कोई 'फीचर' लिखना चाहे तो उसे दूसरी विधिसे काम लेना होगा। उसके लिए मेलेमे जाकर देखना सुनना या संगीतके कलाकारोसे मिलना आवश्यक है।

यहाँ मै कुछ उदाहरण देता हूँ जिनसे यह बात समझमें आ जायगी कि फीचर कैसे तैयार किया जाय। मै एक बार एक नाईकी दूकानपर गया। वहाँ गांधीजीका एक चित्र (फोटो) लगा हुआ था जिसमे वे बाल बनवाते हुए दिखाये गये थे। फोटोके नीचे महात्माजीने अपने हाथसे कुछ शब्द लिख दिये थे। मुझे लगा कि 'फीचर' लिखनेके लिए यह बहुत ही अच्छा विषय होगा।

मैने नाईको इस बातका विशेष बोध नहीं होने दिया कि उसके पास यह एक बहुमूल्य वस्तु है। मैने उससे यो ही पूछा कि यह चित्र कहाँ कैसे मिला और महात्माजीसे छोटासा प्रमाण-पत्र पानेमे तुम कैसे सफल हुए। उसने बड़ी दिलचस्पीके साथ सारी कहानी मुझे सुनायी। मैने एक एक बात नोट कर ली। उस सर्टिफिकेटके बारेमे मैने उससे प्रश्न किये और उससे जिरह भी की। मैने उससे कुछ समयके लिए फोटो मँगनी देनेके लिए कहा। यद्यपि वह मुझे अच्छी तरह जानता था, फिर भी उसने दो चार घण्टोके लिए भी मुझे फोटो देनेसे इनकार कर दिया। उसे आशंका हुई कि कहीं वह गुम न हो जाय। सहायताके लिए मै उस मुहल्लेके एक अत्यन्त सम्मानित डाक्टरके यहाँ दौड़ा गया। उन्होंने उसे समझाया और फोटो मुझे दे देनेके लिए राजी कर लिया। मैने 'फीचर' मे उसका प्रयोग किया। फीचर तैयार हो जानेपर मैने उसे कई पत्रोंमे भेजवाया। 'बापू और नाई' का शीर्षक देखकर बहुतोंने उसे प्रकाशित किया, क्योंकि गांधीजीकी चर्चा उसमे आती थी और मैने उसमे उनके हृदयकी एक मुख्य विशेषता, उनकी मानवता—छोटेसे छोटे और पथभ्रष्ट व्यक्तिके प्रति भी उनकी दयालुता—का [illegible] चित्रण किया था।

इलाहाबादमे मै वर्षोंतक अक्सर नेहरूजीके निवासस्थान, आनन्द-भवन, जाया करता था। वहाँ मुझे बहुधा अच्छे विषय लिखनेके लिए मिल जाया करते थे। एक दिन प्रधान मन्त्रीकी पुत्री इन्दिरा देवीने मुझे बताया कि उनके परिवारका रसोइया बुधी, जो श्रीमती विजयालक्ष्मी पण्डितके साथ मास्को गया था, रूसके सम्बन्धमे बहुत-सी मनोरञ्जक बाते जानता है। बस, मुझे फीचर लिखनेके लिए अच्छा विषय मिल गया, जिसका शीर्षक मैने रखा 'वह रसोइया जो मास्को गया था'।

मैने उसे अपने घर बुला लिया और बहुत देरतक उससे बातचीत की। उसने बहुत-सी मनोरञ्जक कथाएँ सुनायी और कुछ दिलचस्प घटनाओकी भी चर्चा की। उसने अपने अनुभवोंका जो वर्णन सुनाया, वह बिल्कुल ताजा था और मनोरञ्जक भी, क्योकि राजनीतिक गुत्थियोमे वह दूर था। वह अकिंचन श्रेणीका व्यक्ति था और उसके मनपर राजनीतिक विचारधाराओंकी भूलभुलैयाका कोई प्रभाव नहीं पडा था। उससे बातचीत करनेके बाद मैने जो 'फीचर' तैयार किया वह मेरे लिखे सर्वोत्तम फीचरोमेसे एक था।

नेहरूजी जब भी इलाहाबाद आते हैं, मै मानव हृदयको स्पर्श करनेवाली कथाओ और 'फीचरो' के लिए उनपर नजर रखता हूँ। एक दिन आनन्द-भवनमें बैठे हुए उन्होने थकानका अनुभव-सा करते हुए कहा कि मै रातभर विश्राम करनेके लिए ही अपने नगरमे चला आया हूँ। मुझे लगा कि ठीक तो है, मेरे 'फीचर' का शीर्षक भी यही होगा—'केवल एक रात विश्राम करनेके लिए।' मैने उन्हे अपने नौकरोंसे मिलते और बातचीत करते देखा। बागमे फूल तोडते या पुराने साथियोसे गपशप करते समय भी मै वहाँ था और जब वे अपने निजी कागजपत्र देखने लगे तब भी मै उनकी भावभंगी आदिका अध्ययन करता रहा। इधर उधरके कई अंश गुम्फित कर मैने मानव भावनाओंमे ओतप्रोत एक कहानी लिख डाली जो पढने पर बडी मनोरञ्जक साबित

हुई। बहुतोंने उसे पसन्द किया, क्योंकि राजनीतिज्ञ नेहरूकी अपेक्षा मानव हृदयधारी नेहरूमें लोगोंकी ज्यादा दिलचस्पी है।

कई वर्षोंकी बात है। इलाहाबादमें खेलोंकी प्रतियोगिता होनेवाली थी। उसमें सम्मिलित होनेके लिए टेनिसकी अपूर्व सुन्दरी तारिका, गर्सी मोरैन, जो अपने खेलके लिए उतनी नहीं जितनी अपने चुस्त जरीके हाफ पैण्टके लिए विख्यात है, अपने साथी पैट टॉडके साथ इलाहाबाद आयी। उसने अपनी ओर बहुतोंका ध्यान आकृष्ट किया। सभी पत्रोंने टेनिस खेलनेवाली रमणीके रूपमें उसपर लेख लिखे। मैंने गर्सीके नारीत्वपर अपना ध्यान संकेन्द्रित किया। मैंने अपने 'फीचर' में उसकी नारी सुलभ विशेषताओंका उल्लेख किया और उसने भारतपर जो कविता लिखी थी, वह उससे पढ़वायी। फिर हम लोग मोटरमें बैठकर नगर-परिदर्शनके लिए निकले।

मैं गर्सीको गंगा यमुनाके संगमपर ले गया और जब वह ऊँटके बगलमें खड़ी थी, तब उसका फोटो लिया। उस समय उसकी अमेरिकन मेजबान ऊँटकी पीठपर बैठी थी। यह बड़ी अनोखी-सी तसवीर थी। जब वह एक साड़ी खरीदनेके लिए मेरे साथ बाजारमें पहुँची, तब फिर मैंने उस समय उसका चित्र लिया, जब वह अपने मनकी जरीदार रेशमी साड़ी छाँट रही थी। पैट और गर्सी मेरे साथ आनन्द-भवन गये और वहाँ उनमेंसे एकने गान्धी टोपी पहनकर देखी। उस ऐतिहासिक भवनके भी मैंने उनका फोटो लिया। इस प्रकार लिखनेके लिए जहाँ कोई विषय न था, वहाँ मानो मैंने अपनी दाल-[illegible] एक विषय तैयार कर लिया। जो 'फीचर' लिखा, उसे अत्यधिक सफलता मिली।

कि फीचरका प्रारम्भ कैसे किया जाय, 'फीचर' लिखनेमें कभी-कभी लघु-कथाकी प्रविधि या शैलीका प्रयोग भी सफलता दिलानेमें सहायक होता है।

यदि लेखकमें अच्छी योग्यता हो तो मौजके साथ, धीरे-धीरे आगे बढ़नेकी शैलीसे प्रारम्भ कर बादमें उसे भव्य रूप दिया जा सकता है जिसकी परिसमाप्ति चरम स्थितिपर पहुँच कर हो। इस उपायमें पाठक-का ध्यान बराबर कथानककी ओर ही लगा रहता है, और वह परिणामके सम्बन्धमें तरह-तरहके अनुमान ही करता रहता है, किन्तु यह शैली है बहुत कठिन। एक खास तरहका 'फीचर' लिखनेमें ही इसका प्रयोग किया जा सकता है। 'फीचर' का प्रारम्भ तथा अन्त लच्छेदार या आलंकारिक भाषामें करना हमेशा अच्छा होता है।

अच्छा प्रारम्भ और आनन्दमय अन्त, यही 'फीचर' लिखनेकी सफलताका मुख्य तत्त्व है, किन्तु 'फीचर' लिखनेकी कलापर लिखे गये इस लेखका भी अन्त आलंकारिक भाषाके प्रयोगकी चेष्टाके साथ हो, यह आवश्यक नहीं है।

---

७ विशेष संवाददाताका कार्य

विशेष संवाददाताओंकी चर्चाका आरम्भ कर देनेके साथ ही हम उस क्षेत्रमें प्रवेश करते हैं जो पत्रकारकलाके अभिजात प्रतिनिधियोंका क्षेत्र कहा जा सकता है। डिग्रीधारी अननुभवी नवयुवक, जो समाचार-पत्रमें काम करनेके लिए उत्सुक रहते हैं, सम्पादकोंसे उतने प्रभावित नहीं होते जितने अखबारी दुनियाके इन 'चमकीले-भड़कीले' प्रतिनिधियोंसे। हमारे इस युगमें सम्पादकोंकी प्रसिद्धि कम होती जा रही है मानो वे अपनी शक्तिशाली मेजसे ही जोरोंके साथ चिपके रहने लगे हों, जबकि ये छुटभैये विशेष संवाददातागण चारों तरफ बड़ी शानसे घूमते फिरते तथा उन लोगोंके साथ अत्यन्त परिचितोंकी तरह बातचीत करते नजर आते हैं जो बड़े आदमी हैं और फिलहाल जिन्हें विशेष महत्त्व प्राप्त हो गया है।

इस पेशेकी चमक-दमक उन्हींके चेहरेपर देख पड़ती है, यह तो स्पष्ट है किन्तु इस बाह्य सतहके कारण लोग यह असल बात भूल जाते हैं कि इन विशेष संवाददाताओंको भी ९९ प्रतिशत तो घोर परिश्रम ही करना पड़ता है, केवल एक प्रतिशत आन्तरिक प्रेरणासे काम चलता है। फिर भी, जैसा कि सर फिलिप गिब्जने कहा है 'पत्रकारीमें सबसे उत्कृष्ट तथा सबसे सुहावना जीवन विशेष संवाददाताका ही होता है, क्योंकि उसे दूसरोंके खर्चपर जीवनका बहुत बड़ा भाग देखनेका अवसर मिलता है और यह बड़े कामकी चीज है।'

पत्रकारोंके झुण्डमेंसे हमें एक कठिन आदमी (इस कामके लिए) चुन लेना है। अभी हमारे देशमें इनेगिने ही विशेष संवाददाता देख पड़ते हैं, क्योंकि समाचारोंके लिए हम समाचार समितियोंपर बहुत ज्यादा निर्भर रहते हैं। यद्यपि वह प्रायः रिपोर्टरोंकी ही श्रेणीमें आता है, फिर

भी अपने कामसे चारों तरफ घूमते रहनेके उसके पुराने दिन (जब उसे रिपोर्ट लेने कचहरी या सरकारी सूचनाकार्यालय, आदिको जाना पड़ता था), बहुत पीछे रह जाते हैं।

अब कोई विशेष जिम्मेदारीका काम ही उसे सौंपा जाता है। उसे बहुत कुछ आजादी रहती है और रुपया खर्च करनेकी पर्याप्त सुविधा भी। अक्सर उससे तथा पत्रके सम्पादकसे महीनों देखा देखी नहीं हो पाती और इस तरह वह अपने काममें खुद-मुख्तार-सा रहता है। समाज तथा सरकार, दोनोंको उसका विशेष ध्यान रखना पड़ता है, क्योंकि उसमें उनकी सेवा करनेकी सामर्थ्य रहती है और खुलेआम उनका तमाशा बनानेकी भी।

भारतीय संविधानमें समाचारपत्रोंको अन्य सब उद्योगों, वृत्तियों तथा रोजगारोंसे पृथक् रखा गया है और उन्हें लिखने तथा मत प्रकट करनेकी स्वतन्त्रताका निश्चित आश्वासन दिया गया है यद्यपि उतना पूर्ण और पक्का नहीं जितना अमेरिकाके संविधानमें है। संविधानकी इस विशेष अनुकम्पाके कारण विशेष संवाददाताको संसदीय सदस्योंके बहुतसे अधिकार प्राप्त होते हैं—सार्वजनिक समारोहोंमें बैठनेका विशेष स्थान, सचिवालयोंमें प्रवेशकी सुविधा, रेल्यात्रा सम्बन्धी रियायत, निवासकी सुविधा, प्रधान मन्त्रीसे (या मुख्य मन्त्रियों आदिसे) मिलकर प्रश्न करने और उनका उत्तर पानेका अधिकार। सम्भवत इन्हीं सब बातोंके कारण जेम्स गोरडन बेनेटने विशेष संवाददाताको "आधा राजदूत तथा आधा गुप्तचर" कहा था। उसे संसदके सदस्यसे भी अधिक स्वतन्त्रता रहती है क्योंकि उसकी निष्ठा किसी राजनीतिक दलके प्रति न होकर सारे समाजके प्रति होती है।

उसे जो इतना महत्त्व प्राप्त है, उसका कारण यह है कि लोकतन्त्र-प्रणालीमें लोगोंके सामने सब तथ्य ही नहीं रहने चाहिये वरन् सब दृष्टिकोण तथा (किसी धारा, मजमून आदिके) विभिन्न व्यक्तियों द्वारा किये गये सब अर्थ भी होने चाहिये, तभी वे सार्वजनिक हितके मामलोंमें या

राष्ट्रीय अथवा प्रान्तीय प्रश्नोंके सम्बन्धमें समुचित निर्णय कर सकेंगे। ऐसी जानकारी प्रसारित करनेका एक बड़ा साधन विशेष संवाददाता ही है। कितने ही देशोंमें उसने केवल उस महत्त्वपूर्ण कार्यके कारण जो वह करता है, राष्ट्रीय पदानुक्रममें काफी ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया है। क्या हुआ है, यह तो वह बतलाता ही है, किन्तु आगे क्या होनेकी सम्भावना है, यह भी जो वह बतलाता है, उसका अधिक महत्त्व है। वह सूचित भी करता है और चेतावनी भी देता है। उसके विवरणमें भी घटनाएँ तो वही रहती हैं जो संवाद-समितियों द्वारा प्रेषित समाचारोंमें रहती हैं किन्तु उनका रुख या झुकाव दिखलाना उसका अपना काम है जो केवल उसीके लिए सुरक्षित है। वह चाहे तो किसी बातके सार्वजनिक रूपमें प्रकट किये जानेके पहले ही अपने मनके घोड़े दौड़ा सकता है और अटकलबाजियोंके कनकौवे उड़ा सकता है।

आर्थिक कठिनाइयोंके कारण भारतके बहुतसे पत्र केवल सरकारसे प्राप्त सूचनाओं या विज्ञप्तियोंके और संवाद-समितियोंके समाचारोंपर निर्भर रहते हैं। शहरोंके छोटे अखबारवाले तो त्वरालिपिमें लिखनेवाले लेखक नियुक्त कर लेते हैं जो आल इंडिया रेडियोसे सुनकर समाचार लिख डालते हैं और इस प्रकार उन्हें समाचार समितियोंके पीछे भी अपना खर्च नहीं करना पड़ता। सारा खेल पैसेका है और विशेष संवाददाता रखनेमें खर्च बहुत अधिक पड़ता है।

किन्तु विशेष संवाददाता, समाचार समितिके आदमीसे या रेडियोके रिपोर्टरसे—क्योंकि भारतमें रेडियोपर सरकारका एकाधिकार है—अथवा सरकारी प्रवक्तासे अधिक स्वतन्त्रतापूर्वक खबरें और विवरण भेज सकता है। वह कुछ मामलों तथा आन्दोलनोंका समर्थन कर सकता है और किसी बड़े आदमीको, उसकी पोल खोलकर, नीचे गिरा दे सकता है। वह लम्बे चौड़े शब्दोंमें किसीकी प्रशंसा कर सकता है, क्योंकि इसकी अधिकतर जिम्मेदारी उसीके ऊपर रहती है। वह जो कुछ भेजता है, उससे पता चल जाता है कि उक्त समाचार कहाँसे प्राप्त हुआ, उसकी

सामग्री पहचानी जा सकती है, इसलिए पत्रका सम्पादक अन्य प्रेषकों-की अपेक्षा उसके लिए अधिक जोखिम उठानेको तैयार रहता है।

भारतमें वह एक काम और करता है। वह उस समाचार या घटना-की भूमिका प्रस्तुत कर देता है जिसके बारेमें वह जानता है कि सवाद-समिति द्वारा इसका पूरा विवरण भेज ही दिया जायगा। उसके भूमिका के रूपमें लिखे गये अनुच्छेदों (पैराग्राफ) के कारण, जिनमें अशत साराश और अशत टीका-टिप्पणी रहती है, सवाद-समिति द्वारा प्रेषित कोई भी रिपोर्ट, जो इसीके बाद छापी जाती है अधिक आसानीसे पढी और समझी जा सकती है, भले ही वह कई टुकडोमें और असम्बद्ध ढगसे क्यों न भेजी गयी हो।

पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने तथा अर्थापनका कार्य

अर्थ स्पष्ट करनेका जो अधिक बडा काम वह करता है, उसका यह एक छोटा अशमात्र है। पृष्ठभूमि सम्बन्धी जो सामग्री ढूँढ-ढाँडकर वह भेजता है, उससे कोई भी वृत्तान्त अच्छी तरह समझमें आने लायक बन जाता है, इसलिए उसकी रिपोर्ट अलग पडे हुए फलकी तरह नहीं, वरन् भूमिमें मजबूतीसे जमी हुई जडोवाले वृक्षकी शाखापर लगे हुए फलके सदृश देख पडती है। यही उसका मुख्य काम है। विशेष सवाददाताने इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र तथा साहित्यमें जैसी शिक्षा हासिलकी हो, उसीके अनुपातमें उसे इस कार्य में सफलता मिल सकती है। प्रत्येक विषयका पण्डित होना उसके लिए आवश्यक नहीं है किन्तु इन विषयोंके जाने-माने हुए साहित्यसे परिचित होना उसके लिए आवश्यक है।

सक्षेपमें, समाचार समितिके, रेडियोके* और सरकारके किसी कर्म-चारीके विपरीत, विशेष सवाददाताको अपने विवरणों, वृत्तान्तों आदिमें अपना व्यक्तित्व प्रकट करनेकी पूरी स्वतन्त्रता है, विशेषकर उस समय

* जिन देशोंमें रेडियोका सञ्चालन गैर-सरकारी सस्थाओंके हाथमें है, जैसे ब्रिटेनमें, वहाँकी बात दूसरी है, क्योंकि वहाँ रेडियोपर भाषण करनेवाले आलोचक स्वतन्त्रतापूर्वक अपना निजी मत प्रकट कर सकते हैं।

जब उसकी प्रेषित वस्तुके ऊपर उसका नाम भी छपा रहता है। नाम न देनेकी प्रथा ब्रिटेनकी है किन्तु भारत अब धीरे धीरे इसके बाहर होता जा रहा है।

पूर्ववर्त्ती कारणोंके साथ घटनाओंका निकट सम्बन्ध दिखलाने और उनका भावी आशय पहलेसे बतला देनेकी निपुणता, तथा घटित घटनाओंको घटना परम्परामें इस तरह उचित स्थानपर बठा देनेकी योग्यता जिससे पाठकके मानसपटलपर पूरी तसवीर खिंच जाय अनुभव एव ऊपरी ज्ञानसे नहीं प्राप्त की जा सकती। पूरी तसवीर प्रस्तुत किये बिना भी समाचार सनसनीखेज हो सकता है किन्तु वह निरर्थक-सा लगेगा।

विशेष संवाददाता एक तरहका ऐसा स्तम्भ लेखक है जो सब तरहके

निवेदन

पृष्ठ १४५ पर १० वीं तथा ११ वीं पंक्ति में "विशेष संवाददाता समाचार भेजता है" के स्थानपर ये शब्द रख दीजिये—

विशेष संवाददाता एक तरहका ऐसा स्तम्भ-लेखक है जो किसी एक ही बँधे हुए शीर्षकके अन्तर्गत नहीं लिखा करता और जिसे बिना किसी समाचारके आधारपर ही अपने स्तम्भ या विवरणकी रचना करनी पड़ती है—सं०

एक तरहका सम्पर्क-घटक, भी होता है। ऐसे सवाददाताओंको अपने सम्पादकोंके आदेशसे घटना-प्रवाह सूचित करनेवाले ऐसे विवरण या कथानक भी भेजने पडते है जिनके आधारपर सम्पादकीय लेख तथा टिप्पणियाँ लिखकर किसी विषयकी जोरदार चर्चा की जा सके।

सामान्यत. कोई भी भारतीय पत्र अपने विशेष सवाददाताको देशके अन्य पत्रोमे लिखनेकी अनुमति नही देता किन्तु उसे विदेशी पत्रोका प्रतिनिधित्व करने देनेमे आपत्ति नही की जाती, बहुधा यह गौरवकी बात समझी जाती है। 'टाइम्ज ऑफ इण्डिया' तथा स्टेट्समैन' मे ऐसे कितने ही पत्रकार काम करते है जिनके सम्बन्ध ब्रिटिश पत्रोके साथ भी हैं और 'अमृतबाजार पत्रिका' तथा हिन्दू' मे ऐसे आदमी है जो इनके सिवा अमेरिकन पत्रोके भी प्रतिनिधि है। जो हो, मोटे हिसाबसे तो पश्चिमके बडे-बड़े दैनिक पत्र अपने ही देशके व्यक्तियोको विशेष सवाद- दाता बनाते है और ऐसा बहुत ही कम होता है कि कोई भारतीय उनके कामके लायक समझा जाय। इसके विपरीत हिन्दुस्तान टाइम्ज' ब्रिटिश तथा अमेरिकन पत्रकारोको काहिरा, लन्दन तथा न्यूयार्क जैसे महत्त्व-पूर्ण स्थानोपर भी अपना विशेष प्रतिनिधि नियुक्त करता है।

समाचारपत्रोंमे काम करनेवाले पत्रकारोमे यह प्रवृत्ति बढ रही है कि विशुद्ध (प्यूर) समाचार दिया जाय, जो तथ्य हो वह निभाकर अपने प्रकाशित किया जाय, यद्यपि पाठकके मनमे अब भी ऐसे समाचार या वृत्तान्त पढनेकी भूख रहती है जो विशेष दृष्टिकोणसे तथा नमक-मिर्च लगाकर लिखे गये हो। विशेष सवाददाताओंको अभीतक जो छूट मिली हुई है, उसे पत्रके पाठक पसन्द करते है किन्तु इसमे उन पत्रकारोंको माना ईर्ष्या होती है जिन्हे घटनाओ आदिका विशुद्ध विवरण देनेके सिवा और कुछ लिखनेकी आजादी नही है। जो हो, पाठकगण किसी विषयका ... या अभिप्राय समझनेको ही अधिक उत्सुक रहते है, आँकडोकी सूची पढनेको नहीं, विशेषकर विज्ञान और शिल्पकी उन्नतिके इस जटिल युगमे

जब प्रायः प्रत्येक विषयका अर्थ समझनेके लिए कितने ही क्लिष्ट और अप्रचलित शब्दोंकी जानकारीका होना आवश्यक होता है।

उन्हें अपने तथा विशेषज्ञोंके बीच मध्यस्थकी आवश्यकता होती है। विशेष संवाददाताओं द्वारा प्रस्तुत की जानेवाली सामग्री इसीकी पूर्ति करती है। यह ठीक है कि विशेष संवाददाता जो कुछ लिखे उसके लिए कोई वास्तविक, ठोस आधार होना चाहिये किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वह सब नैतिक धारणाओं या विश्वासोंका परित्याग कर दे। अपनेसे विरुद्ध पक्षकी भी बात समझनेकी क्षमता उसमें होनी चाहिये और यदि अपना विवरण पूरा करनेके लिए आवश्यक हो तो उचित ढंगसे उसका समावेश करनेके लिए भी तैयार रहना चाहिये किन्तु इसका यह आशय नहीं कि उसे जो दृष्टिकोण उचित जान पड़े उसे वह दृढ़ता पूर्वक सामने न रखे।

एक तरहका सम्पर्क-घटक, भी होता है। ऐसे सवाददाताओंको अपने सम्पादकोंके आदेशसे घटना-प्रवाह सूचित करनेवाले ऐसे विवरण या कथानक भी भेजने पड़ते हैं जिनके आधारपर सम्पादकीय लेख तथा टिप्पणियाँ लिखकर किसी विषयकी जोरदार चर्चा की जा सके।

सामान्यत कोई भी भारतीय पत्र अपने विशेष सवाददाताको देशके अन्य पत्रोंमे लिखनेकी अनुमति नहीं देता किन्तु उसे विदेशी पत्रोंका प्रतिनिधित्व करने देनेमें आपत्ति नहीं की जाती, बहुधा यह गौरवकी बात समझी जाती है। 'टाइम्ज ऑफ इण्डिया' तथा स्टेट्समैन' में ऐसे कितने ही पत्रकार काम करते हैं जिनके सम्बन्ध ब्रिटिश पत्रोंके साथ भी है और 'अमृतबाजार पत्रिका' तथा हिन्दू' मे ऐसे आदमी हैं जो इनके सिवा अमेरिकन पत्रोंके भी प्रतिनिधि है। जो हो, मोटे हिसाबसे तो पश्चिमके बड़े-बड़े दैनिक पत्र अपने ही देशके व्यक्तियोंको विशेष सवाद- दाता बनाते हैं और ऐसा बहुत ही कम होता है कि कोई भारतीय उनके कामके लायक समझा जाय। इसके विपरीत हिन्दुस्तान टाइम्ज' ब्रिटिश तथा अमेरिकन पत्रकारोंको काहिरा, लन्दन तथा न्यूयार्क जैसे महत्त्व पूर्ण स्थानोंपर भी अपना विशेष प्रतिनिधि नियुक्त करता है।

समाचारपत्रोंमे काम करनेवाले पत्रकारोंमे यह प्रवृत्ति बढ रही है कि विशुद्ध (प्यूर) समाचार दिया जाय, जो तथ्य हो वह निभीक रूपसे प्रकाशित किया जाय, यद्यपि पाठकके मनमे अब भी ऐसे समाचार या वृत्तान्त पढनेकी भूख रहती है जो विशेष दृष्टिकोणसे तथा नमक-मिर्च लगाकर लिखे गये हों। विशेष सवाददाताओंको अभीतक जो छूट मिली हुई है, उसे पत्रके पाठक पसन्द करते है किन्तु इससे उन पत्रकारोंको मानो ईर्ष्या होती है जिन्हें घटनाओं आदिका विशुद्ध विवरण देनेके सिवा और कुछ लिखनेकी आजादी नहीं है। जो हो, पाठकगण किसी विषयका अर्थ या अभिप्राय समझनेको ही अधिक उत्सुक रहते है, आँकड़ोंकी सूची पढनेको नहीं, विशेषकर विज्ञान और शिल्पकी उन्नतिके इस जटिल युगमें

जब प्रायः प्रत्येक विषयका अर्थ समझनेके लिए कितने ही क्लिष्ट और अप्रचलित शब्दोंकी जानकारीका होना आवश्यक होता है।

उन्हें अपने तथा विशेषज्ञोंके बीच मध्यस्थकी आवश्यकता होती है। विशेष संवाददाताओं द्वारा प्रस्तुत की जानेवाली सामग्री इसकी पूर्ति करती है। यह ठीक है कि विशेष संवाददाता जो कुछ लिखे उसके लिए कोई वास्तविक, ठोस आधार होना चाहिये किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वह सब नैतिक धारणाओं या विश्वासोंका परित्याग कर दे। अपनेसे विरुद्ध पक्षकी भी बात समझनेकी क्षमता उसमें होनी चाहिए और यदि अपना विवरण पूरा करनेके लिए आवश्यक हो तो उचित ढंगसे उसका समावेश करनेके लिए भी तैयार रहना चाहिये किन्तु इसका यह आशय नहीं कि वह जो दृष्टिकोण उचित मानता हो उसे दृढ़तापूर्वक सामने न रखे।

सवाददाताके कामका जो ढर्रा प्रचलित किया उससे हमारे कितने ही प्रबन्ध-सम्पादक भ्रममे पड़े रह गये—उन्होंने युगकी इस आवश्यकताकी ओर ध्यान नहीं दिया कि यह काम ऐसे पत्रकारोंको सौंपा जाय जो अपने भाव प्रकट करनेमे सुचतुर हों और जिन्होंने यथेष्ट उच्च शिक्षा प्राप्त की हो।

अमेरिका और ब्रिटेनके समाचारपत्र जितनी जल्दी यह बात समझ गये कि केवल शीघ्रलिपि तथा टाइपिंग जाननेवाले व्यक्तिसे यह काम नहीं लिया जा सकता, उतनी जल्दी भारतीय पत्र नहीं समझ पा रहे है। हमारे देशमें जो परम्परा चल पडती है, वह बडी देरमे ही टूटती है। भारत सरकारकी राजधानीमे पत्रोंके जो 'विशेष सवाददाता' नियुक्त हैं, उनमेंसे कितने ही बिलकुल मामूली ढंगके हैं, यद्यपि कुछ उच्च योग्यता वाले भी है और इनकी सख्या धीरे-धीरे बढ रही है। ये लोग भाषणोंका तथा स्थानीय घटनाओंकी प्राय वैसी ही रिपोर्ट भेज देते हैं जैसी समाचार-समितियों द्वारा भेजी जाती है। यह पिष्टपेषण मात्र है जिससे विशेष सवाददाताके विवरणमें कोई 'विशेषत्व' नहीं रह जाता।

अमेरिका जैसे देशमे भाषण ज्योंके त्यों लिखनेके लिए अलग व्यक्ति नियुक्त रहते हैं। उसके लिए ऐसी पृष्ठभूमि तैयार करना विशेष सवाददाताओंका काम है जिससे वृत्तान्त बिलकुल ताजा प्रतीत हो, उसमे अपना निरालापन हो तथा पाठकका ध्यान अपनी ओर खींचनेकी शक्ति हो। अपने पत्रके लिए स्वय प्राप्त कर कोई समाचार जल्दीसे जल्दी भेज देनेका आज उतना महत्त्व नहीं है जितना उसे प्रस्तुत करनेके अपने निराले ढंगका। विशेष सवाददाताको एक तरहका कहानी लेखक या निराश उपन्यास-लेखक-सा बनना पड़ता है जिसमे जोरदार भाषामे किसी चीजका वर्णन कर ऐसा वातावरण प्रस्तुत करनेकी क्षमता हो जिससे प्रभावित होकर पाठक यह अनुभव करे, मानो वह स्वय प्रत्यक्षदर्शी रहा हो। ठीक-ठीक जो कुछ कहा गया या जो कुछ घटित हुआ हो, विशेष सवाददाता उससे आगे बढ जाता है, वह दुबारा उस ढंगकी सृष्टि करता है।

इतना होते हुए भी समाचारों तथा विवरणोंका भेजनेवाला कोई भी व्यक्ति तबतक ख्याति प्राप्त नहीं कर सकता जबतक वह प्रधान कार्यालयमें बैठे हुए किसी काल्पनिक सम्पादकका ख्याल रखकर काम नहीं करता। कोई वृत्तान्त छपनेमें कैसा लगता है, यह जितना महत्त्वपूर्ण है उतना ही यह कि वह लिखा किस तरहसे गया है। हमारे देशके बहुतसे सम्पादकोंको यह बात अभी सीखनी ही है कि प्रथम रूटर संवाद-समितियों द्वारा भेजे गये लम्बे चौड़े विवरण छापनेमें अधिक महत्त्व उन वर्णनात्मक तथा स्थितिका रहस्य समझानेवाले चन्द अनुच्छेदोंको है जिन्हें उनके विशेष संवाददाताने प्रेषित किया हो। समाचार-समितिके विवरण तो अन्य प्रतिद्वन्द्वी समाचारपत्र भी छापते हैं और उनमें सचाई का लिहाज तो रहता है किन्तु ध्यान आकृष्ट करनेकी क्षमता नहीं होती।

विशेष प्रतिनिधि

हमने विशेष संवाददाताके लक्षण बता दिये और यह भी देख लिया कि वह रिपोर्टरो, सम्पादको, संवाद-समितिके आदमियो, रेडियोके आलोचको तथा स्तम्भ-लेखकोसे भिन्न होता है। उसका विशेपत्व कहाँ शुरू होता है, यह हमने देख लिया। किन्तु अभीतक हमने समूचे वर्गका वर्णन किया है पर अब हम देखेंगे कि उनके भेदो या प्रकारोमे क्या अन्तर होता है।

विशेष संवाददाताओंका ही एक भेद 'विशेष प्रतिनिधि' भी होता है और यह भारतमे प्राय नियमित रूपसे प्रचलित है। सन् १८९९ मे लार्ड कर्जनके वाइसराय बनकर आनेके बादसे यहाँके प्रमुख दैनिक पत्रोंका रिवाज-सा चल पडा कि गर्मियोमे जब कभी भारत सरकारका कार्यालय कलकत्तेसे हटकर शिमलेमें चला जाता था, तब प्रभावशाली और उच्चाधिकार-सम्पन्न व्यक्ति उनके प्रतिनिधिके रूपमे वहाँ नियुक्त कर दिये जाते थे।

यह रिवाज चल पडनेका कारण यह था कि उस समय दिल्लीके क्षेत्रमें कोई भी प्रभाव-सम्पन्न दैनिक पत्र नही था। जो पत्र सबसे निकट पडता था, वह था लाहौरका 'सिविल एण्ड मिलिटरी गजट'। मद्रास, बम्बई और कलकत्तेके बडे बडे समाचारपत्र शिमलेमे केवल समाचार प्रेपकोकी नियुक्तिसे सन्तुष्ट न थे। वे उस महानगरीमे अपने प्रतिनिधि या 'एलची' (राजनीतिक दूत) भी रखना चाहते थे। इनकी सहायतासे बहुत सी भीतरी जानकारी ही प्राप्त नही की जा सकती थी वरन् कुछ रियायतें तथा सुविधाएँ पानेके लिए भी प्रयत्न किया जा सकता था।

इन उद्देश्योकी पूर्त्तिके लिए ऐसे व्यक्तियोकी आवश्यकता थी जो वाइसराय-भवनमे तथा सचिवालयमें आसानीसे प्रवेश पा सकते थे। पायोनियर (इलाहाबाद) के श्री होवर्ड हेन्समैन, केवल अपने पत्रके लिए, उच्चाधिकारियोसे मिलकर प्रश्नोत्तर द्वारा हालचाल जान लेनेवाले प्रतिनिधिके रूपमे शीघ्र ही प्रसिद्ध हो गये। विशेष प्रतिनिधियोंके इस

सुवर्ण-युगमें हमें केवल अंग्रेजोंके ही नाम उपलब्ध होते हैं—सर एडवर्ड जे० बक (इंग्लिशमैनके), एवरार्ड कोट्स (स्टेट्समैनके), तथा टल्लस (इण्डियन डेली न्यूसके)। वाइसराय भवनमें प्रवेश हो सकनेसे सब काम बन जाता था और यह प्रवेश केवल 'शासन करनेवाली जाति' के लिए ही सुलभ था। (इस क्षितिजपर उदय होनेवाले सबसे पहले भारतीय नक्षत्र थे श्री के० सी० राय तथा श्री यू० एन० सेन)। समाचार प्राप्त करनेके सिवा ये एक तरहके 'प्रभाव डालनेवाले' थे, बादके दिनोंमें जो 'लाबीइस्ट' याने सभाकक्षमें जाकर पर्देकी जानकारी प्राप्त करनेवाले कहे जाने लगे। सम्पर्क होते रहनेसे कुछ टेक इत्यादि मिल जाते थे और सामाजिक दावतों इत्यादिमें फिर गपशप [illegible] प्राप्त हो जाता था। यह एक जानने लायक बात है कि सरकारी मुकाममें जो विशेष प्रतिनिधि रखे जाते हैं, वे [illegible] प्रतिनिधि भी होते हैं, [illegible] नियन्त्रण हो और सबसे अधिक विज्ञापन [illegible]।

आदिमें छपे विवरणके आधारपर, तैयार कर लिया जाता है। खेद है कि देशके कुछ पत्र तो सरकारसे प्राप्त सूचना-पत्रों आदिमें दी हुई शीर्षक पङ्क्तियाँतक ज्योंकी त्यों रहने देते हैं, उन्हें फिरसे अपने ढंगपर लिखने-का भी कष्ट नहीं करते।

जब किसी विशेष संवाददाताको अपने पत्रके प्रधान कार्यालयसे दूर रहना पड़ता है और राजधानीमें उसकी नियुक्ति होती है, तब वह विशेष प्रतिनिधि कहलाता है। ऐसे संवाददाताको जब स्वदेशके बाहर जाना पड़ता है और किसी देशकी राजधानीमें या संयुक्त राष्ट्रसंघ जैसी अन्तर-राष्ट्रीय संस्थाके प्रधान कार्यालयमें उसकी नियुक्ति होती है, तब उसे 'विदेशी या विदेशस्थ संवाददाताकी संज्ञा प्राप्त होती है। मूल व्यक्ति वही विशेष संवाददाता है जो राष्ट्रकी राजधानीमें 'राष्ट्रीय' संवाददाता, विदेशमें विदेशस्थ संवाददाता तथा युद्ध-क्षेत्रमें 'युद्ध-संवाददाता' कहलाता है। अपने सम्पादकसे जितनी दूर उसे रहना पड़ता है, उसकी तड़क-भड़क तथा उसका खर्चा भी उसी अनुपातसे बढ़ता जाता है। वह ऐसा नक्षत्र है जो कई आकाशोंमें चमकता देख पड़ सकता है और बहुतसे महत्त्वपूर्ण समारोहोंमें उसे निकटकी अच्छी जगह बैठनेको मिलती है। हमेशा तो वह वर्त्तमान इतिहासका प्रत्यक्षदर्शी बना रहता है किन्तु एकाध बार वह इतिहास-निर्माता भी बन जाता है, जैसे जार्ज स्लोकॉम्बे नामक पत्र प्रतिनिधि बना जब उसने सन् १९३० में यरवदा जेलमें महात्मा गाँधीसे भेंट-मुलाकात की—(इस मुलाकातके सम्बन्धमें शुरूमें ही वाइसरायने मंगलकामना की थी)—और यह समाचार प्रकाशित किया कि भारतका वह महान् नेता 'स्वतन्त्रताके सार भाग'में भी सन्तुष्ट हो जायगा। यही वह सिद्धान्त था जिसके आधारपर बातचीत आगे बढ़ सकी और समझौता हो सका। ये ही आजके पता लगानेवाले तथा स्थितिकी गहराईतक जानेवाले व्यक्ति हैं। ये उत्तम श्रेणीके सर्वभौम नागरिक हैं जो राजदूतावासके सदस्योंकी टक्करके होते हैं।

इस सिलसिलेमें विशेषज्ञ संवाददाताओंकी अर्थात् एक विशेष तरहके

विशेष संवाददाताओंकी भी चर्चा की जा सकती है। ये ऐसे सीमित क्षेत्रमें ही काम करते हैं, जैसे श्रमिक प्रश्न, सैनिक रणनीति, अर्थशास्त्र, विज्ञान आदि। भारतमें इनका प्रायः अभाव ही है, यद्यपि इनके महत्त्वपर जितना भी जोर दिया जाय, थोड़ा है। विशेषज्ञों और विद्वानोंके न समझमें आनेवाले सिद्धान्तों तथा विज्ञानके जटिल आविष्कारोंको सरल ढंगसे समझाते हुए जनतामें उनका प्रचार करनेकी कला अभी हमारे यहाँ विकसित ही नहीं हुई। 'अमेरिकन वीकली' के विज्ञान सम्पादक श्री जी० वी० लालको हमारे इस कथनका एकमात्र अपवाद समझना चाहिये किन्तु दुर्भाग्यसे वे न्यूयार्कमें काम करते हैं अपने देशकी राजधानी 'नयी दिल्ली' में नहीं।

विशेष संवाददाताके गुण

उच्चाधिकारी—"मै एक बात केवल अपने और तुम्हारे बीचमे कहना चाहता हूँ। यह लिखित विवरणके बिल्कुल बाहरकी चीज है। तुम्हे मेरे सामने प्रतिज्ञा करनी होगी कि तुम्हारे सिवा किसी अन्य व्यक्ति पर यह प्रकट न होने पायगी।"

विशेष सवाददाता—'क्षमा कर, महाशय, ऐसी गुप्त बात जाननेमे मेरी तनिक भी अभिरुचि नहीं है।"

ऐसे आत्म-नियन्त्रण तथा साहसकी आवश्यकता प्राय ही पडती है। कई मामलोमे तो इस तरहकी गुप्त जानकारीसे विशेष लाभ हो सकता है। किन्तु अन्य कितने ही मामलोमे विशेष सवाददाताको निस्सकोच भावसे कह देना चाहिये—'कृपया अपना गोपनीय रहस्य प्रकट न कीजिये, क्योकि मै चुप्पी ही साधे रहूँगा, ऐसी प्रतिज्ञा मै नहीं कर सकता।" बहुत बार तो ऐसा होगा कि उक्त 'रहस्य' सवाददाताको पहले ही मालूम हो चुका रहेगा। यदि नहीं हुआ, तो भी १०० मे से ९० उदाहरणोंमें उसे अन्य जरियोसे उसका पता चल जायगा, क्योकि ऊँचे अधिकारी भी आखिर मनुष्य है और अपना प्रचार करानेके इच्छुक रहते है। इसलिए विशेष सवाददाताओके लिए कोई भी ऐसी गुप्त जानकारी किसी शर्त्त या प्रतिबन्धके साथ प्राप्त करना बुद्धिमानी न होगी, जिसे उसके प्रतिद्वन्द्वी बिना शर्त्तके ही किसी अन्य जरियेसे प्राप्त करनेमे सफल हो जायँ और उसे उसके पहले ही प्रकाशित भी कर दे। उसे इस बातका पूरा ध्यान रखना चाहिये—समाचार प्राप्त होनेके महत्त्वपूर्ण स्रोतोंके सम्बन्धमे भी—कि कोई उससे अपने प्रचारका ही काम न लेने लगे।

उसका सबसे बडा कर्त्तव्य जनताके प्रति होता है, इसलिए किसी व्यक्तिविशेषके प्रति, फिर वह चाहे जितना बड़ा क्यो न हो, उसका कर्त्तव्य अपेक्षाकृत गौण ही माना जाना चाहिये। सबसे महत्त्वके गुण जो किसी विशेष सवाददातामे होने चाहिये, वे ये है—

१ व्यापक क्षेत्रके विभिन्न तरहके लोगोसे सम्पर्क—सरकारी अफ-

सदस्योंसे, विरोधी दलके लोगोंसे, राजदूतावासोंसे, अन्य सहयोगी संवाद-दाताओंसे, निजी सचिवोंसे, और एक या दो महान एवं शक्तिसम्पन्न व्यक्तियोंसे ।

२ गुप्त रूपसे प्रकट की गयी बातको सार्वजनिक रूपसे प्रकट न होने देनेकी योग्यता ।

३ कभी-कभी कोई ऐसा रहस्य प्रकट करनेका प्रस्ताव अस्वीकार कर देनेका साहस जिसके साथ प्रतिबन्ध लगाये गये हों । ऐसी बात सुननेसे इनकार कर देनेकी क्षमता जिसे प्रकट न होने देनेकी बाध्यता रखी गयी हो ।

४ गवेषणाकी प्रवृत्ति जो सामाजिक शास्त्रों तथा मानव प्रवृत्तियोंसे ग्रहण की गयी पहलेकी जानकारीपर आधारित हो । सब बातें जाननेकी उत्कट अभिलाषा ।

हमेशा हिस्सा ग्रहण करते है, भले ही इसका उन्हें भान न हो। उनमें इन बातोंका होना आवश्यक है—

विदेशी भाषाओंका ज्ञान। (भारतमें अंग्रेजीके सिवा फ्रेञ्च तथा जर्मन, दूसरी भाषाओंके रूपमें अधिक लोकप्रिय है किन्तु रूसी, चीनी तथा स्पेनिश भाषा जाननेवाले व्यक्ति पत्रकारीमें अधिक काम कर सकते है, जैसे कूटनीतिक क्षेत्रोंमें भी)।

शब्द-चित्र प्रस्तुत करनेकी स्वाभाविक योग्यता।

यह जान लेनेकी बुद्धिमत्ता कि कितने ही अन्तर्राष्ट्रीय झगडों तथा विवादोंका कोई सीधा और तात्कालिक समाधान नहीं होता, साथ ही यह भी कि झगडा वस्तुत न्याय और अन्यायका नहीं, वरन् न्याय और न्यायका ही है और किसीका देशभक्तिसे प्रेरित झुकाव यद्यपि न्यायोचित समझा जाता है, फिर भी वह हमेशा न्याय्य नहीं होता।

विदेशी संवाददाताको कभी-कभी बहुत ही कठिन काम सौंप दिया जाता है, विशेषकर ऐसे सुप्रसिद्ध साप्ताहिकों द्वारा जैसे 'न्यू स्टेट्समैन एण्ड नेशन' (लन्दन), तथा न्यू रिपब्लिक' (वाशिंगटन)। हमारी 'लन्दनकी चिट्ठी', 'वाशिंगटनकी चिट्ठी' या 'दिल्लीकी चिट्ठी' से आशा की जाती है कि देशमें उस सप्ताह सबसे अधिक चर्चा किस बातकी रही, कौन-सा मुख्य प्रश्न सबके सामने रहा, इसका वर्णन उसमें हो। केवल एक ही वृत्तान्त या कथानक दे देनेसे काम नहीं चलता और जब केवल एक ही विषयका वर्णन किया जाता है, तब वह देशके सर्वोपरि भावका सूचक माना जाता है।

यदि बिलकुल 'मामूलीपन' तथा ऊपरसे देखने भरकी सचाईसे बचना चाहे तो यह काम करना काफी कठिन है। ऐसी चिट्ठियोंमें सुन्दर जोरदार भाषाका प्रयोग करना सफलताकी कुञ्जी है, क्योंकि यहाँ पत्रकारकी रचना साहित्यकी ओर उन्मुख-सी होती जान पड़ती है। डिजरेलीने 'लन्दन टाइम्ज' के बारेमें सन् १९४० में लिखा था—

"आश्चर्यकी चीज यह है कि 'टाइम्ज' जहाँ मेरे भाषणकी प्रशंसनीय

रिपोर्ट छापता है, वहाँ उसमें इस बातका बहुत ही कम पता चलता है कि जनतापर उसका प्रभाव क्या पड़ा।' तात्पर्य यह कि मुख्य घटना या विषयका वर्णन करनेके साथ साथ विशेष संवाददाताको उससे सम्बद्ध अन्य छोटी मोटी बातों तथा उसके प्रभाव या प्रतिक्रियाका भी उल्लेख करना चाहिए। जिस तरह हो उस तरह एक छोटा-सा पृथक रूपसे वर्णित विषय भी इस ढंगसे लिखा जाय जिससे यह न मालूम पड़े कि उसमें कोई बात छूट गयी है।

विशेष संवाददाताका दैनिक कार्य-क्रम

मित्रोमे ही प्राप्त नहीं होते, सत्तारूढ व्यक्तियोके विरोधियोमे और स्वय सत्ताधारियोमे भी प्राप्त होते है। वे सबके सब विशेष सवाददाताकी थोडी सी सहायता करना चाहते है, इस आशामे कि जब मौका आयगा तब अपनी बात भी प्रकाशित करानेकी सुविधा उन्हे मिल सकेगी। मुख्य रूपसे उसे जानकार लोगोसे की गयी अपनी बातचीतपर ही निर्भर रहना चाहिये।

सामान्य रिपोर्टरकी अपेक्षा विशेष सवाददाताके मार्गमे अधिक गड्ढे हैं और वे अधिक गहरे भी है। हलचल पैदा कर देनेकी अपनी शक्तिके कारण वह अपनेको आवश्यकतासे अधिक बडा समझने लग सकता है और यही उसके अन्तका प्रारम्भ है। फिर, यह भी सभव है कि वह जिन 'महत्त्वपूर्ण सूत्रों' से समाचार प्राप्त करता रहता है, उनकी अपनी इच्छाके अनुसार सोची गयी बातोको ज्योकी त्यो स्वीकार करने लगे और इस तरह स्वय निर्णय करने या भावी घटनाओके सम्बन्धमे पहलेसे कुछ कह सकनेकी शक्ति खो बैठे। केवल ऊँचे लोगोसे ही सम्पर्क बनाये रखनेपर उसके वृत्तान्त खोखले बने रह सकते है। महत्त्वके समाचार तो उनसे प्राप्त होते हैं पर उनका असली तत्त्व उन लोगोके पास ही मिल सकता है जो उनका ब्योरा तैयार करते है। केवल ऊँचे लोगोंसे सम्पर्क स्थापित करनेका एक परिणाम यह भी हो सकता है कि वह एक दलके लोगोके ही बीच मँडरानेवाला व्यक्ति बन जाय और समुचित रूपसे अपने कर्त्तव्यका पालन करनेमे धीरे धीरे असमर्थ होता जाय। जब सब बाते आसान सी हो जायॅ, तब उसके लिए आवश्यक है कि वह अधिक कडाईसे काम ले।

भारतीय पत्रकारीमे विशेष सवाददाताओका महान् युग अभी आनेको है किन्तु क्षितिजपर प्रकट होनेवाले नक्षत्रोको देखते हुए तथा पाठकापर अपने विशिष्टत्वका प्रभाव जमानेकी समाचारपत्रोकी बढती हुई प्रवृत्तिका ध्यान रखते हुए हम कह सकते है कि वह समय अब अधिक दूर नही, निकट ही है।

पिताजीने पूछा—'क्या ये भी पत्रकारी सीख रहे है ?' उन्होने मुसकिराते हुए कहा 'जी हॉ ।' श्री हार्निमेनको सुनकर आश्चर्य हुआ और उन्होने अपनी भौहे ऊँची करते हुए कहा "कहो, नटराजन, तुम तो इस देशकी सारी स्थिति जानते ही हो न ?"

पिताजीने बडी गम्भीरतासे कहा "मै उसे अन्य किसी कामके लिए तैयार भी तो नहीं कर सकता था, और न मेरी इच्छा ही थी कि वह कोई और पेशा अख्तियार करे ।"

हार्निमैन कुछ देर सोचते रहे, फिर बोले—"आप ठीक कहते है किन्तु भारतमे पत्रकारोका जीवन बहुत ही कठोर है। मुझे यह बात बतानेकी आवश्यकता नहीं ।"

अब इतने समय बाद उस घटनाका स्मरण करता हूँ तो जो चीज मुझे अनोखी जान पडती है, वह यह है कि मुझे यह देखकर आश्चर्य नही हुआ कि ये दोनो महाशय, जिनके विचारोमे भारी असमानता थी किन्तु जो अपने पेशेके उच्च शिखरपर थे, पत्रकारीकी कठिनाइयोमे इतने अधिक प्रभावित थे, वरन् मुझे आश्चर्य इसपर हुआ कि पिताजी क्यो इस मामलेमे इतनी दिलचस्पी लेते थे कि मै यह वृत्ति ही ग्रहण करूँ । इस विषयपर मेरी उनकी कभी बातचीत नहीं हुई और यह तो स्पष्ट ही था कि 'रिफार्मर' के सञ्चालनसे जीवन-निर्वाहकी कोई आशा नही की जा सकती थी ।

पत्रकारीकी प्रथम शिक्षा मुझे 'रिफार्मर' से मिली—स्वभावत लेखक तथा प्रूफ-सशोधकके रूपमे । 'लीडर' के सम्पादक श्री सी वाई चिन्तामणिने एक बार पत्रकारोकी शिक्षाकी चर्चा करते हुए लिखा था कि उन्हें बहुत अधिक शब्दोका प्रयोग करना चाहिये । 'रिफार्मर' ने तुरन्त इसकी आलोचना की । भावोकी ठीक ठीक अभिव्यक्ति करनेवाले शब्दोंका प्रयोग करते हुए थोड़ेमें अपनी बात कहना, अनावश्यक विस्तार से बचना—यही इस पत्रकी परम्परा रही है। सन् १९१० मे जब 'स्टेट्समैन'के तत्कालीन सम्पादक श्री आर्थर मूरसे मेरा परिचय कराया

गया, तब उन्होंने 'रिफार्मर' की सम्पादकीय टिप्पणियोंका उल्लेख करते हुए कहा कि अपने ढंगकी वे सबसे अच्छी होती है। 'रिफार्मर' में काम करना मानो अनुशासनकी शिक्षा ग्रहण करना था। उसमें यदि छोटी-सी भी गलती हो जाती थी तो अगले अंकमें उसका संशोधन प्रकाशित करना आवश्यक था। छप जानेके बाद पिताजी प्रत्येक अंकको जिस तरह छोटी छोटी बातोंपर नजर रखते हुए बड़ा सावधानीसे पढ़ते थे और उसपर निशान लगा देते थे, उससे मैं प्राय क्षुब्ध हो उठता था। मैं अक्सर सोचा करता था कि शुद्ध छपाईके लिए इतना अधिक चिन्तित होना सर्वथा अनुपयुक्त है। फिर भी मैं इस मामलेमें अत्यधिक सावधानी बरतता था क्योंकि मैं जानता था कि गलतियां छूट जानेसे पिताजीको दुःख होगा। इसके सिवा मुझे यह भी अच्छा नहीं लगता था कि [illegible] लोगोंको अपनी लापरवाहीके उदाहरणोंका ढेर।

इसमे सन्देह नहीं कि मेरे लिए तो उनकी तरफ देखनेकी आवश्यकता ही न थी। यदि मै उन वाक्योंको आवश्यक न समझता तो उन्हें लिखता ही क्यों? मैने अपनी भावभगीसे यह सूचित कर दिया।

फिर भी वैसा करके देखा गया। मैने वह नोट पढा, पहले तो उन पक्तियोंके साथ, फिर उन्हें निकालकर। मुझे यह जानकर भारी अचम्भा हुआ कि सचमुच उन वाक्योंके बिना वह और भी अच्छा लगा, यद्यपि जब मैने उन्हें लिखा था तब मैंने उन्हें बहुत ही उपयुक्त समझा था।

एक बातकी परेशानी मुझे और रहा करती थी,—बार बार पूछे जानेवाले इस प्रश्नका उत्तर देना कि 'इसका क्या मतलब हुआ?' नतीजा यह होता था कि सभी अनावश्यक शब्द निकाल देने पडते थे और रचनामें अस्पष्टता या सदिग्धता नहीं रह जाती थी। अपनी ही रचनाको फिरसे दोहराना मुझे बिलकुल अच्छा न लगता था और दूसरेके साथ बैठकर ऐसा करनेमें तो दुगुनी यन्त्रणाका अनुभव होता था। फिर भी इससे बडा लाभ पहुँचता था, इसमें कोई सन्देह नहीं। मेरा काम सुव्यवस्थित नहीं होता और मै मामूलीसे अधिक परिश्रम करता हूँ, यह बात भी नहीं। फिर भी जब मै पत्रकारी करनेवाले कितने ही व्यक्तियोंकी आदतें देखता हूँ तो मै अनुभव करता हूँ कि मै सचमुच बडे लाभमें रहा। एक बात और जो मुझे कह देनी चाहिये वह है अभिनिर्देशकी धुन जो मेरे पितापर हमेशा सवार रहती थी। ईश्वरने उन्हें असाधारण स्मरणशक्ति प्रदान की थी, फिर भी सन्देह होनेपर वे छोटी-छोटी बातके सम्बन्धमें भी फिरसे जॉच कर लिया करते थे। मुझे स्मरण है कि एक बार एक लेखके नीचे कुछ जगह खाली रह गयी थी, उसे भरनेके लिए मैने शेक्सपियरका एक अवतरण दे दिया। जल्दीमें उसके शब्दक्रममें कुछ भूल रह गयी।

उन दिनों श्री वी एस श्रीनिवास शास्त्री 'रिफार्मर' को प्रति दिन बडे ध्यानसे पढा करते थे। उन्होंने देर नहीं की और अवतरणका शुद्ध रूप देते हुए पत्र लिखा। पिताजीने केवल इतना ही कहा—पता लगा-

कर देखो।' और अन्तमें मेरे इस प्रशिक्षणके अन्तकी पूर्ति हुई ब्रिटिश भारतके प्रान्तोंसे तथा दिल्लीसे प्राप्त सरकारी रिपोर्टों और राज्योंकी प्रशासन सम्बन्धी रिपोर्टोंसे तथा परिवर्तनमें आये हुए समाचारपत्रोंको परिश्रमपूर्वक पढ़ते रहनेसे। जहाँतक पढ़नेका सवाल है मुझे इसकी आवश्यकता न थी कि कोई मेरे पास आकर इसके लिए मुझसे कहे या मुझे फुसलावे किन्तु यहाँ बात बिल्कुल दूसरी थी। आज भी मुझे अपनी अनिच्छाको दबाना पड़ता है, तभी मैं कोई पत्र हाथमें ले सकता हूँ। मेरे छुट्टीके दिन इसलिए सुख्यात हैं कि उस समय मेरे आसपास एक भी समाचारपत्र नहीं रहने पाता। सरकारी रिपोर्टोंकी बात इससे पृथक् है। मैं नहीं समझता कि मेरे अकेले अपने मनकी बात होती तो मैं कभी उनकी तरफ झाँकता भी किन्तु मुझे इस बातका दुःख नहीं कि उनका पढ़ना भी मेरे प्रशासनका अंग बना।

है, फिर भी प्रविधियाँ तो सीखी ही जा सकती है, उनका सहारा लिया ही जा सकता है। अब तो पहलेसे भी अधिक समाचारपत्र निकलने लगे है और सरकारी रिपोर्टों आदिकी भी सख्या बढ गयी है।

लेखनके दो मौलिक तत्व जो मेरे मस्तिष्कमे अच्छी तरह प्रविष्ट कराये गये थे, ये है – कोई बात बढा-चढाकर कहनेके बजाय कुछ घटा-कर ही कहना तथा इस तरहकी आधारभूत ईमानदारी कि यदि किसी विषयपर लेख लिखनेके लिए सामग्री एकत्र करते समय आप जो मत प्रकट करना चाहते है, उसके विरुद्ध भी कुछ तर्क या तथ्य मिले तो उनकी भी चर्चा लेखमे कर देना। मै यह तो नही कहता कि मैने हमेशा इन सिद्धान्तोका अनुपालन किया है, फिर भी मै कहूँगा कि जब भी मैने उनकी अवहेलना की है, मुझे इसका बराबर ध्यान बना रहा है। मुझे स्मरण है कि श्री एस० सदानन्दने, जिनके साथ चार वर्षतक 'फ्री प्रेस जर्नल' मे काम करनेका सुअवसर मुझे मिल चुका है, मेरी इस बातकी ओर सकेत कर इसे मेरा दोष बतलाया था। आश्चर्य तो यह है कि उन्होने श्री कामाक्षी नटराजन्‌को ही अपनी इस रायके लिए प्रमाण माना कि अग्रलेखमे केवल एक ही दृष्टिकोणका प्रतिपादन होना चाहिये और उसमे निश्चित मत ही प्रकट किया जाना चाहिये (जिससे उनका मतलब यह था कि उसमे विरोधी बातोका समावेश न होना चाहिये)। अपनी दलीलकी पुष्टिमे श्री सदानन्दने यह भी कहा इस सम्बन्धमे वे मैथ्यू आरनोल्डकी वे पंक्तियाँ भी दोहराया करते थे जिनमे कहा गया है कि जनता निश्चित और पक्की बात ही सुनना चाहती है।" मैने ब्राउनिंगकी कविताकी पंक्तियाँ देकर अपने मतका समर्थन करनेका प्रयत्न किया किन्तु श्री सदानन्दकी धारणा नही बदली।

'रिफार्मर' की एक और विशेषता यह थी कि जो गल्तियाँ हो जाती थी, पता चलनेपर—भले ही उनका पता हम लोगोने स्वय ही लगाया हो—हम उनका संशोधन पत्रमे निस्सकोच भावसे प्रकाशित कर देते थे। यह सिद्धान्त भी मैने पत्रकारीके पेशेमे बहुत उपयोगी पाया। जब आपने

हो जायगा, उतना अन्य पृष्ठोंके देखनेसे नहीं हो सकता। नये, युवक लेखकको यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि जिन विषयोंपर भी टीका-टिप्पणी करनी हो, उनमेंसे प्रत्येकके सम्बन्धमें नीतिका प्रश्न नहीं उठ सकता। वास्तवमें यह वाञ्छनीय है कि नीतिका प्रश्न कम से कम मामलोंमें उठाया जाय और ये बिलकुल साफ, निश्चित विषय ही हों। जो पत्र हर विषयकी टीका-टिप्पणीको अपनी नीतिके दायरेमें रखनेका प्रयत्न करता है, वह कुछ ही समय बाद अनावश्यक जटिलताओंमें अपने आपको ग्रस्त पा सकता है।

यहां 'सम्पादकीय' तथा 'अग्रलेख' में अन्तर करना पड़ता है। स्वभावत अग्रलेखोंकी संख्या (टिप्पणियोंकी तुलनामें) कम होती है। पत्रकारकला सम्बन्धी पुस्तकोंके अनुसार 'अग्रलेख' पत्रके मुख्य लेखको कहते हैं किन्तु इसकी और भी परिभाषाएँ हैं जिनमें मति-विभ्रमका आभास मिलता है। एक लेखकका कहना है कि प्रथम सम्पादकीय लेखको ही अग्रलेख कहना चाहिये, किन्तु कुछ लोग 'अग्रलेख' (लीडर) को उस लेखका द्योतक मानते हैं जो पाठकोंको रास्ता बताने ('लीड' करने) का, उनके नेतृत्वका, काम करे। स्थान और सजानेके ढंगसे ही किसी लेखका महत्त्व नहीं बढ़ सकता। सम्पादकीय लेखके परम्परागत स्वरूप—उसके तीन हिस्सोंमें विभक्त होनेकी, विषयप्रवेश, विकास, उपसंहार—की अब अक्सर रक्षा नहीं की जाती, फिर भी अनेक बार ऐसा होता है कि घुमा फिराकर उसका यह रूप आ ही जाता है।

विवरणात्मक या व्याख्यात्मक अग्रलेखमें—और प्राय इन्हींकी संख्या अधिक होती है—सामान्यतया यह ढाँचा कायम रखना ही पड़ता है। हाँ, किसी नीति या वक्तव्य आदिके समर्थनमें अथवा उसकी आलोचना करनेकी दृष्टिसे लिखे गये लेखमें इस शैली या ढंगके बदल दिये जानेकी अधिक सम्भावना रहती है। जिस अग्रलेखमें मानव हृदयको स्पर्श करनेवाली, मनुष्यकी अभिरुचि बढ़ानेवाली, बातोंका समावेश हो, वह अपने ढंगका निराला ही होता है। भारतीय पत्रोंमें ऐसा अग्रलेख क्वचित् ही

हो जायगा, उतना अन्य पृष्ठोंके देखनेसे नहीं हो सकता। नये, युवक लेखकको यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि जिन विषयोंपर भी टीका-टिप्पणी करनी हो, उनमेंसे प्रत्येकके सम्बन्धमें नीतिका प्रश्न नहीं उठ सकता। वास्तवमें यह वाञ्छनीय है कि नीतिका प्रश्न कम-से-कम मामलोंमें उठाया जाय और ये बिलकुल साफ, निश्चित विषय ही हो। जो पत्र हर विषयकी टीका-टिप्पणीको अपनी नीतिके दायरेमें रखनेका प्रयत्न करता है, वह कुछ ही समय बाद अनावश्यक जटिलताओंसे अपने आपको ग्रस्त पा सकता है।

यहाँ 'सम्पादकीय' तथा 'अग्रलेख' में अन्तर करना पडता है। स्वभावतः अग्रलेखोंकी संख्या (टिप्पणियोंकी तुलनामें) कम होती है। पत्रकारकला सम्बन्धी पुस्तकोंके अनुसार 'अग्रलेख' पत्रके मुख्य लेखको कहते हैं किन्तु इसकी और भी परिभाषाएँ हैं जिनसे मति-विभ्रमका आभास मिलता है। एक लेखकका कहना है कि प्रथम सम्पादकीय लेखको ही अग्रलेख कहना चाहिये, किन्तु कुछ लोग 'अग्रलेख' (लीडर) को उस लेखका द्योतक मानते हैं जो पाठकोंको रास्ता बताने ('लीड' करने) का, उनके नेतृत्वका, काम करे। स्थान और सजानेके ढंगसे ही किसी लेखका महत्त्व नहीं बढ सकता। सम्पादकीय लेखके परम्परागत रूपकी—उसके तीन हिस्सोंमें विभक्त होनेकी, विषयप्रवेश, विकास, उपसंहार—भी अब अक्सर रक्षा नहीं की जाती, फिर भी अनेक बार ऐसा होता है कि घुमा फिराकर उसका यह रूप आ ही जाता है।

विवरणात्मक या व्याख्यात्मक अग्रलेखमें—और प्राय इन्हींकी संख्या अधिक होती है—सामान्यतया यह ढाँचा कायम रखना ही पडता है। हाँ, किसी नीति या वक्तव्य आदिके समर्थनमें अथवा उसकी आलोचना करनेकी दृष्टिसे लिखे गये लेखमें इस शैली या ढंगके बदल दिये जानेकी अधिक संभावना रहती है। जिस अग्रलेखमें मानव-हृदयको स्पर्श करनेवाली, मनुष्यकी अभिरुचि बढानेवाली, बातोंका समावेश हो, वह अपने ढंगका निराला ही होता है। भारतीय पत्रोंमें ऐसा अग्रलेख क्वचित् ही

देख पडता है, अतः उसका रूप-रंग आदि बहुत कुछ लेखक-विशेषके ही ऊपर निर्भर रहता है।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि विवादग्रस्त विषयपर लिखा गया लेख विश्वास उत्पन्न करनेवाला और साथ ही ऐसा हो जिसे पढनेमें पाठक दिलचस्पी ले सकें। इस तरहका लेख अक्सर लिखा जाता है क्योंकि वह अधिक आसानीसे पाठकोंका ध्यान अपनी ओर खींच सकता है। यह बात बहुधा भुला दी जाती है कि विवरणात्मक तथा भावात्मक लेखोंमे भी पाठकको कुछ न कुछ नयी और भिन्न बात पढनेको मिलनी चाहिये। यदि शुरूके कुछ ही वाक्योंके पढे जानेतक पाठकका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करनेमे आप सफल न हो सके, तो इसकी बहुत कम सभावना है कि आपका अग्रलेख पढा भी जायगा। यद्यपि इस बातमे बहुत सन्देह है कि आजकल अग्रलेख कभी पढे भी जाते हैं, फिर भी अग्रलेख-लेखकको यह हरगिज खयाल न करना चाहिये कि उसका लेख कोई पढेगा ही नहीं। यह नहीं कहा जा सकता—और यह बडे दुर्भाग्यकी बात है—कि जो लेखक खूब अध्ययन-मनन और चिन्तनके बाद लेख लिखता है, उसके लेख अवश्य पढे ही जायँगे या कमसे कम यह स्वीकार कर लिया जायगा कि उसने इसके पीछे कितना परिश्रम किया है।

किन्तु इसके विपरीत यदि वह ठीक-ठीक बात अच्छे ढगसे लिखनेकी फिक्र नहीं करता तो वह प्रसिद्धिलाभ नहीं कर सकता, कोई नाम नहीं पैदा कर सकता। अच्छा लेख लिखनेपर, उसे कमसे कम इतना आत्मसन्तोष तो होगा ही कि मैने अपना काम ठिकानेसे किया। नवयुवक लेखकको तो यह बात पक्के तौरमे समझ लेनी चाहिये कि इस काममें सफलता पानेके लिए कोई छोटा रास्ता, लघु उपाय, नहीं है।

मै पहले कह चुका हूँ कि समाचारपत्रोंमे भिन्नता होती है। स्थान-स्थानमे असमानता देख पडती है। मद्रासके 'हिन्दू' मे पर्याप्त अध्ययनके बाद जो सम्पादकीय लेख लिखे जाते हैं, भारतीय समाचारपत्रके किसी अन्य केन्द्रमे वे अनुपयुक्त से प्रतीत होंगे। बम्बईके पत्रोंके लेखोंमे वैसी

गम्भीरता नहीं होती, इसमे तो सन्देह ही नहीं—फ्री प्रेस जर्नलकी अनौपचारिक शैली, भारतज्योतिके लेखका उपाख्यान जैसा रूप तथा दैनिकोंके तीसरे सम्पादकीयका विनोदात्मक ढग ऐसी चीजें है जिनका अनुकरण अन्यत्र नहीं किया गया। बगालके पत्रोंके लेख दूसरे तरहके होते है—उनकी शैली कुछ गम्भीर-सी होती है जो पूर्ववर्ती युगका स्मरण दिलाती है। इन केन्द्रोके प्रमुख पत्रोंके अग्रलेखों तथा भारतकी राजधानीसे निकलनेवाले पत्रोंके लेखोंका अध्ययन करनेसे पत्रकारीकी शिक्षा प्राप्त करनेवाले व्यक्तिको यथेष्ट लाभ हो सकता है।

इसके सिवा विभिन्न सम्पादकोंकी अपनी-अपनी सनक अलग होती है, जिसकी जानकारी किसीके व्यक्तिगत अनुभवसे प्राप्त करनेकी आवश्यकता शायद नहीं है। जब मैंने 'पायोनियर' में पहली बार काम करना शुरू किया, तब मै उप-सम्पादक था और उस समय जब भी मैने कोई सम्पादकीय लेख लिखनेकी चेष्टा की, उससे सहायक सम्पादकोंकी भ्रकुटियॉ चढ जाती थीं—वे समझते थे कि मै उनके लिए सुरक्षित भूमिमे प्रवेश करनेकी अनधिकार चेष्टा कर रहा था। समाचार सम्पादकको भी यह बात बुरी लगती थी, क्योंकि उनका खयाल था कि सम्पादकीय लिखनेवालोंके पास यथेष्ट काम नहीं है, अत किसी अन्य व्यक्तिके लेख लिख देनेसे उनका भार हलका होनेकी, उन्हे राहत मिलनेकी, कोई बात नहीं।

किन्तु जब चार वर्ष बाद मैने फिर उस पत्रमे काम करना शुरू किया, इस बार सहायक सम्पादकके रूपमे, तब मेरा पाला डेसमड बग जैसे विकट आदमीके साथ पडा जो बहुत ही अन्याय्य बातोंकी मॉग हम लोगोसे किया करते थे। एक दिन तीसरे पहर मैं भारतीय इस्पातके सम्बन्धमे बहुत-सी बातोंका पता लगानेकी चेष्टा कर रहा था, इस बातसे लेकर कि विज्ञापन-विभागको टाटा कम्पनीकी सद्भावना बनाये रखनेमें अधिक दिलचस्पी तो नहीं है, इस बाततक कि टेरिफ बोर्डकी रिपोर्टमें इस्पातके उद्योगके सम्बन्धमे क्या-क्या कहा गया है।

जब मने अपनी कापी, ६०० शब्दोके तृतीय सम्पादकीय लेखके रूपमे, श्री चगके सामने रखी तो उन्होने शीर्षककी तरफ एक नजर डाली और कापीको सामनेसे हटाकर अलग कर दिया। फिर उन्होने मुझसे पूछा "क्या आपको इस्पातकी उत्पादन-विषयक कोई जानकारी है? क्या आप जमशेदपुर कारखानेके भीतर कभी गये है?" मने नम्रतासे स्वीकार किया कि मे नही गया। तब उन्होने उत्साहपर पानी फेर देनेवाली घृणाके साथ कहा "तो फिर बताइये भला, इस विषयपर कुछ लिखनेका दावा आप कैसे कर सकते है?' जब मैने उन्हे समझाया कि मैने टैरिफ बोर्डकी रिपोर्टसे आवश्यक तथ्योका सग्रह कर लिया है, तब "हुँ" कहकर उन्होने सकेत किया कि तातासे हमे अच्छा विज्ञापन मिलता है, और इस लेखसे उनके साथ व्यापारिक सम्बन्धमे बाधा पड सकती है। मैने उन्हे समझाया कि इस दृष्टिसे भी मने उसपर अच्छी तरह विचार कर लिया है।

वह बडा विचित्र-सा महीना था जिसमें किन्ही बडी और महत्त्वपूर्ण घटनाओके समाचार ही नही आ रहे थे। इसलिए दो ही दिन बाद श्री चगने मुझे फिर तलब किया और मुझसे एक लेख तैयार कर देनेको कहा। विषय उन्होंने बतलाया 'नारियल'। मैंने उनसे कहा कि जैसे इस्पातके सम्बन्धमें मुझे कोई प्रत्यक्ष जानकारी न थी, वैसे ही नारियलकी उपज आदिकी स्थितिसे भी म सर्वथा अनभिज्ञ हूँ। उन्होंने कुछ न सुना और आग्रह करने लगे कि म उनके आदेशका पालन करूँ।

यह एक विचित्र बात है कि एक और समाचारपत्र, दि फ्री प्रेस जर्नल, मे मेरा प्रवेश पोलैण्डके प्रश्नको लेकर हुआ। अखबारका प्रभार उस समय श्री के० श्रीनिवासम् पर था, यद्यपि सम्पादकके स्थानपर नाम श्री सदानन्दका ही छपता था। सर्वभारतीय सम्पादक-सम्मेलनके समय श्री श्रीनिवासम्के साथ मेरी जान पहचान हो चुकी थी। एक दिन सन्ध्या समय श्री श्रीनिवासम् बैठकमें भाग लेनेके लिए मद्रास चले गये पर मे पीछे ही रह गया। अब बडे जोरोसे इस बातकी चेष्टा की

जाने लगी कि मै किसी तरह फ्री प्रेस जर्नलके दफ्तरमे जा पहुँचूँ। जब मुझसे बातचीत हुई तो पता चला कि अगले अकके लिए मुझे एक अग्रलेख लिख देना है। यह भी मालूम हुआ कि श्री श्रीनिवासम् स्वय कह गये है कि मै उनके लिए यह काम कर दूँगा। बस, इस व्यवस्थाके सम्बन्धमे मुझे पहले-पहल इतना ही विदित हुआ। मैने इस जिम्मेदारीसे बचनेका प्रयत्न किया किन्तु बाहर निकलनेका कोई मार्ग सूझ न पडा।

इस समय सन्ध्याके ७॥ बज चुके थे और मुझे पूर्व निश्चयके अनुसार ९ बजे रातमे एक जगह भोजन करनेको जाना था। मैने दफ्तरवालोसे कहा कि पत्रकी छ महीनोकी फाइल, एक टाइपराइटर और टाइप करनेका कागज सम्पादकीय मेजपर रखवा दिये जायँ। जब मै वहाँ पहुँचा, तब दफ्तरके उस लडकेके सिवाय जिसने मेरा स्वागत किया, ये कुल तीन चीजे ही मुझे वहाँ देख पडी। दफ्तरमे उस समय कोई नही था, जैसा कि दो पालियोके बीचमे प्रत्येक समाचारपत्रके कार्यालयोमे सामान्यतया होता ही है। उस लम्बे कमरेके एक कोनेमे टेलीप्रिण्टर मशीन खटखट कर रही थी। मै कुरसीपर बैठ गया और फाइल उलट कर पुराने अक देखने लगा।

मुझे कोई बीस मिनट लगे। मैने देख लिया कि इधर कुछ दिनोके भीतर पोलैण्डके सम्बन्धमे पत्रमे कोई टीका-टिप्पणी नही की गयी थी और जब मै इसकी जाँच कर रहा था, तब मुझे 'फी प्रेस' की शैलीका भी थोडा सा आभास हो गया। आगेका काम सरल तो नही पर बहुत कुछ सीधासादा और सामान्य-सा रह गया।

अवश्य ही मैने यह नही सोचा कि मैने कोई बडा काम कर डाला किन्तु अग्रलेख मैने लिखकर वहाँ रख ही दिया और साथ ही एक पुरजेपर यह भी हिदायत लिख दी कि यदि बादमे कुछ और रात बीतनेपर श्री श्रीनिवासम्का लेख प्राप्त हो जाय तो अग्रलेख रोक लिया जाय। निदान निर्धारित समयपर पहुँचकर मै भोजनमे भी सम्मिलित हो सका। मेरे इस कृत्यका श्री सदानन्दके मनपर अच्छा असर पडा और जब मुझे

वेतनपर काम करनेके लिए किसी जगहकी बडी आवश्यकता थी, तब उन्होने मुझसे 'फ्री प्रेसमे' चले आनेका प्रस्ताव किया, जिसे मैने सफलतापूर्वक बातचीत समाप्त होनेपर स्वीकार कर लिया। मै नही समझता कि सम्पादकीय विभागमे सम्मिलित हो जानेके बाद मैने जो लेख लिखे, उनसे उन्हे कोई सन्तोष हुआ, फिर भी हमने परस्पर एक कामचलाऊ समझौता कर लिया था। 'फ्री प्रेस' के सम्पादकीयकी एक पैरामे एक वाक्य रखनेकी पद्धति मुझे दिलसे पसन्द नही आयी किन्तु आश्चर्य है कि किस तरह धीरे धीरे मेरी आदत पड गयी और कुछ समय बाद मै उसी ढर्रेपर सोचने-विचारने भी लगा। इसके बाद इतना ही आश्चर्य मुझे उस समय हुआ जब 'बाम्बे क्रानिकिल' मे प्रवेश करने पर मैने वह आदत उसी तरह उतारकर फेक दी जिस तरह कोई पुराना कोट अलग कर दिया जाता है।

इन सब वर्षोंमे मै अपने साप्ताहिक पत्र 'दि रिफार्मर'का भी सचालन बराबर करता रहा। यह एक मनोरजक बात है कि जबतक मै 'फ्री प्रेस'मे रहा, मुझे ऐसा कभी नहीं जान पडा कि जो कुछ मैने दैनिकमे लिखा था, उसीकी पुनरावृत्ति मै साप्ताहिकमे कर रहा होऊँ किन्तु उसके बाद 'क्रानिकिल' मे काम करनेपर मुझे इस भावनासे बचनेके लिए सचेतन भावसे प्रयत्न करना पडा।

समाचारपत्रका विशिष्टत्व

समाचारपत्रोका अपना अलग 'विशिष्टत्व' होता है। वह ऐसी चीज नहीं जिसकी उपेक्षा की जा सके। अवश्य ही यह बात उन पत्रोके सम्बन्धमे अधिक सत्य है जिन्हे हम एक ही आदमीका उत्पादन कह सकते है। भारतमे ऐसे पत्रोकी अब भी काफी सख्या है किन्तु भविष्यमे इनकी उन्नतिकी कोई सभावना नही। पत्रकारीको एक पेशा माननेवाले विद्यार्थियोके लिए इनका कोई महत्व भी नहीं। अवश्य ही मेरा यह आशय नहीं कि सार्वजनिक जीवनमे उनका कोई प्रयोजन नहीं। प्रयोजन हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता। इतना अलबत्ता सच है कि

कोई आदमी यदि दृढतापूर्वक साहसका एक काम उठा लेता है और उसपर डॅटा रहता है तो लोगोंको उसकी बात सुननी ही पडती है। फिर भी ऐसे पत्र यदि किसी संस्था या समूहसे सम्बद्ध नहीं हो जाते तो आधुनिक पत्रकारकलाके लिए जिन साधनोंकी आवश्यकता है, उनका जुटाना उनके लिए सम्भव नहीं हो पाता। सचमुच इस पेशेमे कुछ लोगोंको मिल-जुलकर काम करनेकी आवश्यकता होती है, भले ही अप्रत्यक्ष रूपसे ऐसा किया जाय, तभी सुयोग्य लेखकोंका एक अच्छा, मजबूत दल उनकी ओर आकर्षित हो सकता है।

आजके सार्वजनिक जीवनमे अद्वितीय क्षमतावाली कोई बडी हस्ती नहीं है, इसलिए गाधीजीके 'यग इण्डिया' तथा हरिजन', श्रीमती एनी वेसेण्टके 'न्यू इण्डिया' तथा श्री मुहम्मदअलीके साताहिक पत्रों जैसे अखबार निकलनेकी आशा हम नहीं कर सकते। अब किसी विचार या सिद्धान्तके बजाय जानकारीपर अधिक जोर दिया जाने लगा है और कुल मिलाकर यह शुभावह परिवर्त्तन है। हॉ, इस बातकी सावधानी हमें अवश्य रखनी है कि विचारों और विश्वासोंका स्थान व्यक्तिगत स्वार्थोंको न मिल जाय। १९३०–३१ के बादसे समाचारपत्रोंका स्वामित्व उस मध्य-वर्गके हाथसे निकलकर, जिसमेंसे राष्ट्रके शिक्षक तथा विशिष्ट नेता उत्पन्न होते थे, व्यवसायिवर्गके हाथमे जा रहा है। उत्पादनका व्यय बहुत अधिक बढ जानेके कारण यह काम सामान्य आदमीके बूतेके बाहरकी चीज बन गया है। ऊँचा स्तर बनाये रखना अब पत्र-कार्यालयमे काम करनेवाले लेखकको ईमानदारी एव उच्च नैतिकतापर ही बहुत कुछ अवलम्बित है और अक्सर इस कामका बोझ इतना अधिक होता है कि वह उसे बरदाश्त नहीं कर सकता।

लिखनेकी कला

यह एक तरहसे शैलीका प्रश्न है। जैसे जैसे अग्रेजी भाषाका विशिष्ट ज्ञान कम होता जा रहा है, वैसे वैसे आलकारिक पदावलियों तथा अस्पष्ट अर्थोंवाले शब्दोंका प्रचलन बढता जा रहा है। कुछ लेखक एक ही

लेखमे ऐसे दर्जनो प्रयोग कर सकते है। जो हो, कभी कभी ऐसा लगता है कि इस तरह की आलकारिक भाषा गम्भीर विचारोकी कमीपर परदा डालनेके लिए ही लिखी जाती है। एक वक्र स्वभाव पत्रकारके बारेमे यह बात कही जाती है कि जब उससे पूछा गया कि अपने लेखमे समाविष्ट करनेके लिए तुम आवश्यक जानकारी कहाँसे प्राप्त करते हो, तो उसने जवाब दिया—

"जानकारी? मेरे दोस्त, म सबसे अच्छा लेख तभी लिखता हूँ जब अपने विषयका मुझे कुछ भी ज्ञान नही रहता।"

इस विषयपर तर्क-वितर्क करना व्यर्थ ओर बेमतत्त्व-सा है। आडम्बरपूर्ण भाषा लिखनेवाला इस तरहके प्रयोग करता ही चलेगा—घटाटोपो भयकर, दुरन्तफल, राजाओकी अहमहमिका, सामाजिक कदर्थना, इत्यादि। बहुत कुछ अशमे यही बात अवतरणोके सम्बन्धमे भी लागू होती है। बहुत कम लोग ही यह जानते है कि कान सा अवतरण किस जगह उपयुक्त रूपसे दिया जा सकता है, फिर भी अनेकोकी आदत अवतरण देते रहनेकी पड गयी है क्योकि पाठकोको प्रभावित करनेके लिए ऐसा करना उचित समझा जाता है।

लेखकका जीवन आरम्भ करनेवाले व्यक्तिके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि शब्दोके प्रयोगके सम्बन्धमे सतर्कता एव अनुशासनके सिद्धान्तका कडाईसे पालन करे। लेखकका पथप्रदर्शन करनेके लिए इससे बढकर नियम और कोई नही हो सकता कि उसके मनमे जो भाव या विचार है, उन्हे समझने या उनतक पहुँचनेमे उसके द्वारा प्रयुक्त शब्द पाठकके लिए बाधक न बनने पावे।

ऐसे पत्रकारोसे मुझे कई बार बहस करनी पडी है जो लम्बे लम्बे वाक्यो या लघु वाक्योके प्रयोगपर झगडते रहते है किन्तु यह सब व्यर्थकी चीज है। महत्त्वकी बात यह है कि जब कोई व्यक्ति आपका लिखा सम्पादकीय लेख पढ रहा हो, तब उसका ध्यान (लेखके विषयकी ओरसे हटकर) इस विचारकी तरफ न जाना चाहिये कि आपने कैसे

अच्छे ढगसे उसे लिखा है अथवा अपनेको कितना बडा विद्वान् और जानकार दिखलानेका प्रयत्न आपने किया है। सबसे पहले आपका तर्क उसकी समझमे आना चाहिये और यह जान लेनेमे उसे कठिनाई न होनी चाहिये कि आखिर आप कहना क्या चाहते है, आपका दृष्टिकोण क्या है। सबसे अच्छे लेखके सम्बन्धमे यह धारणा या यह प्रतीति बादमे ही होती है कि उसमे अपने विचार बहुत अच्छे ढगसे प्रकट किये गये है। लेखककी प्रशसाका भाव बादमे ही उत्पन्न होना चाहिये।

फिर भी मै प्रत्येक भारतीय लेखकको उस खतरेकी चेतावनी दे देना चाहता हूँ जो भारतीय पत्रकारोमे उत्पन्न हो सकता है—वह है सीधी और सरल भाषाके नामपर ग्राम्य या विशुद्ध प्रान्तीय शब्दोका प्रयोग करना। हमे अग्रेजी ढगकी कृत्रिम भाषा या अनुपयुक्त मुहावरोका भी प्रयोग न करना चाहिये। उदाहरणके लिए 'मेरे कन्धोंपर इसकी जिम्मेदारी है' के बजाय 'मेरे सिरपर, या मेरे ऊपर इसकी जिम्मेदारी है' बेहतर होगा। शुद्ध, सरल और मुहावरेदार भाषामे लिखना सीखनेमे आपको कुछ देर लग सकती है, किन्तु इससे पाठकोके लिए बडी आसानी हो जाती है।

समाचारपत्रोके प्रसारके कारण भारतीय भाषाओकी शैली अब अधिक सरल और समझने योग्य हो गयी है या होती जा रही है। साहित्यकी भाषा या साहित्यकी शैली और सामान्य व्यवहारकी भाषामे अब अधिक अन्तर नहीं रह गया है। अग्रेजीके लेखोमे भी मै अब लोगोकी प्रवृत्ति यथार्थ स्थितिकी ओर झुकनेकी देख रहा हूँ किन्तु थोडी-सी लापरवाहीके कारण इसमे कुछ बाधा पड रही है। यह सत्य है कि आज पहलेसे अधिक लोगोका यह विश्वास है कि हम कोई लेखादि लिख सकते है। यह बहुत अच्छी बात है बशर्ते कि वे यह भी भलीभाँति समझ ले कि जो कुछ लिखा जाय, स्वाभाविक ढगसे तथा बिना किसी आडम्बरके लिखा जाय।

सम्पादकीय लिखनेका अवसर

यह बात अक्सर कही जाती है कि सम्पादकीय स्तम्भ भारतीय समाचारपत्रोंका सबसे शक्तिशाली अंग है। जो बात अभी स्वीकार नहीं की गयी है, वह यह है कि यही तथ्य भारतीय समाचारपत्रोंकी त्रुटियों या दोषोंके लिए अधिकांशमें जिम्मेवार है। पत्रकारीके पेशेमें घुसनेवाले युवकके लिए आकर्षणकी वस्तु यह होती है कि इसमें किसी भी विषयपर टीका-टिप्पणी करने, किसीकी आलोचना करनेका अवसर मिलता है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि इस देशमें अधिकतर पत्रोंका जन्म किसी न किसी तरहका मत प्रदर्शित करनेके उद्देश्यसे ही हुआ। अतीतकालमें समाचारपत्र एक तरहकी राजनीतिक, सामाजिक या धार्मिक पुस्तिकाका काम देता था। यह तो द्वितीय महायुद्धकी समाप्ति तथा भारतीय स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके बादकी चीज है कि पत्रोंमें समाचार भी यथेष्ट मात्रामें देना आवश्यक समझा जाने लगा।

यह बात संक्रमणकालकी ही सूचक है कि रिपोर्टिंगके काममें तथा समाचारोंका सम्पादन करते समय शीर्षक आदि देनेमें उक्त पुरानी प्रवृत्ति आज भी देख पड़ती है—समाचारोंका विवरण प्रस्तुत करने या उनपर विशेष ढंगके शीर्षक लगानेमें रिपोर्टर या उपसम्पादक अपने विचारोंकी छाप लगा देनेका प्रयत्न करते हैं। जब मैं उपसम्पादकके पदपर काम करता था तब मैं भी इस प्रलोभनसे अपने आपको बचा न सकता था और उस उपसम्पादकके साथ मेरी बड़ी सहानुभूति है जो शीर्षक पंक्तियोंमें अपना मत प्रतिबिम्बित करनेकी चेष्टाके कारण सम्पादककी डॉट फटकार सहता और फिर क्षुब्ध एवं उत्साहहीन सा होकर रह जाता है।

रिपोर्टिंगके लिए जब कभी मुझे थोड़ी-थोड़ी देरके लिए जाना पड़ा है, तब अक्सर मैंने अपने आपको रिपोर्टमें वह एकाध शब्द जोड़ देते पाया है, जिसके कारण जो अर्थ निकलना चाहिये था वह न निकलकर जो मैं चाहता था, वह अर्थ इंगित होने लगता था। मुझे बड़ी खुशी है

कि मैंने खुद ही अपनी यह गल्ती समझ ली जिससे अब दूसरोंको भी इसकी हानि या अनौचित्य समझानेमें समर्थ हो सका।

यह एक दुर्भाग्यकी बात है कि आज यदि आप उस व्यक्तिको जो रिपोर्टर बनना चाहता है यह बात समझा देनेकी चेष्टा करें कि उसके लिए शीघ्रलिपिका जानना आवश्यक है, तो बड़ी मुश्किलसे ही आप इसमें सफल हो सकेंगे। लोगोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि भारतीय पत्रोंके ९० प्रतिशत रिपोर्टर ऐसे हैं जो शीघ्रलिपि नहीं जानते। इसी तरह पत्रकार बननेकी आकांक्षासे प्रेरित ऐसा व्यक्ति मिलना मुश्किल है जो यह बताये जानेपर अपना मुँह न लटका ले कि उपसम्पादक बननेके लिए प्रूफ-संशोधनका काम जानना, कापीमें कर्त्ता-क्रियाका सम्बन्ध ठीक करना, लिंग-सम्बन्धी गलतियाँ सुधारना तथा दूसरोंकी रचनाओंको अच्छी भाषामें पुनः इस तरह लिख देना कि अर्थका अनर्थ न होने पावे और अपनी विवेकशक्तिका प्रयोग करते हुए भी किसीके ऊपर अपनी राय न लादनेका प्रयत्न करना परम आवश्यक है।

इस सारी स्थितिका मुख्य कारण यह है कि दुर्भाग्यवश भारतीय समाचारपत्रोंका प्रारम्भ गल्त ढंगसे हुआ। शायद तत्कालीन परिस्थितियोंमें ऐसा होना अनिवार्य था। प्रारम्भमें समाचारपत्र ही वह जरिया था जिससे सरकारकी नीतिके विरुद्ध भावना प्रकट की जा सकती थी। प्रामाणिक, पुष्ट मत प्रकट करनेका साधन वह बादमें बना। फिर अलग-अलग मत प्रकट करनेके भिन्न-भिन्न साधनके रूपमें उसका विभाजन हो गया। सार्वजनिक मतका सजीव साधन बनना अभी उसके लिए बाकी ही है। इसकी समृद्धिमें जो रुकावट पड रही है, उसका एक निष्क्रिय कारण तो निःसन्देह यही है कि देशमें शिक्षित व्यक्तियोंकी तादाद थोड़ी ही है। दूसरा कारण जो सक्रिय रूपसे इसके लिए जिम्मेदार है, भारतीय पत्रकारीका प्रारम्भ करनेवाले पुराने महानुभावोंका इस बातपर जोर देना है कि पत्रकारी कोई पेशा न होकर जीवनका एक पवित्र लक्ष्य या कर्त्तव्य है।

लेकिन यह मानते हुए भी कि 'पवित्र लक्ष्य' वाली भावना आज भारतीय पत्रोको दबोचे डाल रही है, हम इस बातसे इनकार नहीं कर सकते कि अपनी उत्पत्ति और अस्तित्वके लिए वे वस्तुत. इसी भावनाके ऋणी है। आजके बहुतसे भारतीय पत्र—कमसे कम वे जो सन् १९२०-३० के पहले जन्म ग्रहण कर चुके थे—अपने जन्मदाताओंके हृदयकी पवित्र प्रेरणाके ही कारण अस्तित्वमे आये। किन्तु अब वह युग समाप्त हो चुका है। आजका समाचारपत्र एक बडा उद्योग है, रोजगार है और यदि 'पवित्र लक्ष्य' वाली बात दोहरायी भी जाती है तो केवल इसीलिए जिसमे बहुत-सी आवश्यक साज-सज्जाके सम्बन्धमे मितव्ययितासे काम लिया जा सके। ऐसे समाचारपत्रोकी गणना, जिनके पास सदर्भ-ग्रन्थोका अच्छा सग्रह हो, एक ही हाथ की उँगलियों पर की जा सकती है।

इसके साथ ही अब यह बात अधिकाधिक सत्य प्रतीत होने लगी है कि दृढ विश्वासो और दृढ विचारोवाले लेखक क्वचित् ही देख पडते है। स्वय पत्रकारोमे ही यह धारणा बढती जा रही है कि ऐसे लोग यदि कहा हों भी तो समाचारपत्रोके कार्यालयोमे वे खप नहीं सकते। यथेष्ट जानकारी और दृढ विश्वासके अभावमे आजके औसत लेखकको यान्त्रिक ढगसे सामग्रीका मन्थन कर समाचारपत्रोके 'भूखे' स्तम्भोका पेट भरना पडता है।

अपने यहाँके समाचारपत्रोंके सम्पादकीय स्तम्भोसे एक तरहकी 'असम्बद्ध निरुद्देश्यता' सी टपकती है—मानो जो कुछ लिखा जाता है उसके पीछे कोई दृढ और निश्चित उद्देश्य न हो, इसीसे विचारोमे परस्पर-सम्बद्धता भी नहीं आने पाती। मै समझता हूँ कि हम लोग पत्रकारीके उस 'अन्धकार-युग' से निकल आये है—बिल्कुल हाल्में ही उससे मुक्त हुए है—जब समाचारपत्रोंका काम 'शिक्षार्थी' कार्य-कर्त्ताओंसे चल जाता था। किन्तु अब भी भारतीय समाचारपत्रके सम्पादकीय विभागके पास न इतना समय है और न शक्ति कि वह कुछ लोगोंको इस काममे प्रशिक्षित कर सके। नवीन शिक्षार्थी उस नीरस और बँधे हुए

ढर्रेके कामसे जी उकताता है जो समाचारपत्रोंमे अधिकांश रूपमे करना पडता है। इसके सिवा प्राय यह भी होता है कि काम सीखनेके लिए आये हुए व्यक्तिका ध्यान 'किसी अच्छे कामके लिए कुछ कर डालने' की इच्छा तथा 'कुछ इधर-उधरकी' वाले स्तम्भके आकर्षणके बीच बॅट जाता है।

अन्य किसी भी पेशेमें इतने अधिक परिश्रम और कठिन अध्ययनकी आवश्यकता नहीं पडती, अन्य किसी भी पेशेमें इतने अधिक विषयोंकी तरफ ध्यान नहीं देना पडता और न अन्धाधुन्ध काम करनेके ऐसे अवसर ही आते, साथ ही खेद है कि घोर परिश्रम और गम्भीर अध्ययनके लिए इतना कम पुरस्कार भी अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। मैं यह भी सोचता हूॅ कि हम लोग जो समाचारपत्रोंमे लिखते रहते है, अक्सर यह भूल जाते हैं कि हमारे लिखनेका उद्देश्य यही है कि लोग उसे पढे। आजके अंग्रेजी पत्रोंके बहुतसे लेखकोंका उस भाषाका ज्ञान औसत दर्जेके पाठकोंसे बहुत बढा हुआ है। 'सयुक्त करनाटक' के श्री एच वी मोहरे मुझसे यह कहते कभी नहीं थकते कि इस देशमे अंग्रेजी पत्रोंका समाप्त होना निश्चित है, क्योंकि अंग्रेजीके लेखक यह सीधी-सी बात समझ नहीं पा रहे हैं कि लेखोंमे ऐसे कठिन शब्दोंका प्रयोग करना व्यर्थ है जिन्हे समझना पाठकोंके बूतेके बाहर हो।

देशी भाषाओंके पत्र इस दृष्टिसे विशेष लाभजनक स्थितिमें है क्योंकि वे ऐसी भाषाका प्रचलन कर रहे हैं जो बोलचालकी भाषासे बहुत कुछ मेल खाती है। प्राचीन कालकी तुलनामें यह एक नया परिवर्त्तन हम देख रहे हैं। फिर भी मै नहीं समझता कि समस्या इतनी सरल है जितनी ऊपरसे देखनेपर जान पडती है। दोष वस्तुत ऐसे लेखकोंका है जिनके पास विचारों और तथ्योंकी कमी है, इसीसे वे ऐसी भाषा लिखनेको विवश हो जाते है जिसे समझनेमे लोगोंको कठिनाई हो। देशी भाषाके पत्रोंको यदि ऐसी स्थितिका सामना अभी नहीं करना पड रहा है तो देर, सबेर उन्हे भी यही दिक्कत उठानी पडेगी। सम्पादकीय लेखोंमे

जनताकी अभिरुचि तभी बनी रह सकती है जब उनमें सचाई, अर्थकी सरलता और ठीक प्रभाव प्रकट करनेकी क्षमताका समुचित ध्यान रखा जाय।

अभी दस बारह वर्ष पहलेतक ऐसे पत्रकार देख पड़ते थे जो पत्रकारीके सब क्षेत्रोंकी जानकारीसे शून्य होते थे। वे अग्रलेख तथा टिप्पणियोंके लेखक होते थे जो अपना क्षेत्र इस कामतक ही सीमित समझते थे और जो बहुधा किसी एक विषयकी विशेष योग्यता प्राप्त कर लेते थे। बहुतसे समाचारपत्रोंके प्रकाशित होने लगने तथा प्रतिस्पर्द्धा बढ़ जानेके कारण अब यह बात बिल्कुल गायब हो गयी है और अभिरुचियोंका क्षेत्र अधिक विस्तृत हो गया है एवं लेखोंकी गम्भीरता (गहराई) भी कम हो गयी है। फिर भी पत्रकारीकी प्राविधिक बातें सीखनेका मानसिक प्रतिरोध कितने ही स्थानोंमें अभीतक विद्यमान है। कितनी बार तो ऐसा होता है कि कोई लेखक इस भयसे पत्रकार नहीं बनना चाहता कि कहीं ऐसा करनेसे उसका लेखादि लिखना ही बन्द न हो जाय।

ज्यों-ज्यों सम्पादकके जिम्मे प्रशासनका काम अधिक बढ़ता जा रहा है, त्यों-त्यों सहायक सम्पादक यह समझने लगे हैं कि लेखादि लिखनेका भार उन्हींपर अधिकाधिक पड़ता जायगा। यह अत्यन्त संकुचित दृष्टिकोण है, क्योंकि कई कारणोंसे भारतमें सम्पादकीय लेखोंके लिए सीमित क्षेत्र ही रह जायगा। समाचारपत्रोंकी शृंखलाएँ स्थापित हो जाने तथा पत्रों सम्बन्धी शैल्पिक एवं प्राविधिक विकासके कारण अन्य विभागों या कार्योंका महत्त्व बढ़ जायगा। समाचारपत्र कार्यालयके बाहर जीवनके प्रत्येक विषयके ऐसे विशेषज्ञ मौजूद हैं जो अपने विचार जनताके सामने रखनेको तैयार ही नहीं, उत्सुक भी हैं। एक-एक विषयकी विशेषज्ञता इतनी तेजीसे बढ़ रही है कि समाचारपत्रके (सम्पादकीय) लेखकका सर्वाधिक महत्त्व इस बातमें है कि वह कितनी योग्यतासे इन विषयोंके सामान्य ज्ञानवाले व्यक्तिका दृष्टिकोण विशेषज्ञ लेखकोंके सामने रखनेमें

समर्थ होता है। यह बडे उत्तरदायित्वका काम है। विशेषज्ञ न होनेके कारण हम सभी लोग उन कठिनाइयोंको समझ सकते हैं जो इन विशेषज्ञो द्वारा किये जानेवाले दावोंके कारण तथा उनके इस आग्रहके कारण उत्पन्न होती है कि हमारी और केवल हमारी ही बात सुनी जानी चाहिये। किन्तु इसका एक दूसरा पहलू भी है।

ओरटेगा ई गैसेटने कहा है—"आजका लेखक जब किसी ऐसे विषयपर लिखनेके लिए लेखनी उठाता है जिसका उसने गम्भीर अध्ययन किया है, तब उसे यह बात ध्यानमे रखनी चाहिये कि औसत दर्जेका पाठक, जिसने कभी इस विषयका ज्ञान प्राप्त करनेकी चेष्टा नहीं की, यदि इस तरहका लेख पढता है तो इस गरजसे नही पढता कि लेखकसे वह कोई बात सीख सकेगा वरन् उसका इरादा यही रहता है कि मामूली रोजमर्राकी बातोमे जहाँ लेखक उसकी धारणाओंके विपरीत बाते कहता नजर आये, वहाँ उसे आडे हाथो लिया जाय।"

अतिविज्ञता और अनभिज्ञता, विशिष्ट ज्ञान और अज्ञानके इन दो छोरोंके बीच मेल करानेके लिए ही समाचारपत्रको प्रयत्नशील होना चाहिये। यद्यपि समाचारपत्रमे काम करनेवाले प्रत्येक व्यक्तिका सहयोग इस कार्यमे अपेक्षित है, फिर भी विशेष दायित्व उनपर है जो उसमे लेख लिखते हैं। और इस कामके लिए कोई भी व्यक्ति अच्छी सामान्य शिक्षा तथा बराबर अध्ययन करते रहनेकी प्रवृत्तिसे बढकर और किसी साधन या उपकरणकी आशा नहीं कर सकता।

९—मासिक पत्रोंका सम्पादन

मासिक पत्रके सम्पादकको अपने परिश्रम और अपनी कुशलताका फल पाठकोंके सामने रखनेके लिए कमोबेश तीस दिनका समय मिलता है, जब कि दैनिक पत्रमें २४ घण्टेसे भी कम और साप्ताहिकमें सात दिनका समय रहता है। इसलिए इसमें काम उतनी तेजीसे नहीं करना पड़ता किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि मासिक पत्रका योग्यतापूर्ण एवं उच्च श्रेणीका उत्पादन करनेके लिए किसी तरहसे कम उग्र प्रयत्नकी आवश्यकता है।

अवश्य ही मासिक पत्रोंके भी कई भेद होते हैं, विद्वत्समाजके विचारशील एवं दुरूह पत्रोंसे लेकर, जिनमें विज्ञान या साहित्यादिकी चर्चा रहती है, कथा-कहानियोंके चमक-दमकवाले मनोरंजक पत्रतक जो फुरसतके समय मनबहलावके लिए पढ़े जाते हैं। इन दोनोंके बीचमें वे गम्भीर मासिक पत्र आते हैं जो राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक विषयोंकी सामयिक समीक्षा किया करते हैं, सम्पादकीय लेखों द्वारा भी तथा विशेष जानकारीका दावा करनेवाले लेखकोंकी रचनाओं द्वारा, और इस प्रकार पाठकोंके विचार करनेके लिए सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

इन सम्पादकीय लेखोंमें, दैनिकोंकी तुलनामें, काफी अधिक गम्भीरता होनी चाहिये, तभी ये पाठकके लिए उपयोगी हो सकते हैं। प्रत्येक मामलेमें पृष्ठभूमिका संक्षिप्त पर्यवलोकन, साथ ही कारणभूत तत्त्वोंका सही-सही विश्लेषण होना आवश्यक है और फिर इनके आधार-पर ही वर्तमान घटनाओंके निश्चित रुखका अन्दाज लगाया जा सकता है। समसामयिक घटनाओंके समाचारों तथा विचारोंकी मासिक समीक्षा-के लिए केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है कि सर्वसाधारणकी, या यों कहिये कि दल-विशेषकी रायका प्रतिफलन कर दिया जाय। वास्तवमें

इस तरहके मासिक पत्रको तो, उपयोगी एवं शिक्षात्मक होनेके लिए, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि उसमें हर तरहके विचार बिना किसी रुकावटके प्रकाशित किये जा सकें और बड़ी सावधानीसे उन सबका संतुलन किया जाय। आजकलकी दुनियामें अक्सर यह होता है कि दल-विशेषकी ही राय 'सर्वसाधारणकी राय' कहकर प्रचारित की जाती है, विशेषकर वहाँ जहाँ राजनीतिक सत्ताका प्रश्न उपस्थित रहता है।

दूसरोंसे प्राप्त लेखोंके सम्बन्धमें भी इसी तरह सावधानीसे विचार किया जाना चाहिये, जिससे विशेषज्ञकी हैसियतसे प्रकट की गयी राय बिलकुल एकतरफा या वस्तुस्थितिसे बहुत दूर न हो। हास्यरसके एक अमेरिकन लेखकने विशेषज्ञकी परिभाषा देते हुए कहा है कि वह ऐसा व्यक्ति है जो 'कमसे कम वस्तुके सम्बन्धमें क्रमशः अधिकसे अधिक ज्ञान प्राप्त करता रहता है।" इसे हम अतिरंजित कह सकते हैं, फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि विशेषज्ञकी दृष्टि, बँधे हुए क्षेत्रके छोटेसे छोटे ब्योरेपर ध्यान संकेन्द्रित करनेके कारण, क्रमशः संकुचित-सी होती जाती है। इसी तरह उन विद्वान् लेखकोंकी बात लीजिये जिनकी विद्वत्तामें अणुमात्र भी सन्देह नहीं, किन्तु जिनकी राय पहलेसे विद्यमान विरोधी भावना या पक्षपातयुक्त भावसे रँगी हुई रहती है। इन बातोंपर तथा ऐसी ही अन्य कतिपय बातोंपर अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिये, तभी कोई लेख संश्लिष्ट विषयपर प्रामाणिक रचनाके रूपमें प्रस्तुत किया जा सकता है।

निर्णयका मुख्याधार

इसलिए यह बात स्पष्ट है कि मासिकपत्रके सम्पादकको मुख्यरूपसे यह देखना पड़ता है कि जो सामग्री प्रकाशित की जा रही है वह गम्भीर तथा उच्च कोटिकी हो, भले ही उसमें विषयका विस्तार अधिक न हो। दैनिक पत्रका प्रधान लक्ष्य प्रायः सभी ताजासे ताजा समाचार और मतामत थोड़ेमें किन्तु कोई भी महत्त्वपूर्ण तथ्य छोड़े बिना प्रकाशित करना है। उसके सम्पादकीय लेखोंसे यह प्रकट होता है कि उक्त समाचारों या

विचारोंके एक या एकसे अधिक महत्त्वपूर्ण विषयोंकी क्या प्रतिक्रिया दलविशेषपर हुई, फिर वह क्षणस्थायी ही क्यों न हो।

इसके विपरीत, मासिक पत्रमें क्षणिक प्रभावोंकी चर्चाको गौण और अधिक स्थायी परिणामोंको महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि मासिकपत्रके सम्पादकको एक तरहसे दीर्घदर्शी होना चाहिये—समाचारकी दृष्टिसे जिन घटनाओंका मूल्य हो, उनकी तात्कालिक प्रतिक्रियाका विशेष विचार उसे न करना चाहिये। उसका मुख्य काम घटनाओं तथा विषयोंकी ऐसी संतुलित तथा यथार्थ समीक्षा प्रस्तुत करना है जिसपर जनताका जानकारवर्ग अच्छी तरह और आलोचनात्मक दृष्टिसे विचार कर सके। जनताकी सामूहिक मनोवृत्ति उकसानेका प्रयत्न, उसके अधिक स्थायी प्रभावोंका पर्यवलोकन करनेके सिवा, उसे न करना चाहिये, क्योंकि उसका कर्त्तव्य परिष्कृत भोजन करनेवालोंकी सेवा करना है, जो भी सामने आजाय उसे खा जानेवाले पेटुओंकी नहीं।

किन्तु इतना सब होते हुए भी उसे प्रचारके प्रश्नपर भी विचार करना पड़ता है। विद्वत्सभाओंके मुखपत्रोंको छोड़कर अन्य सभी मासिक पत्रोंको सार्वजनिक सहायतापर ही अवलम्बित रहना पड़ता है, अत प्रचारका प्रश्न प्रत्येक मासिक पत्रके अस्तित्वकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है। ऐसी स्थितिमें भिन्न-भिन्न तरहके पाठकोंको आकर्षित करनेके लिए विभिन्न विषयोंके लेख उसमें होने ही चाहिये। इनका स्वरूप साहित्यिक निबन्धों, कथा-कहानियां, ललितकलाओं या नाटक, खेल कूद आदिकी आलोचनाओंका हो सकता है। सम्पादकको अपने पाठकोंकी विभिन्न रुचियोंका खयाल रखना चाहिये और जो लेख उसे उपलब्ध हों, उनमेंसे उपयुक्त सामग्री इकट्ठी कर प्रकाशित करना चाहिये। यदि उसने उचित निर्णय किया तो ग्राहकसंख्या बढ़ने लगेगी, नहीं तो उसका घटना अवश्यम्भावी है।

इसलिए मासिक पत्रके सम्पादककी परेशानी बढ़ानेके लिए अनेक

वस्तुएँ हैं ओर इसकी एक बड़ी वजह यह है कि दैनिक पत्रोंके सम्पादककी तुलनामें उसकी जिम्मेदारी या कामका विभाजन बहुत थोड़ा ही होता है। उसके पत्रके लिए उसकी निर्णायक बुद्धि, आलोचनात्मक क्षमता तथा विषयोंकी जानकारीका बहुत अधिक महत्त्व है।

मासिकपत्रपर उसके सम्पादकके व्यक्तित्वकी छाप, अनेक दैनिकपत्रोंकी तुलनामें काफी अधिक परिमाणमें दिखाई देती है। और इसमें वे सभी तत्त्व मौजूद रहते हैं जो सम्पादककी आत्माके सन्तोष या असन्तोषके कारण बनते हैं। मासिक पत्रमें लेखोंका प्रवेग अधिक सयत होता है, अत उत्तेजना या उत्साह उस तरह चरम बिन्दुपर नहीं पहुँच पाता जैसा कि दैनिकपत्रके खास समाचारसे होता है। किन्तु सार्वजनिक महत्त्वके सब मामलोंमें कारणभूत तत्त्वोंका निश्चय करनेमें, रोगोंका निदान करनेवाले चिकित्सककी तरह, चिन्ता होती है और साथ ही गहरा सन्तोष भी होता है, जब यह पता चल जाता है कि जो निष्पत्ति निकाली गयी थी वह सही निकली तथा जो मत प्रकाशित किया गया था वह उचित एव महत्त्वपूर्ण साबित हुआ।

पाठकवर्गके अधिक विचारशील अगको प्रभावित कर या उसकी जानकारी बढाकर ही मासिक पत्र जनताका समर्थन प्राप्त करता है। इसलिए चटोर जीभोंके लिए चटपटी चीजे मुहैय्या करनेका—लेखोंमें सनसनीखेज बातें लिखनेका—सवाल ही नहीं उठता। अत उत्तेजनाके उत्थान-पतनके वैसे ऊँचे शिखर या गहरी नालियाँ इसमें शायद ही कभी देख पडती हों जैसी दैनिक पत्रमें दिखाई देती है। मासिक पत्रके सम्पादकके हृदयमें जो तरगें उठती हैं, उनकी गति अधिक मन्द होती है किन्तु मोटाई-चौडाईमें वे बढी हुई होती है।

इसके सिवा मासिकके सम्पादकको नये लेखकको ढूँढ निकालनेकी भी बडी खुशी होती है। मासिक पत्रमें जगहकी तथा सम्पादकीय आलोचनाकी काफी गुञ्जाइश रहती है जिससे प्रारम्भिक लेखकको बडी मदद मिलती है। सभी प्रसिद्ध लेखकोंके लिए साहित्यिक लेखो तथा कथा-

कहानियोंके प्रकाशनका मुख्य जरिया मासिक पत्र ही है और यही बात समस्त सांस्कृतिक विषयोंके सम्बन्धमें कही जा सकती है।

पाण्डुलिपियोंका चुनाव

कहानी आदिकी पत्रिकाओंके सामने मुख्य प्रश्न रहता है प्रसिद्धि-प्राप्त लेखकोंसे कहानियाँ प्राप्त करना, पत्रिकामें लिखनेके लिए उन्हें राजी करना। लघुकथा-लेखनकी उन्नतिका बहुत कुछ श्रेय मासिक पत्रके सम्पादकको है। अनुभवी सम्पादक कहानीकी खूबियोंको शीघ्र ही ताड़ लेता है और यह भी समझ लेता है कि उनका चित्रण या स्थापन इस ढगसे हुआ है कि नहीं जिसमें पाठकका मन कहानी पढ़नेमें यथेष्ट तीव्रतासे उलझ जाय।

इसके सिवा, कहानीमें कतिपय औचित्य सम्बन्धी नियमोंका भी अनुपालन होना चाहिये जिससे पाठकके मार्मिक भावोंपर आघात न हो किन्तु फिर भी उसकी कल्पनाशक्तिको उत्तेजन मिल सके। पाठकके हृदयमें भावोंके जगानेका प्रयत्न तो होना ही चाहिये किन्तु शिष्टता, शालीनताके साथ। लेखकको समझानेका प्रयत्न करते समय सम्पादकको बड़ी चतुराईसे काम लेना पड़ता है, क्योंकि कहानी लेखकोंको प्राय थोड़ी ही बातमें बुरा लग जाता है।

कहानीकी पत्रिकामें क्रमश प्रकाशित की जानेवाली कहानी भी चलती है। इसका प्रारम्भ किसी असाधारण वार्त्तालापसे किया जाना चाहिये या ऐसी किसी स्थितिसे जिसकी ओर पाठकका ध्यान तुरन्त खिंच जाय। फिर क्रमिक कथाकी प्रत्येक किस्तके साथ कथानकका इस तरह विकास होना चाहिये जिससे या तो पाठककी कल्पनाशक्तिको उत्तेजन मिले या जिससे उसके मनमें चिन्ताकी अथवा अनिश्चयकी स्थिति बनी रह जाय। मासिक पत्रिकाके सम्पादकके लिए ऐसी क्रमिक कहानी नहा चाहिये जिसके कथानक (प्लॉट) का विकास बहुत धीरे-धीरे तथा बहुत घुमाव-फिरावके बाद हो। उसकी मुख्य आवश्यकता तो इतनी ही है कि पाठक उत्सुकतापूर्वक अगला अंक प्रकाशित होनेतक प्रतीक्षा करता रहे।

आयी हुई रचनाओंके ढेरकी छानबीन करते रहना पड़ता है जिससे ऐसे लेख छाँटे जा सकें जिन्हें सुधारकर पत्रमें स्थान दिया जा सके। यदि कोई लेख कमोबेश मात्रामें कामके लायक प्रतीत हुआ तो फिर दूसरा काम लेखकको सुझाये हुए परिवर्तन स्वीकार करनेके लिए राजी करना है। लेखक मंजूर कर ले तो फिर परिणाम सुखद होता है।

लेखकों, आलोचकों आदिका चुनाव करना मुख्य रूपसे मासिक पत्रोंके सम्पादकोंका ही काम है। जब किसी प्रसिद्ध मासिक पत्रिकामें दो चार रचनाएँ प्रकाशित हो जानेपर किसी व्यक्तिका लेखक होना स्वीकार कर लिया जाता है, तब उसके लिए कीर्त्तिका रास्ता खुल जाता है और उसकी भावी उन्नति निश्चित हो जाती है। मासिक पत्रका सम्पादक ही वह व्यक्ति है जिसके हाथमें इसकी कुंजी रहती है।

पत्रिकाका उत्पादन

मासिक पत्रों तथा सब तरहके नियतकालिक पत्रोंके उत्पादनमें कई बातें समान रूपसे पायी जाती हैं। सम्पादकको चाहे उसका पत्र किसी भी तरहका क्यों न हो, इन सब बातोंसे परिचित होना चाहिये। सबसे पहली बात तो उस पत्रका आकार है जिसका सम्पादन वह करता हो। प्रत्येक अंकमें आकार तथा पृष्ठसंख्या सम्बन्धी बन्धनोंसे सम्पादक बँधा रहता है, केवल उस समयको छोड़कर जब कोई विशेषांक उसे निकालना होता है। विशेषांकका भी आकार, पृष्ठसंख्या आदि जैसा रखनेका विचार हो, उसका निश्चय बहुत पहलेसे हो जाना चाहिये। जब निश्चय हो जाय तब सम्पादकको उन प्रतिबन्धनोंसे अपने आपको बँधा हुआ समझना चाहिये।

आकार और पृष्ठसंख्या निश्चय हो जानेके बाद सम्पादकको इस बातका प्रयत्न करना चाहिये कि उसके पत्रमें जितना स्थान है, उसका उपयोग बहुत ही योग्यतापूर्वक किया जाय। उसका पत्र चाहे जिस तरहका हो, उसमें अधिकारी व्यक्तियों द्वारा लिखे हुए तथा दिलचस्पीसे

पढे जाने लायक लेख होने चाहिये जिससे उस ढगके पाठक आकर्षित हो सके जिनके लिए उक्त पत्र निकाला गया हो।

स्थानका प्रश्न दैनिककी अपेक्षा साप्ताहिकमे कम उठता है और उससे भी कम मासिकमे। किन्तु पाठक ऊब न उठे इस दृष्टिसे लेख यथासभव छोटा ही होना चाहिये, फिर भी उसमें सभी आवश्यक बातों-की चर्चा आ जानी चाहिये जिससे उसे पढ चुकनेके बाद पाठकको सन्तोष हो सके। पाठकका जी भी न ऊबने पावे और न उसको इस बातकी ही प्रतीति होने पावे कि लेखका पढना बेकार हुआ।

यहाँ यह बात समझ लेनी चाहिये कि बहुतसे लेखक इन सब दृष्टियोंसे अपनी रचनाओंका मूल्याकन करनेमे असमर्थ होते है और यहीं सम्पादकका सबसे आवश्यक कर्त्तव्य शुरू होता है। लब्धप्रतिष्ठ लेखकों द्वारा लिखे गये लेखोंको पढकर, उनके आधारपर, लेखोंकी अच्छाई, बुराईके सम्बन्धमें निर्णय कर सकनेकी आदत उसे डालनी चाहिये। छोटे किन्तु अपनेमें पूर्ण लेखोंकी इन विशेषताओंकी ओर उसे पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिये और जिस किसी भी लेखको वह प्रकाशित करना चाहता हो, उसे प्रेसमें देनेके पहले इसी कसौटीपर कसकर देख लेना चाहिये।

सभी लेखोंमें चाहे वे विज्ञानपर हो या राजनीतिपर, यहाँतक कि कहानियो आदिमें भी, सबसे अधिक वाछनीय गुण जो देखा जाना चाहिये यह है कि प्रयुक्त शब्दावलीसे ठीक-ठीक और सही अर्थ निकल आता है या नहीं। यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये कि सम्पादकका मुख्य कर्त्तव्य पाठकके प्रति होता है, इसलिए उसे अपना पत्र सुपाठ्य एव मनोरजक ही नहीं वरन् उपयोगी भी बनाना चाहिये। कोई भी पाठक एक छोटी-सी बात कहनेके लिए प्रयुक्त तथ्यहीन और निरर्थक वाक्य पढनेमें अपना समय बरबाद नहीं करना चाहता और न उसे यही पसन्द आ सकता कि लम्बे-लम्बे तीन पैराग्राफ पढ लेनेके बाद कहीं जाकर मतलबकी बात समझमे आवे। एक जमाना था जब आदमी

लेखनकलामें अपनी इस योग्यताकी डींग मार सकता था कि शब्दोंको बटाकर वाक्योंमें और वाक्योंको अनुच्छेदोंमें परिणत कर देना उसके बायें हाथका खेल है किन्तु वे दिन अब बीत गये। आजका पाठक तो जल्दीसे जल्दी मुख्य बातपर पहुँच जाना चाहता है। विशेषता बतानेवाले केवल उन शब्दों या शब्दसमूहोंको ही पढनेके लिए वह तैयार रहता है जो विषयको अच्छी तरह समझाने या उसका पूरा वर्णन करनेके लिए आवश्यक हैं।

कहानियों या उपन्यासोंमें भी आजका पाठक नायक-नायिकाके गुणोंका लम्बा और थका देनेवाला वर्णन नापसन्द करता है। कोरा वर्णन करनेकी अपेक्षा उन्हें कोई काम करते दिखाना उसे ज्यादा अच्छा लगता है। पात्रोंके सम्बन्धमें वह स्वयं ही अपनी राय कायम करना चाहता है, लेखककी गैरमामूली सहायताकी जरूरत उसे नहीं।

सम्पादकको मुख्य रूपसे अपने पाठकका और अपने पत्रका खयाल करना पडता है, इसलिए उसे लेखकको इस बातके लिए राजी करनेका प्रयत्न करना चाहिये कि वह अपने लेख या कहानीको या तो स्वयं कुछ संक्षिप्त कर दे या जहाँ संभव हो वहाँ सम्पादकको ही ऐसा करनेकी अनुमति दे दे। गम्भीर विषयोंके लेख यदि अधिक लम्बे होते हैं तो उनसे विशेष रूपसे तबीयत ऊब उठती है और पाठकका मन, यदि उसपर अधिक दबाव पडता है तो, उससे हटने लगता है। इसलिए सम्पादकको प्रत्येक लेखका, उसके गुणोंके अनुसार महत्त्वमापन करना पडता है और तब इस बातका निश्चय किया जाता है कि उसे पत्रमें कितना स्थान दिया जाय।

विषय-विभिन्नता आवश्यक

प्रत्येक पत्रको पाठकोंके अधिकसे अधिक बडे समूहको, जहाँतक सम्भव हो, खुश करनेका प्रयत्न करना पडता है, इसलिए प्रत्येक अंकमें विविध विषयोंका समावेश होना आवश्यक है। तात्पर्य यह है कि समालोचना, टीका-टिप्पणी, तथा मनोरंजक बातों आदिके लिए निर्धारित

पृष्ठोंके सिवा शेष भागमें विभिन्न विषयोंके दो-तीन या अधिक मुख्य लेख अथवा कहानियाँ होनी ही चाहिये। प्रबन्ध-विभागके लोग कभी-कभी ऐसे लेख प्रकाशित करनेपर भी जोर देने लगते हैं जिनसे या तो पत्रकी बिक्री बढे या विज्ञापन प्राप्त हो। इसी तरह पाठक नयी जानकारी (नयी बातोंका ज्ञान) भी प्राप्त करना चाहता है या नयी प्रेरणा चाहता है अथवा केवल मन-बहलाव, जैसा उसका जी चाहे। इसलिए सपादकको विभिन्न रुचियोंकी परितृप्तिका ही उपाय नहीं करना पडता वरन् उन बातोंकी ओर भी ध्यान देना पडता है जिन्हे व्यवस्था-विभाग आवश्यक समझता हो।

इन सब बातोंका मतलब यह हुआ कि पत्र या पत्रिकाकी एक-एक इञ्च जगहका भरपूर उपयोग होना चाहिये ओर इसीलिए लेखोंकी व्यवस्थाका प्रश्न सामने आता है।

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि सम्पादकको बडी चतुराईसे काम लेना पडता है, क्योंकि ऐसे बहुतसे लेखक तथा ग्रन्थकार है—इनमे कई बडे प्रसिद्ध होते है—जो अपनी लेखनीसे निकले प्रत्येक शब्दको बहुमूल्य समझते हैं और जिन्हे अपनी रचनामेंसे एक वाक्यका भी हटा दिया जाना बहुत बुरा जान पडता है। सम्पादकको अनुभवसे यह बात सीखनी पडती है कि ऐसे लेखकोंको किस तरह मनाया जाय या कैसे उनसे बचा जाय।

पाठकोंको आकर्षित करना

दूसरी चीज जिस पर सम्पादकको विचार करना पडता है, पाठकका ध्यान अपने पत्रकी ओर खींचनेका प्रश्न है। इसका मतलब यह हुआ कि किसी एक अकके लिए चुने गये लेखो या कहानियोंमे जो सबसे अधिक मनोरजक या दिलचस्पीसे पढे जाने योग्य हो, उसे ही प्रमुख स्थान मिलना चाहिये और यदि आवश्यकता हो तो उसके लिए अधिक जगहकी भी गुजाइश की जा सकती है। 'अधिक जगहकी गुजाइश' से मेरा सकेत प्रत्येक पत्रकी अपनी परम्परा या चल पडी हुई प्रथाकी

ओर है। वस्तुत होता यह है कि प्रत्येक पत्रके सम्पादकीय विभागके सदस्य आपसमें तै कर लेते हैं कि विभिन्न विषयों या विभिन्न स्तम्भोंके लिए कितना स्थान सुरक्षित रखा जाय। इस समझौतेके अभाव-में सम्पादन करने और प्रूफ आदि देखकर लेखोंका क्रम या स्थान ठीक करनेमें प्राविधिक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं और पत्रका अंक छापकर तैयार करना भी मुश्किल हो जाता है।

उदाहरणके लिए अब यह आम रिवाज हो गया है कि पत्रिकाके प्रत्येक अंकमें, विशेषकर कहानीके साथ और शैल्पिक या यात्रा-सम्बन्धी लेखोंके साथ, चित्र अवश्य दिये जायँ। इन चित्रोंका मतलब हुआ कि फोटोग्राफरों या चित्रकार द्वारा बनाये गये चित्रों तथा व्यंग्य चित्रोंमें लाइन या हाफटोन ब्लाक तैयार कराये जायँ। अब यह स्पष्ट है कि इन चित्रोंको छापनेके लिए, इन्हें सजानेके लिए तथा इनके इधर उधर हाशिया छोड़नेके लिए काफी स्थान चाहिये। फिर सचित्र लेखोंको पत्रके महत्त्वपूर्ण भागमें रखना आवश्यक है जिससे समुचित रूपसे उनका प्रदर्शन किया जा सके। इन सचित्र रचनाओंके पहले या पीछे आनेवाले लेखोंके सम्बन्धमें यह प्रयत्न करना पड़ता है कि इनका कोई अंश उक्त रच-नाओंके लिए सुरक्षित जगहमें न आने पावे, अत इन्हें आवंटित स्थानके भीतर ही आ जाना चाहिये।

दैनिककी अपेक्षा मासिक या सामयिक पत्रमें भाषाका प्रश्न अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। इसलिए पत्रमें लिखे गये लेखों या सम्पादकीय टिप्पणियों आदिकी भाषा स्पष्ट और प्रसादगुणयुक्त हो, इस सम्बन्धमें मासिक या सामयिक पत्रके सम्पादककी अधिक जिम्मेदारी होती है। सम्पादकको प्रत्येक लेखपर सामान्य पाठककी दृष्टिसे विचार करना चाहिये। उसे देख लेना चाहिये कि लेख अच्छी तरह समझमें आ जाने लायक है या नहीं, क्योंकि दैनिकमें भले ही दृष्टि या अशुद्धि सम्बन्धी भूल क्षन्तव्य मान ली जायँ, किन्तु कोई वजह नहीं कि मासिक या सामयिक पत्रमें वे छूट जायँ जहाँ उन्हें सुधारनेके लिए कर्मचारिक

सम्पादकोंने ऐसा किया है किन्तु परिणाम भयंकर हुआ है। पत्रकारीके क्षेत्रमें ऐसे महान् मासिक पत्रोंके नाम भरे पड़े हैं जिन्होंने अपने युगके साहित्यिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवनके निर्माणमें सहायता पहुँचायी है। फिर भी वे सब समाप्त हो गये, क्योंकि जिन महान् सम्पादकोंके प्रयाससे उन पत्रोंने चरम उन्नति की थी, उनके उत्तराधिकारी ऐसे व्यक्ति हुए जिन्हें चिन्ताओंसे रहित शान्त और स्थिर जीवन, जिसमें कोई हलचल न हो, अधिक पसन्द था। मासिक पत्रका सम्पादक, पत्रकारीके क्षेत्रमें काम करनेवाले अपने किसी अन्य सहयोगीकी ही तरह, यह नहीं कह सकता कि 'अब सब काम बँधे हुए ढर्रेपर चलता जायगा।' यदि वह ऐसा करता है तो अपने लिए मानो भारी खतरा मोल लेता है। मासिक पत्रके सम्पादककी दुनिया अशान्त दुनिया है और उसकी आत्मा अपने अन्य सब बन्धुओंसे अधिक अशान्त रहती है।

भाग तीन

सम्बन्धित क्षेत्र

---

१० जन-सम्पर्क तथा जन-संवेदन

भारतमे अभी जन-सम्पर्क तथा प्रचार सम्बन्धी कार्याकी प्रारम्भिक अवस्था ही है। अमेरिकन स्युक्त राष्ट्रमे ये दोनो विलकुल स्वतंत्र काम बन गये है। ब्रिटिश सयुक्त राज्यमे, यूरोपके अनेक देशोमे तथा दक्षिण अमेरिकामे ये दोनो विज्ञापन प्रसारित करनेवाली दुनियाके महत्त्वपूर्ण अग है। किन्तु भारतमे उनकी सभावनाओकी कल्पना भी अभी मुश्किलसे की जा सकी है।

इसीसे वे क्या है, प्रवर्त्तन, विज्ञापन और प्रचारसे उनका सम्बन्ध क्या है, इस सम्बन्धमे बडी गडबडी चल रही है। इसलिए यहाँ इन दोनो क्रिया कलापोमे, जो परस्पर बहुत मिलते जुलते है, तथा जो अपनी अभीष्ट सिद्धिके लिए प्राय ही समाचारपत्रोका सहारा लिया करते है, अन्तर दिखलानेकी चेष्टा की जा रही है।

प्रवर्त्तन (प्रोमोशन) वह क्रिया कलाप है जिसका अभिप्राय जनताको आकर्षित करना है तथा जिसका परिणाम कोई व्यापारिक लेन-देन —बिक्री आदि—हो।

प्रचार कार्य, (प्रोपैगैण्डा) 'इन्स्टिट्यूट फॉर प्रोपैगैण्डा एनालिसिस" द्वारा दी गयी परिभाषाके अनुसार, पूर्व निश्चित लक्ष्याके सम्बन्धमे पृथक्-पृथक् व्यक्तियो या व्यक्ति-समूहो द्वारा प्रकट की गयी वह राय या वह कार्य है जिसका लक्ष्य स्पष्टत दूसरोकी राय या कार्योको प्रभावित करना हो।

संचार साधनोंकी सहायतासे जनताको या विशिष्ट जन-समूहको तथ्योंकी तथा उन्हें प्रकट करनेवाले मतोंकी जानकारी कराना ही जन-संवेदन (पब्लिसिटी) है। जन-संवेदन जन-सम्पर्कका एक साधन या जरिया है।

संविज्ञापन (प्रेस एजेन्ट्री) जनसंवेदनसे अधिक व्यापक अर्थका द्योतक है। इसका भी लक्ष्य जनतामें तथ्योंका प्रचार करना ही है। समाचारपत्रोंमें ध्यान खींचनेवाली, आकर्षक बात प्रकाशित कराना भी इसमें शामिल है।

विज्ञापन करना एक तरहसे छपवाकर और बोलकर बिक्री करानेका कार्य है। इसमें समाचारपत्रों, मासिकपत्रों, रेडियो, विज्ञापनपट्टों (बिल बोर्ड्ज), विज्ञापन पत्रकों (पोस्टर्स) और छपे हुए परचों आदिका सहारा लिया जाता है। डाक्टर लारेंस आर० कम्पेल्के अनुसार "किसी विश्वास, माल-मत्ता या सेवाएँ बेचनेके लिए व्यापारिक सन्देश भेजने, पहुँचानेको ही विज्ञापन कहते हैं।' इस विषयकी विस्तृत चर्चा पुस्तकमें अन्यत्र की गयी है।

जन-सम्पर्क

जो लोग जन-सम्पर्कका कार्य करते हैं, वे कोई संदेश, यथासम्भव तथ्यपूर्ण सन्देश, सामान्य जनता या विशिष्ट जनतातक पहुँचाना चाहते हैं। इसी लक्ष्यसे वे अपने क्रियाकलापोंकी व्यवस्था करते हैं। वे वह सम्बन्ध समझ लेना चाहते हैं जो किसी संस्थाकी सेवा करनेवालों तथा उसके द्वारा सेवित व्यक्तियोंमें विद्यमान हो। प्रत्येक व्यक्ति तथा प्रत्येक संस्थाको यह विदित है कि आसपासकी स्थितिपर इनका क्या प्रभाव पड़ता है।

उदाहरणके लिए सरकारको इस बातकी सूचना मिलती रहनी चाहिये कि उसकी कार्य पद्धतियोंकी क्या प्रतिक्रिया जनतामें होती है। यदि वे कार्यविधियाँ मूलरूपसे स्वस्थ या निर्दोष नहीं हैं तो सरकार अपनी योजनाओंको कार्यान्वित करनेमें असफल ही न हो जायगी, वरन उसके

दिल्लीस्थित पत्र-सूचना-कार्यालय, राज्योंके सूचना कार्यालय, सरकारी वर्गोंके इधर-उधर बिखरे हुए उप-सूचनालय तथा बड़े व्यापारिक निगमोंके सूचनालय—साधारणतः यही वे संस्थाएँ हैं जो यह कार्य करती हैं। अनेक शहरोंमें जन-संवेदनका काम करनेवाली निजी संस्थाएँ भी हैं किन्तु वे अपना बहुत सा समय और नैपुण्य ध्वनि विस्तारक यन्त्रोंवाली मोटर गाड़ियोंका प्रबन्ध करनेमें ही खर्च कर डालती हैं। इन यन्त्रोंसे बोलकर या गाना आदि सुनाकर उस समय दिखाये जानेवाले किसी चलचित्रका विज्ञापन किया जाता है। जिन विज्ञापनोंके लिए पैसा मिलता है उनका प्रचार भी ये संस्थाएँ करती हैं और भित्ति विज्ञापनक तैयार कर उन्हें ऐसे स्थानोंपर चिपकवानेकी व्यवस्था करता है जहाँ ऐसा करना विधिक दृष्टिसे अनुज्ञेय (लीगली परमिसिबिल) हो।

सरकारी जनसंवेदन विभागोंकी विशेष सक्रियताका एक उदाहरण वह कार्य है जो इन दो राज्यों—हैदराबाद तथा मध्यप्रदेश—में हुआ है।

हैदराबादका सूचना तथा जन सम्पर्क-विभाग सन् १९३१ में स्थापित हुआ था। उसका मुख्य काम "सरकारके विभिन्न विभागोंके क्रियाकलापों सम्बन्धी सच्ची जानकारी प्रसारित करना है। यह समाचारपत्रों तथा अन्य उपलब्ध साधनों द्वारा सरकारकी नीति तथा कार्यक्रमोंसे सामान्य जनताको सर्वाधिक स्वीकार्य एवं प्रभावकारी ढंगसे अवगत कराता है। इसके साथ ही यह जनताके भावों तथा सरकारी नीतिके सम्बन्धमें होनेवाली प्रतिक्रियाओंसे सरकारको भी सम्पर्क बनाये रखता है। यह काम पूरा करनेके लिए उक्त विभाग समाचारपत्रोंके कथनों, दलोंकी नीतियोंका तथा सार्वजनिक हलचलका अध्ययन करता रहता है, इसीलिए वह इस स्थितिमें रहता है कि सरकारको मूल कार्यक्रम तथा आलोचनाओंके जवाब सम्बन्धी कार्यक्रमके अन्तर्निहित तरीके, समय आदिके सम्बन्धमें सलाह दे सके। इस प्रकार यह विभाग गुमराह लोगोंके विचारोंको स्वस्थ एवं रचनात्मक तरीकोंकी ओर प्रेरित करते हुए,

लोकमत ढालनेमें और प्रशासनके लिए सद्भावना उत्पन्न करनेमें सहायक होता है।*

इस कार्यक्रमके अन्तर्गत सूचना विभाग समाचारपत्रोंके लिए लघुलेख (नोट) तथा विज्ञप्तियाँ, गैरसरकारी लघुलेख और पृष्ठभूमि बतानेवाले लेख तथा फीचर प्रचारित करता है। सालमें लगभग तीन हजार ऐसी विज्ञप्तियाँ, लघुलेख आदि तैयार किये जाते हैं और प्रतिदिन कोई तीन सौ अखबारों, संवाददाताओं आदिके नाम भेज दिये जाते हैं।

पर्चे, रिपोर्टें, पुस्तिकाएँ, फोटोग्राफ, ब्लाक तथा अन्य सामग्री उपलब्ध कर दी जाती है और उसी समयमें लगभग ६०० प्रश्नों या पूछताछके प्रयत्नोंका जवाब दिया जाता है। सरकारके कतिपय अधिकारियोंके लिए प्रति दिनकी तथा प्रति सप्ताहकी घटनाओंका क्रमबद्ध सारांश तैयार किया जाता है।

एक बड़ा काम है सरकारकी गतिविधिके सम्बन्धमें प्रकाशित किये गये समाचारों, आदिकी अखबारोंकी कतरन इकट्ठी करना। देशी भाषाओंके पत्रों तथा पत्रिकाओंके अंश अंग्रेजीमें अनूदित कर दिये जाते हैं। सालमें कोई २२ हजार कतरनोंसे लाभ उठाया जाता है।

उक्त विभाग पत्र-प्रतिनिधियोंके सम्मेलनका भी आयोजन करता है, एक प्रेसरूम तथा पुस्तकालय चलाता है, चित्रपट सम्बन्धी भागका संचालन करता है और देहातोंमें तथा सभाओंमें दिखानेके लिए चित्र तैयार करता तथा उन्हें उपलब्ध कराता है, पैसा देकर सरकारी विज्ञापनका प्रबन्ध करता है, रेडियो वार्त्ता तैयार कर प्रसारित कराता, शहर या राज्यमें आनेवाले परिदर्शकोंकी आवश्यकताओंका खयाल रखता और सम्मेलनों, प्रदर्शिनियों तथा समितियोंका सीमित रूपमें, गैरसरकारी संवेदन कराता है।

इस काममें १० कर्मचारियोंका दल व्यस्त रहता है—संचालक, उप संचालक, चार सहायक संचालक, भाषा-समूहोंके लिए तीन संवेदनाधिकारी, और रेडियो इंजीनियर। कार्यके क्षेत्रकी झलक विभागके इन

*उक्त-विभागकी मार्च १९२२ की विवरणीसे ?

१३ खण्डोंसे मिल जा सकती है—सामान्य संवेदन, प्रकाशनकार्य, विज्ञापन, लेखा या हिसाब-किताब, समाचारपत्रोंके अवतरण, पुस्तकालय, पाठक, मोटर यातायात, लेखन-सामग्री, टाइपिंग, अनुवादक इत्यादि।

मध्यप्रदेशका सूचना-विभाग भी इसी तरह संघटित किया गया है और वह भी इसी तरहके कार्य-कलापमें व्यस्त रहता है। चित्रों आदि द्वारा जन-संवेदन करने पर वह हैदराबादकी अपेक्षा अधिक जोर देता है। इसे पूरा करनेके लिए उसके पास सिनेमाकी १३ मोटर-गाड़ियाँ हैं जिनमें कुछपर ध्वनिविस्तारक यन्त्र भी लगे हैं। सालमें ये गाड़ियाँ १७ हजार मीलका चक्कर लगाकर राज्यके २३ लाख लोगोंको शिक्षा सम्बन्धी ४॥ सौसे भी अधिक चलचित्र दिखाया करती हैं। उसने 'प्रगति' नामक मासिक पत्रके प्रकाशनपर भी जोर दिया है। यह पत्र हिन्दी तथा मराठी, दोनोंमें निकलता है और इसमें सरकारके कार्योंका वर्णन रहता है तथा सरकारी समाचारों और सन्देशोंकी ओर जनताका ध्यान दिलानेकी चेष्टा की जाती है।

इस तरहके विभागोंके लिए १९५१—५२ के व्ययका अनुमान २ लाख ८२ हजार रुपये मध्यप्रदेशमें तथा १८ लाख ९९ हजार रुपये उत्तर प्रदेशमें लगाया गया था। सामान्यतया विभागके सदस्य अपने अपने राज्यसे और अधिक आर्थिक सहायताकी माँग करते रहते हैं और बजटमें पर्याप्त व्ययकी व्यवस्था न होनेको अपने लिए एक बड़ा कठिनाई समझते हैं। दूसरी कठिनाई लोक संवेदनके महत्त्व और कारक सम्बन्धमें फैली गलतफहमी है, जैसा कि सरकारके एक संवेदनाधिकारीने कहा है। "और फिर भारतमें लोक संवेदनका कार्य हमें एक बुरी विरासतके साथ तथा ब्रिटिश शासनकालके साम्राज्यवादी प्रचार कार्यके कलुषित संसर्ग सहित प्राप्त हुआ है। जन संवेदनका कार्य प्रतिकूल धारणा तथा सन्देहयुक्त भावनाके कारण गर्हित दृष्टिसे देखा जाता है, जिससे कुछ कम कठिनाई नहीं होती। इसके सिवा, देशमें वास्तविक रूपसे प्रभाव उत्पन्न करनेवाली जन संवेदन व्यवस्थाका विकास होना अभी

व्यावसायिक संस्थाओंके पत्र

जन-सम्पर्कका एक मुख्य साधन जो भारतमे भी अब जड पकडता जा रहा है और जिसमे भी पत्रकारोके कौशल एव विशेष निपुणताकी आवश्यकता पडती है, किसी कारखाने या व्यावसायिक सस्था द्वारा प्रकाशित किया जानेवाला अपना विशेष पत्र (हाउस पब्लिकेशन) है।

ऐसे पत्रोकी एक अन्तराष्ट्रीय प्रदर्शनी सन् १९५१ मे तिरुचिरापल्लीमे हुई थी। उस समय 'हाउस मैगजीन' की यह परिभाषा दी गयी थी—"वह पत्र जो अपने कर्मियो और (या) ग्राहको या सदस्योके लाभार्थ किसी व्यावसायिक सस्था, कारखाने, व्यापार परिषद् आदि द्वारा प्रकाशित किया जाय तथा जिसका उद्देश्य उससे पैसा कमाना न हो।*

ऐसा पत्र या तो समाचार देनेवाला पत्र होता है या विविध लेखोसे विभूषित मासिक पत्र। इसके दो भेद या प्रकार होते है—आन्तरिक और बाह्य। आन्तरिक पत्र वह है जिसका प्रचार केवल उस सस्था या कारखानेके कर्मियोमे होता है जिसकी ओरसे पत्र प्रकाशित होता है। बाह्य दूसरा पत्र वह है जो उपभोक्ताओ, सम्भावित ग्राहको (खरीदारो), व्यापारियों तथा कारखाने या कोठीके बाहरके लोगोके पासतक पहुँचता है। कभी-कभी एक ही पत्रसे दोनो काम निकाल लिये जाते है।

भारतमे ऐसे पत्रोकी सख्या लगभग एकसौ हो है, इसलिए सामान्य जनताको उनके अस्तित्वके सम्बन्धमे बहुत ही कम जानकारी है। उनके पाठकोकी सख्या भी, समस्त आबादीको देखते हुए, बिल्कुल नगण्य सी है। किन्तु इन थोडे पत्रोमे भी कई पत्र ऐसे है जो दुनियाके इस ढंगके सर्वोत्तम पत्रोमे गिने जा सकते है।

ज्यो ज्यो भारतका कारोबार तथा उद्योग व्यवसाय समुन्नत होता

* हिन्दीमें ऐसे पत्रोंके उदाहरण स्वरूप ये नाम दिये जा सकते है—जे० के० पत्रिका, कानपुर, मजदूर जगत (डालमियानगर), रेलवे मजदूर (गोरखपुर)।

जायगा, त्यों त्यों ऐसे पत्र-पत्रिकाओंकी भी सख्या बढती चलेगी। अन्य देशोंमे भी राष्ट्रकी आर्थिक स्थितिके अनुपातमे ही उनका अस्तित्व होता है। पहलेके जमानेमे जब रोजगारकी चहल-पहल बढ जाती थी, तब ये पत्र भी अधिक देख पडते थे ओर एक तरहमे शौककी चीज समझे जाते थे किन्तु जब समय खराब आता था, तब इनकी सख्या घट जाती थी। किन्तु पिछले दशाब्दमे स्थिति असन्तोषजनक होनेपर भी उनका अस्तित्व कायम रखा गया है, क्योंकि व्यापारिक सस्थाओंके प्रबन्धकोंने जन-सम्पर्ककी दृष्टिसे उनका महत्त्व समझ लिया है।

इन पत्रोंका काम कारखानोंमे काम करनेवाले तथा मालिकोंका पारस्परिक सम्बन्ध सुधारना और किसी व्यापारिक सस्थाके प्रति उसके ग्राहकों या छोटे व्यापारियोंमे सद्भावना बढाना तथा अधिक माल बिकवानेमे इन छोटे व्यापारियो एव वितरकोंकी सहायता करना है।

अन्य पत्रोंकी तरह इन पत्रोंके उत्पादनमे भी सम्पादकीय कौशलकी आवश्यकता पडती है और जन-सपर्क तथा जन-सवेदनके मौलिक सिद्धान्तो-का समझना भी आवश्यक होता है। समाचारोंका सग्रह करने तथा जो लेख उनमे प्रकाशित होते है उन्हे लिखवानेके लिए रिपोर्टरो और लेखकोंकी आवश्यकता होती है। कापीका सम्पादन करने और ब्लाक बनवानेके लिए फोटो चित्रोंका चुनाव करने तथा ऐसे ही अन्य कामोंके लिए सम्पादकोंकी आवश्यकता पडती है।

साउथ मद्रास इलेक्ट्रिक सप्लाई कारपोरेशन, तिरुचिरापल्लीके जन-सवेदनाधिकारी श्री आर० परथासराथीने प्रदर्शनीमे भाषण करते हुए कहा था कि नैतिकताका निर्माण करनेकी दृष्टिसे अथवा प्राविधिक तथा शैल्पिक जानकारीका प्रसार करनेके साधनके रूपमे ओर कर्मियो एव प्रबन्धकोंके बीच सौहार्द्र बढानेकी शक्तिके रूपमे 'सस्था-पत्रिका एक बहुमूल्य उपकरण है।"

श्रीपरथासराथीने खुद अपनी ही कम्पनीके पत्र 'इलेक्टोलाइट'की चर्चा की और कहा कि यदि इस पत्रके कारण जनताके एक छोटे भागने

भी "उज्ज्वल प्रकाश फैलानेवाले उस मनोरम लट्टूकी चमत्कारपूर्ण कहानी समझ ली जो इस कारण रोशनी प्रदान करता है कि किसी अन्य स्थान-पर एक ओर अग्नि-पुंज धधक रहा है और यदि हमारे कर्मचारियोंने भी यह समझ लिया कि एक ऐसा माध्यम है (जनताका) जो उठकर बैठ जायगा और उनकी खुशियों तथा अफसोसोंका खयाल करेगा, तो हम कहेंगे कि पत्र अपने लक्ष्यमें बिल्कुल असफल हो गया हो, ऐसी बात नहीं है।"

भारतमें ऐसे पत्र चार छोटे पृष्ठोंवाले समाचारपत्रसे लेकर ३२ या ६४ पृष्ठोंवाली पत्रिकातक होते है, जिनके आवरण पृष्ठ चार रंगोंमें छापे जाते है। अधिक आडम्बरपूर्ण पत्रोंमें एक है "बर्मा शेल न्यूज" जो ६४ पृष्ठोंवाला 'भीतरी' पत्र है और मशीनका तेल तैयार करने-वाली बम्बईकी एक संस्था द्वारा प्रकाशित होता है। उसमें बढ़िया कागजपर छपे कई चित्र तथा विशेष लेख रहते है और भारत भरमें काम करनेवाले उसके कर्मचारियोंकी गतिविधिके समाचार भी दिये जाते है।

ऐसा ही एक और सुन्दर पत्र कलकत्तेका 'दि डनलप गजट' है। आधुनिक ढंगसे निकलनेवाले इस पत्रमें नाना सम्बन्धी तथा सम्बद्ध विषयोंके कई सामान्य लेख रहते है जो उन लोगोंको ध्यान कर लिखे जाते है जो डनलप कम्पनीके बनाये टायरों, ट्यूबों तथा अन्य सामा-नोंका प्रयोग करते है। कलकत्तेकी शालीमार पेंट, कलर एंड वार्निश कम्पनी पूरे आकारका एक पत्र अंग्रेजी तथा बंगलामें प्रकाशित करता है जिसमें विविध रंगोंके विषयमें लेख रहते है तथा कमियोंके क्रियाकलापका भी हाल छपता है। अन्य पत्रोंके नाम ये है—वायुपथ, 'नारी' टंगका पत्र जो 'एयरवेज (इण्डिया) लिमिटेड' की ओरसे निकलता है, दि गुड-इयर न्यूज, रबर और टायर कम्पनीका पत्र, इलेक्ट्रोलाइट, जिसका जिक्र ऊपर आ चुका है और मेटवेप, जिसे निरचिरापल्लीकी मेटर कमि-कल एंड इण्टस्ट्रियल कारपोरेशन नामक कम्पनी प्रकाशित करती है। (इसका भी सम्पादन श्री परशुरामी करते है)

किन्तु इस तरहकी विशेष ढगकी पत्रकारी भारतमें अभी छोटे पैमानेपर ही देख पडती है। जो लोग इस वृत्तिका अनुसरण कर रहे हैं, उनमे अभी एकताकी प्रबल भावना जागरित नहीं हुई है और न वे अपनी कोई सस्था स्थापित करनेकी आवश्यकताका ही अनुभव करते है, क्योकि इन सम्पादको तथा जन-सवेदन या जन-सम्पर्कके सचालकोको एक सूत्रमे गठित करनेके लिए अभीतक किसी सस्थाका निर्माण नहीं हुआ है।

---

११ समाचारपत्रोंका मुद्रणकार्य

भारतमे समाचारपत्रोंके उत्पादनका कार्य करीब-करीब उसी ढगसे प्रारम्भ हुआ और चला जिस ढगसे वह पश्चिममे चलता रहा है और ऐसा होना स्वाभाविक था। छपाईके मुख्य प्राथमिक प्रयत्नोंकी प्रेरणा पश्चिमसे ही प्राप्त हुई। मुद्रणालय स्थापित करनेके अधिकतर प्रयत्न ईसाई पादरियो द्वारा किये गये और इसमे उन्हे सफलता भी मिली। गैर सरकारी और सरकारी छापेखाने भी स्थापित हुए। वे तो अक्सर स्वाभाविक मृत्युको प्राप्त हो जाते थे पर ये (सरकारी छापेखाने) सरकार-का काम चलानेके लिए जीवित बने रहते थे।

प्रारम्भ कालमे भारतके समाचारपत्रोंकी भाषा अंग्रेजी ही थी, अत पश्चिमके साथ उनके घनिष्ठ सम्बन्धका यह भी एक कारण था। पश्चिम का यह एहसान भारतीय पत्रो द्वारा मुक्तकण्ठसे एव प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया जाता है। अठारहवीं शताब्दीके अन्तिम दशकोंमे और उसके कुछ समय बादतक भी पत्रोंमे छापी जानेवाली सामग्रीके बनाव ठनाव या सुन्दर प्रदर्शनके लिए कोई वास्तविक प्रयत्न नहीं किया गया—स्तम्भमे जो कुछ छपता था, उसीसे कुछ बडा टाइप स्तम्भके ऊपर प्रथम शीर्षकके रूपमे दे दिया जाता था। बनाव ठनावकी प्रवृत्ति धीरे-धीरे ही विकसित हुई और आज भी कतिपय पत्रोंमे पुराने तरीकोंका पश्चात्प्रभाव स्पष्ट रूपसे देखा जा सकता है, क्योंकि (रूढ़िवादितावश) एक विशेष आकारतकका टाइप देनेके सिवा और किसी तरहके प्रदर्शनको वे सन्देहकी दृष्टिसे देखते है।

प्रथम महायुद्धके बाद आधुनिक ढगके टाइपो तथा बनाव-सजावके तरीकोका भारी प्रभाव पडनेसे स्थितिमे व्यापक परिवर्तन हो गया है। सामान्य रूपसे यह बात पत्रोंकी सजावटके लिए शुभावह ही हुई है पर

पाठक कभी कभी तो एक विशेष प्रकारके (एक ही भाषा या देशके) होते हैं। पर अक्सर ये किसी भी प्रकारके, किसी भी भाषा या देशके, हो सकते हैं।

मुद्रणमें एक तरहकी अन्तराष्ट्रीयता होती है जिससे एक देशकी अच्छी छपाई दूसरे देशमें भी अच्छी छपाई मानी जा सकती है। एक अच्छे ढंगसे छापा गया अखबार किसी भी भाषाका अच्छे ढंगसे छापा गया अखबार कहा जा सकता है। इसलिए ऐसी कोई विभाजक रेखा नहीं है जो मुद्रणके प्रतिमान या आदर्शकी दृष्टिसे एकको दूसरेसे पृथक् करती हो। लिखावट या लिपियोंमें अन्तर हो सकता है—अक्सर होता ही है बल्कि आश्चर्यजनक रूपमें—किन्तु उनमें लिखी गयी चीजोंको मुद्रित रूपमें पुनः उपस्थित करनेके जो प्रतिमान या आदर्श होते हैं, वे अन्तराष्ट्रीय होते हैं।

इसके साथ और भी बात कही जा सकती है। छपाई करनेवाले यन्त्रोंमें यदि कोई अन्तर होता है तो केवल बनावट या डिजाइनका। टाइप कंपोज करने (बैठाने)का काम प्रायः हर देशमें एक ही तरहकी मशीनोंकी सहायतासे किया जाता है। कागजका प्रयोग समान होता है। इसके सिवा ऐसी छोटी मोटी बात भी होती है [illegible] टाइप उससे कुछ मोटा होता है जिसमें लेख आदिका [illegible] भाग कंपोज किया जाता है। इसलिए विचारोंको प्रकट करनेके लिए मुद्रणका प्रयोग करनेमें भारत तथा विश्वके अन्य देशोंमें समानता है।

छपाई कैसे होती है

छपाई क्या है, यह हम समझ गये। अब दूसरा प्रश्न यह है कि छपाई कैसे की जाती है? मान लीजिये कि आपने एक लेख किसी समाचारपत्रमें छपनेके लिए भेजा और वह स्वीकृत भी हो गया। उपसम्पादकने उसका सम्पादन कर दिया और वह कम्पोजमें देनेके लिए तैयार हो गया। आपके लेखके दो मुख्य भाग हैं—शीर्षक, सम्पूर्ण पाठ उपशीर्षक या कोई भूमिका जो उपसम्पादकने लेखके आरम्भमें जोड़ दी हो

और वह मुख्य या मूललेख जो आपने स्वयं लिखकर भेजा है। बनाव-सजाव करनेवाला आदमी, जो अपने पत्रकी पद्धति जानता है, चाहे वह दैनिक पत्र हो या मासिक-साप्ताहिक, शीर्षकोंको ठीक करता तथा उनके बगलमें लिख देता है कि किस तरहका और कौन टाइप उनमें दिया जायगा।

दो-चार तरहके मासिक या साप्ताहिक पत्र यदि उठाकर देखें तो आपको विदित होगा कि बनाव-सजावके, सुन्दर ढंगसे छापनेकी पद्धतिके, कितने अधिक प्रकार सम्भव हैं। सचमुच यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि उन सब बन्धनों तथा रुकावटोंके बावजूद जिनका ध्यान टाइप आदि सजानेवालेको रखना पड़ता है, कोई भी दो आदमी आपके लेख, शीर्षक और ढंगके लिए बिलकुल एक ही तरहका बनाव सजाव निर्धारित न करेंगे।

प्रत्येक पत्रका अपना एक निराला ढंग या तरीका होता है—या कमसे कम होना चाहिये। यदि न हो तो फिर पत्रका सारा रूप रंग मुद्रककी कृपापर निर्भर रहता है। वह यदि प्रशिक्षित एवं कुशल व्यक्ति न हुआ तो फिर ईश्वर ही खैर करे!

जबतक शीर्षकका टाइप ठीक किया जाता है और कम्पोजिटर उसे कम्पोज करता है, तबतक असली लेख भी कम्पोज होता रहता है जिसमें अभिरुचि बढ़ानेके लिए प्रस्तरोंके ऊपर उपशीर्षक भी रहते हैं। निदान जब सारा मैटर तैयार हो जाता है तो पहली बार उसका प्रूफ उठाया जाता है। जब उसका संशोधन आदि हो चुकता है तो किसी एक पृष्ठपर आपका लेख, अन्य लेखोंके साथ, बैठा दिया जाता है (हाँ, यदि आप इतने भाग्यशाली हुए कि सारा पृष्ठ आपको ही मिल जाय, तब बात दूसरी है!) और यदि पत्र बड़ा तथा साधनसम्पन्न हुआ तो पृष्ठका स्टीरियो बना लिया जाता है। यह एक तरहकी अर्द्धचन्द्राकार तख्ती-सी होती है, जिसमें एक बारमें एक पृष्ठ आता है, और जो ठीक-ठाक करनेके बाद मुद्रण-यन्त्रके सिलिण्डर (बेलन) के चारों तरफ

रख दी जाती है। जब सब चीज ठीक हो जाती है और मशीन चलने लगती है तब आपका लेख भी छपकर तैयार हो जाता है जिसे देखकर आपको खुशी होती है, प्रारम्भमें शायद अन्य किसी भी व्यक्तिसे अधिक। बडी मशीनोंमें छपनेके साथ ही कागजकी मॅजाइ भी होती चलती है और अखबार उसी स्थलपर बिक्रीके लिए बिलकुल तैयार हो जाता है।

संक्षेपमें यही वह तरीका है जिस तरह कोई लेख, जो पहले पाण्डु-लिपिके रूपमें रहता है, अखबारमें छपकर पाठकके पास पहुँचता है। आजकल छपी हुई वस्तुकी तैयारीमें मशीनोंका अधिकसे अधिक प्रयोग होने लगा है। अब भी उर्दूके कुछ ऐसे पत्र है जो हाथसे लिखे जाते है और लिथोमें छपते है, फिर भी धीरे धीरे लेखकोंका स्थान मशीनका की-बोर्ड ग्रहण करता जा रहा है। अन्य भाषाओंमें मशीनसे कम्पोज करानेका काम उस समयके बादसे, जब बीस वर्ष पहले इसमें मशीनोंका प्रयोग शुरू हुआ, बराबर अधिकाधिक मात्रामें होता रहा है। इस प्रगतिका एक विशेष उदाहरण हिन्दीकी स्थिति है जिसमें (लाइनोटाइप मशीनसे एक एक लाइन भी कम्पोज होती है और कहीं कहीं (मोनो-टाइप मशीनसे) एक एक अक्षर भी कम्पोज किया जाता है। मशीनोंकी सहायताके कारण कम्पोजिंग आदिके काममें समयकी पहलेसे कोई पाँच गुनी बचत होने लगी है। पहलेके परीक्षणोंमें भले ही धीमी प्रगति रही हो किन्तु इधर जो परिवर्तन होते रहे है वे अपेक्षाकृत अधिक तेजीसे हुए है।

गढना और बात है तथा नागरी वर्णमालाके ६०० संकेतोंके लिए जिन-मेंसे कितने ही ऊपर, नीचे या बगलमें रखे जाते हों, टाइपोंके रूप बनाना बिलकुल दूसरी बात है। फिर इसके साथ यह भी विचार कीजिये कि भारतमें एक-दो नहीं, दर्जनों भाषाएँ हैं जो संस्कृत या अरबी लिपिपर आश्रित हैं और प्राय हर एकमें सीधी या टेढ़ी लकीरों तथा गोलाईवाले संकेतोंमें भिन्नता है तो मालूम होगा कि देशी भाषाओंके समाचार-पत्रोंको हाथसे कम्पोज करनेके मन्दगतिवाले तरीकोंसे मुक्ति दिलानेका कार्य कितना महान् था। सचमुच ही यह दुनियामें मुद्रणकी बड़ीसे बड़ी सफलताओंमेंसे एक है।

नूतन यन्त्रावलीका प्रयोग

द्वितीय महायुद्धके बादके वर्षोंमें भारतको मुद्रण सम्बन्धी आधुनिक यन्त्रोंकी स्थापनाका अवसर मिला। पश्चिमके देश माल बेचनेके लिए उत्सुक थे और पूरबवाले माल मँगानेको, इसीसे मुद्रण सम्बन्धी नवीन यन्त्रोंके मामलेमें भारत अपनी स्थिति अधिक सुदृढ़ बनानेमें समर्थ हो सका। लाइनोटाइप, इंटरटाइप तथा मोनोटाइप मशीनोंकी सहायतासे कम्पोजिंगका काम अधिक सुविधाके साथ किया जाने लगा है। सैकड़ों नहीं तो दर्जनों अखबारोंमें रोटरीसे छपाई होने लगी है और अलग-अलग कागजके बजाय बेलनकी तरह लपेटे हुए कागजका प्रयोग किया जाने लगा है। रोटरी मशीन चतुर यन्त्रविदोंकी उत्कृष्ट कारीगरीका नमूना है किन्तु ये काफी महँगी पड़ती है इसलिए कुछ ही अखबार इन्हें मँगा सकते हैं। कम्पोजिंग आदिके काममें सहायता पहुँचाके लिए अन्य मशीनोंका भी प्रयोग होने लगा है, जैसे स्टीरियो बनानेके उपकरण, हेडिंगके लिए लडलो तथा एलरोड, रूल तथा बार्डर, इत्यादि। इनके सिवा, और भी कई तरहके यन्त्रोंसे काम लिया जाने लगा है जिससे भारतीय छापेखानोंकी स्थिति अधिक अच्छी हो गयी है। ये मशीनें हैं—भाँजनेकी मशीन, सिलाईकी मशीन, किनारा काटनेकी मशीन, प्रूफ उठानेके साधन, कमेरा और ब्लाक बनानेवाली मशीन इत्यादि।

आजके समाचारपत्रकी अच्छी छपाई सफाई और उत्पादनके लिए इन सब साधनोंकी नितान्त आवश्यकता है। अमेरिका तथा ब्रिटेनमें और भी समुन्नत साधनोंके प्रयोगके समीक्षण किये जा चुके हैं, जैसे इलेक्ट्रानिक्स, फोटो कम्पोजकी मशीन, तारके सञ्चार-साधनोंमें सुधार, प्लास्टिक (इसके बने ब्लाक आजकल सर्वत्र देख पड़ते हैं) चलते-फिरते रेडियो ट्रांसमिटर और अविश्वसनीय सी जान पड़नेवाली बात—बिना स्याहीकी छपाई! एक तरहकी चिपकनेवाली बुकनी प्लेटमें भर दी जाती है और छापते समय बिजलीके खिंचावसे कागजपर टपका दी जाती है, जिससे यह चमत्कार सम्भव हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि आनेवाले दिनोंमें ये सब उन्नत तरीके भारतमें भी प्रचलित हो जायेंगे।

पाठकोंको आकर्षित करना

इस तरह छापी जाती है कि पाठक उसकी ओर आकृष्ट हो जाय। पृष्ठ कैसा हो, यह बहुत कुछ उसके पाठकपर निर्भर है, ठीक उसी तरह जिस तरह पाठक कैसा हो, यह बात उक्त पृष्ठपर अवलम्बित है। छपे हुए पृष्ठमे शब्दोके बीच खाली जगह (स्पेस) रहती है, शीर्षक, स्तम्भ, विज्ञापन, रूल तथा बॉर्डर, मोटा टाइप, सादा टाइप, इटैलिक, हस्तलिपिका टाइप, चित्र, पाद-टिप्पणियाँ तथा बेलबूटे आदि रहते है, यद्यपि सब चीज एक साथ नहीं होती और सब पृष्ठोपर नहीं होती। मुख्य बात यह है कि छपनेकी कम्पोज की हुई सामग्री रहती है और उसके नीचे कागज रहता है—दोनोकी एक सामजस्यपूर्ण इकाई होती है। यदि दोनोमे मेल और अनुरूपता न हो तो इसमे अवश्य ही किसी न किसीका दोष होगा।

किसी पत्रकी छपाई और सजावटका ढगमात्र देखकर बताया जा सकता है कि वह कौन सा पत्र है, भले ही उसका नाम कहा देखनेको न मिले। बनाव-ठनाव बहुत कुछ इस बातपर निर्भर करता है कि सामग्री किस विषयकी है। पढकर केवल एक दिन रखे जानेवाले दैनिक पत्रकी छपाई सफाईका ढग स्पष्टत॰ मासिक पत्रसे जुदा होता है जिसके अधिकाशमे लेख तथा आलोचनात्मक निबन्ध आदि रहते है।

सनसनीखेज समाचारके लिए अधिक आडम्बरपूर्ण प्रदर्शनकी आवश्यकता होती है—पृष्ठके एक किनारेसे दूसरे किनारेतक पताका-शीर्षक, बडा टाइप, मोटे मोटे उपशीर्षक, फोटो चित्र, दो कालमके शीर्षक और बाक्स या मजूषा (स्तम्भके बीचका ऊपर-नीचे रूल लगा कर पृथक् किया हुआ सन्दूक या शिलापट्टकी शकलका वह स्थान जिसमे असाधारण महत्त्वके समाचार दिये जाते है)। यदि कोई वैज्ञानिक लेख हो, जिसमें बुद्धिसगत तर्क या कथन हो, ऑकडे हों, अभिनिदेश हों, तो उसका प्रदर्शन शान्तिमय ढगसे, अध्ययनके वातावरणके उपयुक्त, होना चाहिये। यह स्पष्ट ही है कि भिन्न भिन्न पत्रोमे भिन्न भिन्न वृत्तान्त

प्रकाशित करनेके अनेकानेक तरीके होते हैं। सीधा-सादा, शान्तिमय प्रकार वह है जिसमें केवल शीर्षकोंका सहारा लिया जाता है और महत्त्व देनेके लिए लेख या विवरणकी सामग्रीका ही भरोसा किया जाता है। दूसरा प्रकार वह है जिसे 'स्क्रीमर' कहते हैं। इसमें पाठकका ध्यान तुरन्त आकर्षित करनेकी चेष्टा की जाती है और आवश्यकतासे अधिक जोर देनेकी प्रवृत्तिके कारण प्रायः अर्थका अनर्थ कर दिया जाता है।

कुछ ऐसी पत्रिकाएँ हैं जो क्षणिक और समसामयिक बातोंकी ओर ध्यान दिलानेके लिए प्रत्येक अंकमें अपना आवरण तथा शीर्षकोंका सिल-सिला बदलती रहती हैं। धोखा देनेकी भावना इसके पीछे उतनी नहीं है—ग्राहकका ध्यान खींचना ही इसका लक्ष्य है। जो पत्र अपना रंग ढंग बदलता रहता है वह समयकी प्रवृत्तिका द्योतन करता है और मानो अपने समयकी स्थितिके लिए आईनेका काम करता है।

हमेशाके लिए लद गया किन्तु भारतमें अब भी पृष्ठोंके बनाव-ठनावमें कल्पनासे बहुत कम काम लिया जाता है।

सबसे मनहूस-सा दिखाई पड़नेवाला पृष्ठ सम्पादकीय पृष्ठ होता है। अन्य पृष्ठोंकी तरह इसे भी, बिना किसी हिचकके, आकर्षक बनाना चाहिये किन्तु प्राय ऐसा किया नहीं जाता। सनसनी फैलानेका प्रयत्न किये बिना भी विभिन्नता आसानीसे दिखाई जा सकती है किन्तु हमारे दैनिक पत्रोंमें अभी यह नहीं हो रहा है।

किसी पत्रके बनाव-ठनावमें एक मुख्य वस्तु यह भी है कि कौन सा और किस आकारका टाइप चुना गया है। यह बनाव-ठनाव बम्बईके कतिपय अँग्रेजी पत्रोंके 'ठोस-मार' ढंगसे लेकर बहुमख्यक दैनिकों तथा साप्ताहिकोंके 'शान्त-प्रशान्त' ढंगतकका हो सकता है। आज विभिन्न तरहके शीर्षकवाले टाइप तथा उपयोगी बेल-बूटे (बॉर्डर्स) प्राप्त करनेमें कोई कठिनाई नहीं है और पैसा भी अधिक नहीं देना पड़ता।

मासिक पत्रिकाओंका मेक अप

मासिक पत्रोंका बनाव-ठनाव दैनिक पत्रोंकी अपेक्षा अधिक सरल होता है, यद्यपि दैनिक भी चाहें तो अच्छे प्रशिक्षित मुद्रण-पण्डितकी सहायतासे, रूप-रंग आदिका अपना विशिष्टत्व—वह सूक्ष्मतत्व जो लेखों, सम्पादकीय शैली और टाइपोंके प्रदर्शनके संयुक्त प्रभावसे उत्पन्न होता है—अक्षुण्ण बनाये रखते हुए भी, क्रान्तिमय सुधार कर सकता है।

मासिक पत्रोंके शीर्षक फुरसतके साथ ठीक किये जा सकते हैं। समयकी बाधा न होनेसे उसमें वैसी कोई कठिनाई नहीं होती। हर तरहके टाइप और विभिन्न प्रकारके ढंग अपनाकर देखे जा सकते हैं और अन्तमें जो सबसे अधिक सन्तोषजनक तरीका जान पड़े उसे ही रखनेका निश्चय किया जा सकता है। बहुतसे दैनिक पत्रोंके लिए इसके निकटतक पहुँचनेका केवल एक ही तरीका है—अपनी विशेष शैली या पद्धतिका अनुसरण करते रहना और शीर्षकोंके लिए सुन्दर टाइपोंका प्रयोग करना। 'न्यूयार्क टाइम्ज' तथा 'लन्दन टाइम्ज' को देखनेसे

यह बात स्पष्ट हो जाती है, यद्यपि कुछ पाठक छपाई और सजावटकी सुन्दरताको, जब उसके लिए एक निश्चित सीमासे अधिक परेशानी उठायी जाती है, गुण समझनेके बजाय एक तरहका दोष ही मानते हैं।

बहुतसे छोटे छोटे मासिक पत्र पुराने ढंगकी दो कालमकी छपाईका ही अनुसरण करते हैं। ऐसा करनेसे विभिन्न तरहकी सजावटका अवसर मिलता है, यद्यपि यह भी सत्य है कि पृष्ठमें जितने अधिक स्तम्भ होंगे, बनाव-सजावकी उतनी ही अधिक गुंजाइश रहेगी। जिन छोटे मासिक पत्रोंमें केवल एक ही स्तम्भ होता है, उनमें भी आकर्षजनक रूपसे विभिन्न तरहका बनाव-सजाव किया जा सकता है।

एक ही आकार या परिमाण (साइज) का टाइप लगाना हो तो भी उसमें दो तीन तरह या तर्जका टाइप—(अंग्रेजीमें) बड़े कैपिटल और छोटे अक्षर, इटैलिक और छोटे कैपिटल, काला टाइप और सादा टाइप—लगाकर वैचित्र्य लाया जा सकता है।

दीजिये और नामके प्रत्येक अक्षरके दोनो तरफ, वीचमें, थोडी-थोडी स्पेस (जगह) छोड दीजिये, तो किसी तरहकी तोड-मरोड किये बिना ही पक्तिका महत्त्व वढ जायगा।

वस्तुत सब तरहका टाइप वैठाने या कम्पोजिगका काम सामजस्य-पूर्ण मेल वनाये रखनेका काम है। अच्छी कम्पोजिगमे एक तरहका ऐसा 'झुकाव' सा होता है जिसकी परिभाषा करना तो कठिन है किन्तु जव वह मौजूद रहता है तो उसे पहचानना कोई कठिन काम नही। यह केवल सन्तुलनका प्रश्न नहीं है, क्योंकि आजकल कम्पोजिगके अधिक आधुनिक तरीकोमे सन्तुलनका प्राप्त होना कदाचित् सबसे अन्तिम प्रभावकी बात होगी। फिर भी उसमे एक तरहकी लय या सामजस्य तो है ही जिसमे उचित ढगसे उतार-चढाव हो। टाइप वैठाने और बनाव-ठनावके सम्बन्धमे कई पाठ्य-पुस्तक लिखी जा चुकी है। पुस्तकोकी किसी भी वडी दूकानसे पत्र भेजकर उन्हे मॅगा लेना कठिन न होगा।

"शीर्षक" शब्द आजकल अयथार्थनाम (मिननोमर) हो गया है। 'इण्डियन प्रिंट एण्ड पेपर' के एक लेखमे कहा गया था कि "शीर्षक नामकी कोई चीज ही नही रह गयी है", और यह दिखलानेके लिए उसमें लेखका शीर्षक शीर्षस्थान याने ऊपर न देकर लेखके अन्तमे नीचे दिया गया था, जो तर्कसगत था और किसी भी तरह विसगत नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इधर कुछ वर्षोंसे ऐसे बहुतसे नियम जो पहले अनुल्लघनीय माने जाते थे, परित्यक्त कर दिये गये है और इसका परिणाम पाठकके लिए वडा आह्लादकारी हुआ है, भले ही वह मुद्रण-सौन्दर्यके वारेमें कुछ जानता हो या न जानता हो।

वनाव-ठनाव करनेवाले व्यक्तिको मासिक पत्रिकामें दो स्तम्भ होनेपर चुनाव करनेका अधिक मौका रहता है। यहाँ वह विचारोंके अधिक वडे दायरेसे काम ले सकता है। दोनो स्तम्भोंके आर-पार एक सिरेसे दूसरे तक, या पहली पक्ति दो कालममे तथा दूसरी केवल एकमे रखी जाय, शीर्षक ऊपरकी ओर और उपशीर्षक पृष्ठके नीचे, या शीर्षक प्रथम

टाइप

कपोज करनेके नये तरीकेकी चर्चा करनेके पहले, जहाँ बीस वर्ष पहलेके नियमोंका बार-बार उल्लंघन किया जा रहा है, हमे उस मुख्य वस्तु, टाइप, के ही सम्बन्धमें विचार कर लेना चाहिये, जिसका उल्लेख ऊपर कई बार आया है। यह ऐसा विषय है जिसका वर्णन करनेमें कई जिल्दें भरी जा सकती है और जिसका न आकर्षण समाप्त होता है और न कुछ नयी शिक्षा देने, नयी जानकारी करानेकी क्षमता।

थोड़ेमें, टाइप दो प्रकारका माना जा सकता है—पुराने नमूनोंका टाइप और नये नमूनो या तर्जका टाइप। तीस वर्ष पहले टाइपके जो नमूने प्रच लित थे उनका प्राधान्य उसके पहले लगभग पचास वर्षोसे चला आ रहा था। इसके बाद परिवर्त्तन हुआ, इतना व्यापक कि सुरुचि और सुप्रतिष्ठित धारणाओंपर कठोर आघात हुआ, फिर भी उसमे ताजगी लानेकी इतनी शक्ति थी कि टाइपोंका प्रयोग करनेवालोंको स्थितिपर गम्भीरता-पूर्वक विचार करना पडा और अपनी विशिष्ट पद्धतियोंमे इस हदतक सशोधन करनेको बाध्य होना पडा जिसकी उन्होंने पहले कल्पना भी न की होगी। परिवर्त्तन पहले यूरोपकी मुख्य भूमिपर शुरू हुआ और जब प्रथम महायुद्धकी समाप्तिके साथ प्रथम आघातका अन्त हुआ, तब "हर चीज मध्यमें तथा सब पंक्तियाँ समान स्तरपर रखने" का तरीका अस्थायी रूपसे परित्यक्त कर दिया गया और उसका स्थान लिया 'परि-वर्त्तनके लिए कुछ भी अपनाने' की नयी अनोखी प्रविधिने। धीरे-धीरे साम्यकी स्थिति उत्पन्न हुई और तब यह अनुभव किया गया कि दोनों नमूने या प्रकार साथ साथ सद्भावनापूर्वक चल सकते है।

परिवर्त्तन और उसका कुछ अश सूचित करनेके लिए नये टाइपके नमूने सामने आये। पहले तो उन्हे देखकर लोगोंकी भौंहे चढ गये और उनसे उन्हे कुछ परेशानी-सी हुई किन्तु परिवर्त्तन रोकना सम्भव न था। आज वह मुद्रणका अंग बन गया है जिससे उसकी सम्पन्नता बढ गयी है और उसकी शक्ति भी।

नये नमूनोंकी बाढ़ सी आ गयी। वर्षोंके प्रभावने इन्हें अलग अलग कर दिया है। बहुत-सा भाग जो अनुपयुक्त और असंगत सा था, स्वभावतः समाप्त हो गया। फिर भी उनका असर बना रहा और आजके प्रत्येक पत्र या पत्रिकामें, प्रायः एक भी अपवादके बिना, टाइपके नये नमूनों या कम्पोजके नये ढंगका नमूना मौजूद रहता है, भले ही पाठकको इसकी जानकारी न हो।

इस तरह हम बनाव-ठनावके उस तरीकेपर जा पहुँचते हैं जिसमें कोई प्रतिसाम्य (सिमेट्री) नहीं रहता। इसमें पहलेसे जमे हुए विचारों का मानो परित्याग कर दिया जाता है और ध्यान आकर्षित करनेके लिए अनूठेपनका ही सहारा लिया जाता है। पर वास्तवमें बात ऐसी नहीं है। यदि बनाव सजाव करनेवाला व्यक्ति अपने उस विषयका ध्यान रखे जिसे वह मुद्रित रूपमें रखना चाहता है तो अनूठापन केवल अनूठेपनके लिए अनावश्यक हो जाता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, विचारोंकी अभिव्यक्ति प्रकट करनेका एक ढंग ही मुद्रण है किन्तु यह ऐसा अभिव्यक्ति है जिसमें [illegible] [illegible] महत्त्व है।

जिससे उसके तीव्रातितीव्र आलोचकोंका भी सन्तोष हो सके—मुद्रकोंका तथा प्रकाशनकार्य करनेवालोंका।

कलाके पत्रोंमें सीधे स्तम्भों और सामान्य, प्रशान्त शीर्षकोंके दिन समाप्त हो गये। कल्पनाको पूरी छूट मिल गयी है।

चित्रोंको अधिक महत्त्व दिया जाता है, शीर्षक बदलते रहते और गोल दायरेमें चक्कर काटते रहते हैं, लेखका मूल भाग मानो बादमें खयाल आनेपर इधर-उधर कहीं रख दिया जाता है, यद्यपि सावधानीसे समीक्षा करनेपर मालूम होगा कि स्वतन्त्र और सरल बनाव-सजाव अक्सर छोटी छोटी चीजोंपर बहुत बारीकीसे ध्यान देनेका ही परिणाम होता है। इस तरहके बनाव-सजावमें टाइप, ब्लाक तथा सदेश, तीनोंकी ओर एक समवेत पूर्णांगके रूपमें अधिकसे अधिक ध्यान देना आवश्यक होता है। वह एक धन एक, धन एक मिलाकर तीन होना ही नहीं, वरन् उससे कुछ अधिक वस्तु है। वह एक ऐसा समूचा पदार्थ या पूर्णांग होना चाहिये जिससे यह भासमान होता हो कि जो कुछ कहा गया हो और उसका जो कुछ आशय हो, पाठक टाइप या ब्लाककी रुकावटके बिना उसका अनुसरण कर सके। मतलब यह कि पाठक द्वारा, प्राय अचेतन रूपसे, वह सब कुछ एक ही इकाईके रूपमें स्वीकार कर लिया गया हो।

पाठकने देखा होगा कि हालमें एक तरीका यह चल पडा है कि ब्लाककी छपाई कागजके किनारेसे आगे बढ जाने दी जाती है। इसके लिए अग्रेजीका विशिष्ट शब्द है "ब्लीड-ऑफ" (बह-निकलना)। जब पहले पहल यह देख पडा तो समस्त मुद्रणजगत्में इसकी भरमार हो गयी, जिससे उसमें एक नवीनता, एक ताजगी आ गयी जिसकी बडी आवश्यकता थी। सामान्य छपाईसे इस 'बहिर्द्रवण' की छपाई में अधिक खर्च पडता है, क्योंकि कागजके मामूली किनारेसे बाहरतक ब्लाक छपता है। यदि कागजके किनारेके बाहर ब्लाकका दबाव छापनेवाले बेलनपर बराबर पडता रहे तो शीघ्र ही दुर्घटना घटित होनेकी सम्भा-

बना है, इसलिए छापनेके लिए कागज कुछ बड़ा लिया जाता है और प्रकाशनके पहले कागज काटनेवाली मशीन द्वारा यथोचित आकारका बना दिया जाता है।

भारतमें बहुतसे पत्र इसी तरीकेका प्रयोग करते हैं जो आसानीसे पहचाना जा सकता है। जब किसी कागजके किनारे कागजका कोई हिस्सा देख नहीं पड़ता, तब इसे 'ब्लीड-ऑफ' कहते हैं, जिससे यह आभास होता है मानो उक्त चित्र कागजके बाहर अनन्त दूरीतक फैलता चला गया हो।

एक चतुर शिल्पीके रूपमें अपने कर्त्तव्यका पालन नहीं किया, इसीसे कलाकारको इसमें प्रवेश करनेका अवसर मिला। विज्ञापन-समितियोंने छपाईके काममें कई तरहसे महानता पहुँचायी है और भारतमें इस कला-की उन्नति करनेमें यथेष्ट रूपसे अशदान किया है।

भारतमें इन पत्र-पत्रिकाओंका भविष्य

उत्पादनकी दृष्टिसे भारतमें लेखों सम्बन्धी इन पत्र-पत्रिकाओंका भविष्य कैसा है? इस प्रश्नका यथोचित उत्तर देनेके लिए कई बातोंपर विचार करना आवश्यक है।

लेखों सम्बन्धी पत्र पत्रिकाओंके उत्पादनका भविष्य भारतमें इस समय दुनियाके प्राय अन्य किसी देशसे अधिक उज्ज्वल है, प्रचार-सख्याकी दृष्टिसे भी और प्रत्येक अकके सुन्दर बनाव-ठनावकी दृष्टिसे भी। इसके लिए काफी विस्तृत क्षेत्र पडा है, इतना विस्तृत कि उसपर शायद किसीका विश्वास ही न हो।

पहले हम कह चुके है कि मुद्रणकी कला अन्तर्राष्ट्रीय है। यह ऐसा कथन है जिसकी सत्यता उस प्रत्येक स्थान या देशमें स्वीकार की जाती है जहाँ जहाँ छपाईका काम होता है। कागजका ठिकानेसे प्रयोग, यथोचित ढगसे रोशनाई लगाना और मशीनपर छापना, बढ़िया जिल्द-बन्दी करना आदि ऐसी चीजे है जो दुनियाके एक भागमें ही नहीं, हर भागमें अच्छी समझी जाती है। किन्तु इसका यह आशय नहीं कि एक देशकी छपाई और दूसरेकीमें कोई अन्तर नहीं होता। अमे-रिकाकी छपाई इग्लैण्डकी या फ्रास, इटली और जर्मनीकी छपाईसे, भाषाओं सम्बन्धी अन्तरकी ओर ध्यान न देते हुए भी स्पष्टत भिन्न होती है। किन्हीं भी दो देशोंमें छपाईकी समान विशेषताएँ नहीं होतीं, ठीक उसी तरह जिस तरह अन्य सास्कृतिक विषयोंमें नहीं होतीं। साडी-को कोई भी व्यक्ति ट्वीडकी पोशाक समझ लेनेकी भूल नहीं कर सकता। एक पूर्वी है, दूसरी पश्चिमी। अपने स्थानपर प्रत्येक ही प्रशसनीय है और पहनावा वह भी है, यह भी है। फिर भी कोई यह नहीं कह सकता

लकडीकी खुदाईमे, चॉदीके वर्तन और सुन्दर रेशमी वस्त्र तैयार करनेमें और पुनरुद्धार की गयी जनताकी कलामें प्राप्त है। उसे ऐसे व्यक्तियोकी आवश्यकता है जो इस देशकी सामग्रीका अध्ययन करने और छपाई तथा बनाव-सजावमे उसका उपयोग करनेको तैयार हो। उसे ऐसे आदमी चाहिये जो छपाईकी कलाके विकासमे अपने आपको अर्पित कर दें, केवल रुपया कमानेकी गरजसे ही उसमे प्रविष्ट न हों और उसे ऐसी संस्थाएँ चाहिये जो देशके लिए अपने लाभका कुछ हिस्सा छोड देनेको तैयार हों, ताकि वह मुद्रणकलामें अपने भाव प्रदर्शित करनेकी प्रवृत्तिको विकसित कर सके।

उत्पादनमे शिल्पियोकी आवश्यकताके साथ-साथ अभिन्यास या सजावट करनेवाले ऐसे आदमी भी चाहिये जो टाइपके प्रेमी हों और उसकी अनुशासित अभिव्यक्तिके सौन्दर्यसे भी जिनका प्रेम हो। बनाव-सजाव करनेवाले आदमियोको, उन तथाकथित अनावश्यक व्यक्तियोंको, नियुक्त न कर भारतके समाचारपत्रोने शोचनीय भूल की है। विज्ञापनोंमे उन्होंने टाइप बैठानेकी कलाकी छीछालेदर कर डाली है और अक्सर ऐसे चित्र जो नाममात्रको फोटो-चित्रोसे मिलते-जुलते होते हैं, काफी अच्छे समझकर स्वीकार कर लिये जाते हैं।

छोटे-छोटे समाचारपत्र और पत्र-पत्रिकाएँ ही जिनके पास पैसेकी कमी हो, इस दृष्टिसे सबसे बडे अपराधी हों, यह बात नहीं। अधिक प्रचारवाले बड़े पत्रोंका इसमें सबसे अधिक दोष है। अन्य पत्रोका नेतृत्व करनेके बजाय वे सरल मार्गपर मस्तानी चालसे चलते रहे और इस प्रकार उन्होने अपने आपको आलस्य-ग्रस्त बना डाला। भारतमे शायद ही कोई ऐसा पत्र हो जिसपर यह दोष न लगाया जा सके कि उसने मुद्रणसौन्दर्य सम्बन्धी अपनी जिम्मेदारी ग्रहण करनेसे मुँह मोड लिया। टाइपोंके चुनावमे कोई विशेष खयाल नहीं किया जाता और ऐसे फेस-वाले टाइप रखकर चमक-दमक बढानेका काम जिनमे सौन्दर्यके साथ उपयोगिताका मेल हो, कम सुलभ पत्र-पत्रिकाओंके लिए छोड दिया

जाता है। जबतक बड़े आदमी रास्ता नहीं दिखलाते, तबतक छोटे लोगोंसे उनका अनुसरण करनेकी आशा नहीं की जा सकती।

पत्र-पत्रिकाओंकी छपाईके भविष्यकी क्या प्रत्याशा है? अनन्त और असीम। जैसी उसकी संस्कृति महान् है, वैसी ही उसकी पाठक-संख्याकी सम्भावनाएँ हैं। जब साक्षरताका अधिक व्यापक प्रसार हो जायगा—और ऐसा होना निश्चित ही है—तब पत्र-पत्रिकाओंके लिए इतना विस्तृत क्षेत्र सामने आयगा जितना दुनियामें कहीं नहीं है। अभी तक हमारे देशमें शायद ही ऐसे मासिक या साप्ताहिक पत्र हों जिनका प्रचार राष्ट्रव्यापी हो। दैनिकपत्र क्षेत्र विशेष तक ही सीमित रहते हैं और कोई भी ऐसा दैनिक नहीं है जो एक साथ तीनसे अधिक स्थानोंसे प्रकाशित होता हो। दैनिक पत्रके सामने कानूनी ऐसी बाधा है कि वह 'डाइजेस्ट' के ढंगपर भी अपना संस्करण निकाले और कई भाषाओंमें उसे प्रकाशित करे। यही बात साप्ताहिक तथा मासिक पत्रके सम्बन्धमें कही जा सकती है। भविष्यमें पाठकोंकी संख्या करोड़ोंतक पहुँच जाने की सम्भावना है और इसमें बराबर वृद्धि होती जायगी। ग्राहक, प्रचार संख्या इतनी अधिक बढ़ जायगी जितनी शायद कल्पना भी नहीं की जा सकती क्योंकि एक बार जब भारतके लोग पढ़नेकी क्षमता प्राप्त कर लेंगे तब वे पढ़नेकी चीज प्राप्त करनेके लिए शोरगुल मचाये बिना न रहेंगे।

की सेवाके लिए कर सके जिसे उन सब चीजोंकी आवश्यकता होगी जो उसके पत्र तथा पत्रिकाएँ उसे दे सकें।

आनेवाले परिवर्त्तनोंके कारण भारतीय पत्रोंको अपने इतिहासमें सर्वोत्तम अवसर प्राप्त होगा किन्तु उन परिवर्त्तनोंका सामना करनेके लिए अधिक गहराईकी ओर अधिक व्यापक दृष्टिकोणकी आवश्यकता होगी। उस अद्वितीय स्थितिके लिए उन लोगोंको पहलेसे तैयार रहना चाहिये जो मुद्रणकलाकी उन्नतिमें रुपया लगा सकें और उन लोगोंको भी जो छपाईका काम सुचारु रूपसे कर सकें और इतने बड़े पैमानेपर कर सकें जिससे समस्त देशकी ही आवश्यकता न पूरी हो जाय वरन् उन हजारों भारतीयोंका भी काम चल जाय जो देशकी सीमाके बाहर अन्य-अन्य स्थानोंमें निवास करते हैं।

---

१२. आकाशवाणीसे सम्बद्ध पत्रकारी

प्रारम्भमें थी केवल ध्वनि

ध्वनिसे उत्पन्न हुआ शब्द

शब्दसे बने भाषण तथा लेखन

शब्दकी इन दो सन्तानोंमें प्रभुत्व या प्राधान्यके लिए संघर्ष चलता रहा और बादमें हुए आविष्कारों (मुद्रण आदि) के कारण जीत लेखनकी ही हुई।

फिर भी भाषणके स्वरूपमें कोई अन्तर न आया और न उसकी प्रभावकारिता ही कम हुई। उसकी सहायतासे लोगोंने [illegible] प्राप्त की है, विचारोंका आदान प्रदान होता रहा है और उसने प्रचार [illegible] मनोरंजन द्वारा लाखों आदमियोंको प्रभावित किया है, क्योंकि भाषण ध्वनिका ही रूप है और भाषामें उसकी अपेक्षा ध्वनि अधिक [illegible] है। [illegible]-विद्याके [illegible] ही अनुयायी रहे हैं, जिन्हें हम गिने गिनाये कहते हैं। [illegible] योग्यतासे ही उसकी उन्नति होती है और कठिन परिश्रमसे ही [illegible] जा सकता है।

करना शुरू कर दिया है, जैसा कि ई० एम० फोर्स्टर, जेम्स स्टीफन्स, विलियम सारोयन, तथा लुई मेकनीस दिखला चुके है।

लेखन-विद्याके थोड़ेसे अनुयायियोंकी तुलनामें आकाशवाणी सुनने-वालोंकी संख्या कहीं ज्यादा है, चाहे वे साक्षर हो या निरक्षर (विशेषकर इस देशमें जहाँ १८ प्रतिशत लोग ही पढ़े-लिखे है)। इसके सिवा गण-तत्रके लोक-तत्रीय सविधानमें विशाल अपढ जनतातक पहुँचना नितान्त आवश्यक है, अत इन दो कारणोंसे भाषणोंके लिए अधिक अवसर प्राप्त होनेकी सम्भावना है।

ध्वनि-प्रसारणका प्रारम्भ

भारतमे सुव्यवस्थित रूपसे ध्वनि-प्रसारणका प्रारम्भ ५ मई १९३२ को हुआ। भारत सरकारने निश्चय किया कि देशमे ध्वनि-प्रसारणका कार्य सरकारी प्रबन्धमे चलाया जाय। इसके पहले इस दिशामे कई प्रयत्न खानगी तौरसे किये जा चुके थे किन्तु वे सभी निष्फल हुए। १६ मई १९२४ को मद्रासमे आकाशवाणी प्रसारित करनेके लिए सबसे पहली सस्था 'दि रैडियो क्लब' स्थापित हुई। उसी साल ३१ जुलाईने उसने ध्वनि-प्रसारणका काम शुरू कर दिया, किन्तु अक्टूबर १९२७ मे उसे इससे हाथ खीच लेना पडा।

इसी बीच 'इण्डियन ब्राडकास्टिग कम्पनी' नामक एक सस्था बन चुकी थी और २३ जुलाई १९२७ को उस समयके वाइसराय लार्ड इरविनने कम्पनीके बम्बई केन्द्रका उद्‌घाटन किया, जिसमे १.५ किलो वाटवाला मीडियम वेवका ध्वनि-विक्षेपक यत्र बैठाया गया था। सयोगसे यही पहला ध्वनि-विक्षेपक यत्र था जो भारतमे स्थापित किया गया था। कपनीके पत्र 'दि इण्डियन रेडियो टाइम्ज' का प्रथमाक भी (अग्रेजीमे) इसी समय निकला। कपनीका दूसरा ध्वनि-विक्षेपक-यत्र (ट्रास मिटर)—यह भी १.५ किलोवाट का, मीडियम वेव, था—अगले महीने कलकत्तेमें प्रतिष्ठित किया गया और 'बेतारजगत्' नामक बगलाका आकाशवाणी सम्बन्धी पत्र, सितम्बर १९२९ मे प्रकाशित हुआ।

किन्तु यह कम्पनी भी शीघ्र ही संकटमें पड़ गयी। सन् १९२९ में रेडियोके ७७३५ लाइसेंस जारी किये गये थे किन्तु शुल्क एकत्र करनेका कोई साधन न था। कम्पनीकी अधिकृत पूँजी १५ लाख था, जब कि परिदत्त पूँजी ६ लाख रुपये ही थी। परिदत्त पूँजीका दो तिहाईसे भी अधिक भाग बेतार यन्त्रोंके प्रतिष्ठापनमें ही खर्च हो गया और शेष भी शीघ्र ही चालू खर्चके रूपमें समाप्त हो गया। जनवरी १९३० में कम्पनीने भारत सरकारसे प्रत्यक्ष आर्थिक सहायताकी प्रार्थना की और १ मार्चको उसका परिसमापन हो गया।

इस बीच इस दिशामें एक दो प्रयत्न और हुए। सन् १९२८ में यंगमेन्स क्रिश्चियन असोसियेशनने लाहौरमें एक ध्वनि प्रसारण केन्द्र खोल दिया। इसके सिवा अप्रैल १९३० में मद्रास निगमने भी छोटे पैमानेपर ध्वनि प्रसारणकी व्यवस्था शुरू की, किन्तु ये दोनों ही प्रयत्न निष्फल हुए।

१ अप्रैल १९३० को भारत सरकारने ध्वनि प्रसारणकी व्यवस्था सीधे अपने नियन्त्रणमें ले ली और उसका नाम रखा 'दि इण्डियन स्टेट ब्राडकास्टिंग सर्विस' किन्तु १० अक्टूबर १९३१ को उसे समाप्त कर दिया। इसके बाद ५ मई १९३२ को भारत सरकारने उसे सरकारी प्रबन्धमें ही चलानेका निश्चय किया।

इस समय बेतार यन्त्रोंके लिए जारी किये गये अनुज्ञापत्रोंकी संख्या ८५५७ थी और सुननेवालोंकी लगभग तीन हजार। उस समयसे आकाशवाणी प्रसारणमें बड़ी तेजीसे प्रगति होती रही है और अनुज्ञापत्रोंकी संख्या प्रति वर्ष बढ़ती गयी है, जैसा कि इन आँकड़ोंसे स्पष्ट है—

१९३७	५०,६८०
१९३८	६८,८८०
१९३९	९२,७८२
१९५२	६,६७,१३०

सुननेवालोंकी संख्या लगभग ८० लाख है।

८ जून १९३६ को 'दि इण्डियन स्टेट ब्राडकास्टिंग सरविस' का नाम बदलकर 'आल इण्डिया-रेडियो' कर दिया गया।

जब कि १९३२ मे ध्वनि-प्रसारणके केवल दो केन्द्र थे—बम्बई तथा कलकत्ता—प्रत्येकमे १.५ किलोवाटका मीडियम वेव यन्त्र लगाया गया था, वहाँ अब १९५३ मे देशके एक छोरसे दूसरे छोरतक २१ केन्द्र स्थापित हो चुके है जिनमे ४८ दूर-विक्षेपक यन्त्र, विभिन्न किलोवाटके, ध्वनि-प्रसारणका काम कर रहे है। ध्वनि-प्रसारणके क्षेत्रमे अब दुनियाके देशोमे भारतका स्थान तीसरा है।

रेडियो-सम्बन्धी पत्रकारी

समाचार देना, समाचार या समाचारोको नाटक इत्यादिका रूप देना, समाचारोकी समीक्षा, तथा बेतारके यन्त्र द्वारा अन्यान्य रूपसे समाचार प्रस्तुत करना—इसे ही रेडियो-सम्बन्धी पत्रकारी कहते है।

ये सब कार्य किस तरह किये जाते है, इसकी चर्चा करनेके पहले मेरे लिए यह आवश्यक हो जाता है, और मेरा यह कर्तव्य भी है, कि मैं यह समझा दूँ कि 'समाचार' क्या है, जिससे यह विषय स्पष्ट हो जाय और आगे चलकर इसका अधिक विवेचन किया जा सके। यह कोई सरल काम नहीं है, क्योंकि 'समाचार' क्या है, इसकी सामान्य रूपसे विश्वसनीय परिभाषा करते समय कोई भी दो आदमी एक दूसरेके निकट नहीं पहुँच सकते। (चौथा अध्याय देखिये)।

फिर भी, आइये इस 'अपरिभाषेय-सी वस्तु' का तत्त्व समझनेके लिए हम कोई भी एक काल्पनिक उदाहरण ले ले। मद्रासके एक समाज-सुधारकने, अथवा यो कहिये कि समाज-सुधार चाहनेवाली एक

हो अथवा जो, आशाके प्रतिकूल, किसी कारणसे न हुई हो, न हो रही हो और शायद न होनेवाली हो।" (पृ० १७१)

श्री व्हाइटने विभिन्न सम्भावनाओंका खयाल रखते हुए अपनी परिभाषामें एक लचीला तथा ठीक-ठीक अर्थका अनुसरण करनेवाला तरीका आजमाया है किन्तु उन्होंने "दिलचस्पीकी घटना" का अर्थ स्पष्ट नहीं किया है, जो समस्याकी मुख्य कठिनाई है।

डाउलिंग लेदरवुडने 'जर्नलिज्म ऑन दि एयर' नामक पुस्तकमें लिखा है—"समाचार किसी घटना, स्थिति, अवस्था या मतका सही-सही और समयपर दिया गया विवरण है—वह विवरण जिसमें उन विशिष्ट लोगोंकी दिलचस्पी होगी जिनके लिए वह दिया गया है।"❀

चाहे जिस तरहसे आप इसकी परिभाषा कीजिये, इसके निकट पहुँचने, व्याख्या करने, के तरीकेमें कोई न कोई कसर रह ही जाती है। फिर भी यहाँ जो कुछ कहा गया है उसमें उसका स्थूल रूप हमारे सामने आ ही जाता है। शेष बात तो व्यक्तिगत रूपसे समझनेकी है और किसी विशेष विषयपर व्यक्तिके निजी निर्णयकी है।

भारतमें रेडियो सम्बन्धी पत्रकारीका प्रारंभ रेडियोकी व्यवस्था होनेके कई वर्ष बाद हुआ। यद्यपि देशमें पहला रेडियो क्लब सन् १९२४ में मद्रासमें स्थापित हुआ और रेडियोका पहला केन्द्र बम्बईमें जुलाई १९२७ में खोला गया, फिर भी आकाशवाणी द्वारा समाचारोंका ठिकानेसे दिया जाना १० वर्ष बाद तक शुरू नहीं हुआ। किन्तु १९३० से बम्बई तथा कलकत्तेके केन्द्रोंसे समाचारोंका वह सारांश सुनाया जाने लगा जो समाचार-समितियों द्वारा उनके पास भेज दिया जाता था और जो 'संक्षिप्त, असम्बद्ध तथा अक्सर पुराना' होता था। ये संक्षिप्त समाचार पत्रोंमें छापनेकी दृष्टिसे तैयार किये जाते थे, ध्वनि-विक्षेपक यन्त्र द्वारा प्रसारित किये जानेके लिए नहीं। न तो उनका 'सम्पादन' हो पाता था और न

❀ व्हाइट द्वारा अवतरित, पृ० १७१

टिकानेमें उन्हें रेडियोके अनुरूप बनानेका ही प्रयत्न किया जाता था, क्योंकि इसके लिए कोई सम्पादक मण्डल या कर्मचारी-दल ही न था।

सन् १९३५ तक ऐसे बेसिलसिलेवार समाचार दिनमें केवल दो बार—एक बार अंग्रेजीमें तथा दूसरी बार किसी देशी भाषामें—बम्बई तथा कलकत्ता केन्द्रोंसे ८-३० से ९-३० तक रातमें प्रसारित किये जाते थे। जब १९३६ के अन्तमें समाचारोंकी तीसरी विवरणिका भी (अंग्रेजी तथा हिन्दुस्तानीमें) दिल्लीसे सुनाई जाने लगी—९ से १० तक सन्ध्या समय—तब उसकी ज्यादा कद्र नहीं हुई वरन काफी टीका-टिप्पणी ही हुई।

इसी समय दोपहरको भी १-५५ से पाँच मिनटके लिए एक और विवरणिका सुनाई जाने लगी पर जनताने इसमें भी कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी इसलिए सन् १९३७ में ये दोनों बन्द कर दी गयीं। १६ अप्रैल १९३७ को दो और विवरणिकाएँ—एक तो हिन्दुस्तानीमें सवेरे ८-१० पर दूसरी अंग्रेजीमें ८-५० पर—शुरू की गयीं।

रेडियोकी यही स्थिति थी जब सितम्बर १९३७ में चार्ल्स बार्न्स आल इण्डिया रेडियोके समाचार विभागके प्रथम अधिकारीके रूपमें (जो उस समय समाचार सम्पादक कहलाता था) अपना कार्य-भार सम्भाला। तुरन्त ही श्री बार्न्सने आकाशवाणी द्वारा समाचार सुनानेकी स्थितिका पुनरवलोकन किया और निश्चय किया कि “इस मामलेके लिए कोई कारण नहीं प्रतीत होता कि भारतमें तथा अन्य देशोंमें इतना अधिक अन्तर है कि दिनमें कई बार यदि समाचार प्रसारित किये जायें तो लोग उन्हें अधिक पसन्द न करेंगे।” १ अक्तूबरसे—अर्थात् उनके आनेके लगभग एक ही महीने बाद—श्री बार्न्सने शामको समाचारोंकी दो और विवरणिकाएँ आरम्भ कर दीं—६ बजे अंग्रेजीमें और ६-५० पर हिन्दुस्तानीमें।

प्रसारित की जाने लगीं। बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, लाहौर, लखनऊ और पेशावरसे इनका पुन प्रसारण किया जाता था। इसके सिवा बम्बई तथा कलकत्तेसे दो बार तथा अन्य केन्द्रोंसे कमसे कम एक बार व्यापारिक समाचार भी अँग्रेजीमें प्रसारित किये जाते थे।

जब द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हुआ, तब आल-इण्डिया-रेडियोका केन्द्रीय-समाचार-सघटन तुतलानेवाले उस शिशुके सदृश था जो अभी चलना सीखनेका प्रयत्न ही कर रहा था।

युद्धके कारण सामान्यत. सब लोगोंमें, विशेष कर भारत सरकारके मनमें, रेडियोके उपयोग और प्रभावकारिताके सम्बन्धमें नयी धारणा हुई। परिणामत तीव्र गतिसे उसका विस्तार किया जाने लगा। कर्मचारी बढा दिये गये और अग्रेजी तथा अन्य भाषाओंमें समाचारोंकी और भी विवरणिकाएँ प्रसारित की जाने लगीं। समाचार प्राप्त करनेके लिए विभिन्न युद्ध-क्षेत्रोंमें युद्ध-सवाददाता भेजे गये।

एक बात और हुई। आल इण्डिया रेडियोने अब विदेशोंके लिए भी विदेशी जनताको विशेष रूपसे लक्षित करते हुए, समाचार प्रसारित करना आरम्भ कर दिया। समाचार-सम्पादक श्रीबार्न्स समाचारों तथा विदेशी समाचार प्रसारण-व्यवस्थाके सचालक बना दिये गये।

इतना होते हुए भी देशका रेडियो अभीतक न तो अपना लक्ष्य निर्धारित कर सका था और न अपने भावी-जीवनके सम्बन्धमें कोई योजना या रूप-रेखा ही बना सका था*। वह वही करता था जिसे करनेका आदेश तत्कालीन ब्रिटिश शासक, अपने लक्ष्यकी पूर्त्तिके लिए, उसे दिया करते थे। वह स्कूलमें पढनेवाले बालकके सदृश था, जो अनुशासनकी और डॉट-डपटकी शृखलाओंसे बँधा हुआ था और जो यह जानता था कि कर्त्तव्यकी अवहेलना होने पर दण्डका भागी अवश्य बनना पड़ेगा। वह विस्तृत क्षेत्रमें परिभ्रमण तो करता था किन्तु उसका

* इण्डियन लिसनर (१९४९) के एक लेखसे रेडियोके समाचार-सचालक श्री एम० एल० चावला द्वारा उद्धृत।

आयव्ययकके मिनट-मिनटके समाचार विशेष व्यवस्थाके अनुसार प्रसारित किये जाने लगे। सीमाप्रान्तकी ओरसे आनेवाले आक्रमणकारियोंसे कश्मीरकी रक्षा करनेके लिए भेजी गयी भारतीय सेनाके श्रीनगरमें उतरनेके बाद दूसरे दिन ही एक संवाददाता अभियान सम्बन्धी समाचार प्रेषित करनेके लिए हवाई जहाज द्वारा दिल्लीसे वहाँ भेजा गया। महात्मा गान्धीकी मृत्यु सम्बन्धी सारे समाचार उस कमरेसे ही प्रेषित किये जानेकी व्यवस्था की गयी थी, जहाँ मृत्युके समय वे लेटाये गये थे।

भारतीय रेडियो पड़ोसी देशोंके सम्बन्धमें भी स्वतन्त्र रूपसे (बिना किसीके फुसलाये) दिलचस्पी लेने लगा। बर्मा तथा लंकाके स्वातन्त्र्य महोत्सवके समाचार घटनास्थलसे ही सीधे प्राप्त करनेकी व्यवस्था की गयी। ऐसे प्रत्येक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनका, जिसकी बैठक दिल्लीमें हुई या किसी पड़ोसी देशमें हुई, विशेषरूपसे ध्यान रखा गया।

यह थी आल इण्डिया रेडियोके विकासकी प्रगति।

इस प्रकार १९५२ के समाप्त होते-होते आल इण्डिया रेडियोके २१ केन्द्रोंसे जो सारे देशमें फैले हुए थे, प्रतिदिन २४ घण्टोंकी अवधिमें १४ देशी और १० विदेशी भाषाओंमें समाचारोंकी ७२ विवरणिकाएँ प्रसारित की जाने लगीं। स्वदेशवासियोंके लिए १९ घण्टोंके चक्रमें ४० समाचार विवरणिकाएँ इन भाषाओंमें प्रसारित की जाती हैं—असामी, बंगला, अंग्रेजी, गोरखाली, गुजराती, हिन्दी, कन्नड, डोगरी, कश्मीरी, मलयालम्, मराठी, उड़िया, पंजाबी, तामिल, तेलगू और उर्दू।

विदेशी समाचार-व्यवस्थामें प्रतिदिन इन भाषाओंकी कुल ३२ विवरणिकाएँ प्रसारित की जाती हैं—अफगानी, अरबी, बरमी भाषा, कैण्टनी, अंग्रेजी, फ्रेंच, हिन्दएशियाई भाषा, कुओयू, फारसी तथा पुश्तो, और विदेशोंमें रहनेवाले भारतीयोंके लिए इन भाषाओंमें—डोगरी, गुजराती, हिन्दी, कश्मीरी तथा पोठवारी।

जिन भूक्षेत्रोंकी ओर लक्ष्य करके समाचारोंकी ये विज्ञप्तियाँ या विवरणिकाएँ प्रसारित की जाती हैं, वे ये हैं—पूर्वी तथा दक्षिण पूर्वी-

एशिया, मध्य यूरोप, ग्रेट ब्रिटेन, पूर्व तथा दक्षिण पूर्वी आफ्रिका, मारिशस, बर्मा, चीन, हिन्दएशिया, फीजी द्वीपपुंज, पश्चिमी द्वीपपुंज, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, फारस, साउदी अरेबिया, मिस्र, लेबनॉन शाम, उत्तरी आफ्रिका, जोर्डन, सूदान, पश्चिमी यूरोप तथा लेवाट।

हो सकता है कि दुनियामें और ऐसी भी कोई आकाशवाणीकी व्यवस्था हो जिसमें इतने अधिक समाचार प्रसारित किये जाते हों, फिर भी मेरा खयाल है कि इस कार्यके लिए इतनी अधिक भाषाओंका प्रयोग करनेवाली व्यवस्था शायद ही किसी देशमें हो।

जाति, धर्म, भाषा तथा संस्कृतिकी भिन्नता भारतकी युग युगसे आनेवाली वरासत है। इन विभिन्नताओंको ग्रहण कर उन्हें आत्मसात् कर लेना और फिर भिन्नतामें एकताका विकास करना तथा उसमें सफल होना, ऐसी रही है भारतकी प्रतिभा।

फिर भी एकतामें भिन्नता नष्ट नहीं होने दी और यह एक बहुत बड़ी कठिनाई है जिसका भारतीय रेडियोको प्रसारण व्यवस्थामें सामना करना पड़ता है।

रेडियोके लिए लिखना

के लिए बोलचालकी शैली, जिसमें किसी तरहकी अशिष्टता न आने पावे, सबसे अच्छी होगी। "इस तरह लिखिये मानो आप कुछ आदमियोंसे जोरसे कुछ कह रहे हो"—यही सामान्य सिद्धान्त होना चाहिये। लेकिन बहुत ज्यादा सादगी भी ठीक नहीं, क्योंकि पढ़नेमें ऐसी रचना कुछ ऊट-पटाग-सी लगने लगती है।

रेडियोके लिए लेखादि लिखनेकी विशेष विधि या पद्धतिके सम्बन्धमें कई पुस्तक लिखी जा चुकी है किन्तु केवल कठोर अनुभवसे ही यह बात जानी जा सकती है कि कौन-सी लिखित रचना अधिक प्रभावोत्पादक होगी। वाक्यके अन्तमें रखे गये विशेषता-सूचक शब्द (जैसे 'यह बात प्रामाणिक रूपसे ज्ञात हुई है) पाठकी अग्रगतिको कुण्ठित-सा कर देते है। निषेधात्मक समाचार कभी-कभी निश्चयात्मक कथनसे अधिक जोरदार मालूम पड़ता है और हमेशा ही उसकी उपेक्षा न की जानी चाहिये। भिन्न भिन्न तरहसे पुनरुक्ति करना रेडियोके लिए प्रस्तुत की गयी रचनामें एक अच्छा गुण समझा जायगा, किन्तु शब्द-समूहोकी पुनरुक्ति न होनी चाहिये और न अनावश्यक शब्दोंका प्रयोग ही।

संख्याओंका प्रसारित किया जाना न तो सरल है और न खतरेसे रहित। गोल गोल निकटतम अंक देना हमेशा बेहतर होता है। बोल-चालके शब्द कभी-कभी तो जरूर जोरदार-से मालूम होते है किन्तु अक्सर कानोंको खटकते है। समाचारोंके विवरणमें उचित रूपक जितने अच्छे फबते हैं, उतने दुर्भाग्यसे रंग तथा वर्णन नहीं। फिर भी यह कमी पूरी करनेके लिए वर्तमान कालमें कर्तृवाच्यकी उपयुक्त क्रियाओंका प्रयोग अधिक लाभदायक हो सकता हैं।

ये शास्त्रीय सिद्धान्त भूलमें पड़नेसे बचनेके लिए तथा अच्छी रचना तैयार करनेके लिए विश्वसनीय संकेत-स्तम्भ है। किन्तु उनके कारण ऐसी ध्वनि-प्रसारण व्यवस्थापर काफी जोर और परिश्रम पड़ता है जिसमें एक या दो भाषाओंका नहीं, (भारतकी तरह) २८ भाषाओंका प्रयोग,

आन्तरिक तथा बाह्य प्रसारण-व्यवस्थामे, करना पडता है। ऐसे देशमे जहाँकी सस्कृतियाँ तथा भाषाएँ तो धार्मिक उत्कृष्टताओसे ओत-प्रोत हो और जहाँ बोलचालकी भाषाका मतलब प्राय अपढ लोगोकी अशिष्ट भाषासे हो, आल इण्डिया रेडियोका कार्य किसी भी तरह आसान नहीं कहा जा सकता। इस क्षेत्रमे अभीतक जो सफलता मिली है, अपने तई प्रशसनीय होती हुई भी, वह प्रारम्भिक ही समझी जायगी—भारतीय भाषाओमे रेडियोके लिए लिखनेकी कलाका अभी समुचित विकास नहीं हो पाया है।

इन विषमताओ तथा देशकी विशालताके कारण समाचारोकी विवरणिका तैयार करनेमे अजीब उलझने पैदा हो जाती है। उन भाषाओकी सख्याके कारण जिनमे समाचार प्रसारित किये जानेको हो तथा उन क्षेत्रोकी सख्याके कारण जिनके लिए उन्हे प्रसारित करना हो, यह कठिनाई सामने आती है कि कौन-कौनसे समाचार हिन्दीमे, कौनसे मराठी या गुजरातीमे और कौनसे तेलगू, कन्नड या बँगलामे रखे जायँ और किस-किसको कितना-कितना समय दिया जाय। देशकी विशालता तथा भिन्नताके कारण सुननेवालोकी दिलचस्पी भी अलग-अलग समाचारो तथा विषयोमे होती है। हाँ, सभवत केवल राजनीतिक समाचार ही ऐसे होते है जिनका प्रभाव सबसे अधिक लोगोंपर पडता है, अत जिनका प्रसारित किया जाना सबके लिए आवश्यक होता है।

स्थानीय समस्याओंकी इस पृष्ठभूमिके साथ साथ माध्यमकी विशेषताओमे अन्तर्निहित रेडियो सम्बन्धी पत्रकारीके विशेष प्रश्नोका अलग महत्त्व है जिससे समाचारोकी विवरणिका तैयार करनेमें भिन्न भिन्न ढगसे चलना पडता है।

सबसे पहली बात तो यह है कि समाचार-सम्पादकको विवरणिका तैयार करनेके लिए बहुत ही सीमित समय उपलब्ध होता है—पाँच मिनट, दस मिनट या पन्द्रह मिनट, जैसा समय-सूचीमे निर्दिष्ट हो। १० मिनटवाली विवरणिकामें १२०० से अधिक शब्द नहीं पढे जा

सकते, जो दैनिक पत्रके लगभग एक कालमकी सामग्रीके बराबर होते हैं।

स्वभावतः सीमित संख्याके महत्त्वपूर्ण समाचार ही विवरणिकामें शामिल किये जा सकते हैं। इसलिए इनके चुनावमें ऊँचे दरजेकी मूल्यांकन-क्षमता, निर्णायक बुद्धि तथा सुरुचिकी आवश्यकता होती है। समाचारोंका तुलनात्मक महत्त्व समझ लेने, चुनाव कर लेने और संवाद-समितियों, संवाददाताओं, सरकारी सूचनालयों, अन्य देशके रेडियो आदि विविध स्रोतोंसे प्राप्त समाचारोंकी कापी फिरसे लिख लेनेके बाद सब अंशोंको एकमें जोड़ने और महत्त्वके अनुसार उन्हें क्रमबद्ध करनेकी प्रक्रियासे काम लिया जाता है जिससे विवरणिकामें एक तरहका समन्वय तथा एकरूपता लायी जा सके।

इसके सिवा, बिलकुल एक-दो मिनट पहले तकका समाचार भी चला जाना चाहिये और कभी-कभी तो, उदाहरणार्थ प्रधान मंत्री द्वारा अचानक दिये गये किसी वक्तव्यके कारण, सारी विवरणिकाका रूप ही बदलकर फिरसे उसे नये तरीकेसे सुव्यवस्थित करना पड़ता है।

एक बात और। राज्य द्वारा संचालित समाचार-प्रसारण संस्थाकी जिम्मेदारियाँ वृत्तीय कौशलको नये साँचेमें ढालनेका उपक्रम करती हैं। उसकी समाचार सम्बन्धी नीतिका सब बातोंमें देशकी सरकारकी नीतिके चारों तरफ केन्द्रित होना अनिवार्य है, फिर भी सरकारी नीतिकी आलोचनाकी उपेक्षा वह नहीं कर सकती। लोकतंत्रीय शासनमें, जैसा कि भारतका शासन है, जनताकी आलोचना ही उन नीतियों या कार्य-पद्धतियोंका केन्द्रबिन्दु तथा आधार है जो जनताके विचारोंको प्रतिफलित करती है।

हालके सार्वजनिक निर्वाचनमें, जिसने मतदाताओंकी संख्या और गणना क्षेत्रके विस्तार आदिकी दृष्टिसे अन्य सब निर्वाचनोंको मात कर दिया था, आल इण्डिया रेडियोने देशके प्रत्येक राजनीतिक दलकी नीति तथा उसके नेताओंके वक्तव्यों और भाषणोंका प्रसारण किया—इस

प्रकार जनताको उन विभिन्न प्रश्नोकी जानकारी करा दी जिन्हे लेकर चुनाव लडे गये थे। कभी-कभी तो निर्वाचनकालमे तथा उसके बाद पक्षपात विहीन ओर वस्तुनिष्ठ होनेकी चिन्तामे विरोधी दलोको ओर उससे भी अधिक ध्यान दिया गया जितना देना न्यायोचित था।

फिर भी, जैसा कि सभी सरकारी जिम्मेदारियोमे होता है, सतर्कता-का विशेष महत्त्व है, भले ही यह बात बिक्री बढाने, पहल करने तथा कल्पना-प्रसूत उद्यममे बाधक हो। किन्तु सरकारी सघटन होनेके कारण अपराधो, लैगिक वासनाओं तथा सनसनी उत्पन्न करनेवाले समाचारोके सम्बन्धमे उसे लोकरुचिके क्षुद्रतर तत्त्वोके सामने झुकनेकी आवश्यकता नही। इसलिए विश्लेषणसे हम इस नतीजेपर पहुँचते है कि आल इण्डिया रेडियोकी समाचार व्यवस्था नीति सम्बन्धी इन तीन तत्त्वोका अनुपालन करती है—वस्तुनिष्ठा, निष्पक्षता, ओर यथार्थता—जो पुष्ट मानसके निर्माणमे विशेष सहायक है, भले ही उनकी गतिविधि कम 'नाटकीय' है।

वस्तुनिष्ठाका अर्थ है जैसी बात हुई हो ठीक वैसा ही समाचार देना—न कोई पक्षपात करना, न अपनी ओरसे कोई टीका-टिप्पणी करना। यथार्थताका ध्यान रखनेका मतलब हुआ कि खूब छानबीन करने और सत्यापनके बाद ही समाचार देना। यद्यपि इन प्रक्रियाओके कारण काम बहुत बढ जाता है और परिश्रम भी पडता है, फिर भी परीक्षामे ये सफल हुई हैं। मै समझता हूँ कि आल इण्डिया रेडियोके द्वारा प्रसारित समाचार अब जनता द्वारा विश्वास और सम्मानके साथ सुने जाते हैं।

इन्ही कारणोसे आल इण्डिया रेडियोकी समाचार-विवरणिकाएँ देशके अधिकतर लोगो द्वारा, जिनके पास रेडियो यन्त्र है, सुनी जाती है। सन् १९५२ मे इस बातकी जाँच करायी गयी थी कि सप्ताहके दिनोंमे प्राय कितने समाचार सुने जाते है। तब पता चला कि ९ बजे रातकी मुख्य समाचार-विवरणिका (अग्रेजीवाली) लगभग २१ प्रतिशत श्रोताओं द्वारा सुनी जाती है और हिन्दीकी मुख्य विवरणिका २५ प्रति-

शत द्वारा। यह ओसत उससे भी ज्यादा है जिसका दावा अमेरिकन रेडियो कम्पनियाँ कर सकती हैं। रेडियोका एक ही कार्यक्रम और है जिसके सुननेवालोंकी आनुपातिक सख्या इससे अधिक अर्थात् ३० प्रतिशत है ओर वह है फिल्मी गानोंका प्रसारित किया जाना। मुझे उन कारणों-के विवेचनकी आवश्यकता नहीं है किन्तु मै यह कह देना चाहता हूँ कि सूचना ओर प्रसारण विभागके मन्त्री डाक्टर केसकरने उच्चतर श्रेणीके सगीतको प्रोत्साहन देनेके लिए यदि फिल्मी गानोके सुनाये जानेमे कमी करनेका आदेश दिया है तो उचित ही किया है।

फिर भी ऐसे कितने ही काम है जो ब्रिटिश रेडियो तथा अमेरिकन रेडियो कम्पनियाँ करती है किन्तु जिन्हे आल इण्डिया रेडियोकी समाचार-व्यवस्थामें स्थान नहीं मिला है, शायद इसीलिए कि वह सरकारी सस्था है। यहाँ रेडियो-वार्त्ता प्रसारित करनेवाले 'विशिष्ट व्यक्ति' नहीं है और श्रोताओंकी सख्या तथा दिलचस्पी बढानेके लिए इनके निर्माणका कोई प्रयत्न भी नही किया जाता।

प्रत्येक केन्द्रसे सप्ताहमें केवल एक बार, अखबारी क्षेत्रके किसी व्यक्ति द्वारा, समाचारोकी मीमासा की जाती है ओर वे समाचारोके सम्बन्धमे अपने विचार प्रकट करते हैं—विचार जिन्हे सरकारी नीतिके अनुकूल बना देनेके लिए यथेष्ट परिवर्तित कर दिया जाता है जिससे किसी भी व्यक्ति, सस्था या देशको परेशानीमें न पडना पडे। नही तो सभव है कि सरकारी सस्था होनेके नाते आल इण्डिया रेडियोको किसी अन्तर्राष्ट्रीय घटनाचक्रमे फँस जाना पड़े।

श्री जे० एन० साहनी तथा प्रेम भाटिया (अग्रेजीके) बड़े अच्छे समाचार-विश्लेषक हैं और मै स्वत• उनकी वार्त्ता सुननेके लिए बहुत उत्सुक रहता हूँ किन्तु रेडियो-वार्त्तामें पटु विशिष्ट व्यक्तियोका निर्माण करना स्पष्ट ही आल इण्डिया रेडियोका लक्ष्य नहीं है। इससे श्रोताओंकी सख्या बढनेमे सहायता तो मिलती है किन्तु इसमें व्यापारिकताकी गव आने लगनेकी सभावना है। इसके सिवा अभीतक शायद ही कोई

समाचारफलक (न्यूजरील) तैयार कराया गया हो। इसी तरह खुले समारोहोंका कार्यक्रम भी प्रायः नहीं रखा जाता।

खेलों सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण घटनाओंके पूरे-पूरे समाचार सुनानेकी व्यवस्था की जाती है किन्तु यहाँ ये सब चीजें समाचार न कही जाकर विशेष कार्यक्रम समझी जाती हैं।

समाचारपत्र तथा रेडियो

समाचारपत्र सामान्यतया रेडियो द्वारा समाचारोंका प्रसारित किया जाना प्रतियोगिताकी वस्तु समझते हैं, क्योंकि जहाँ वे २४ घण्टेके भीतर एक क्षेत्रमें केवल एक ही संस्करण भेज सकते हैं और उसे भी पाठकोंतक पहुँचनेमें देर लगती है, वहाँ रेडियो दिनमें चार-चार बार अंग्रेजी तथा हिन्दीमें और तीन बार अन्य भाषाओंमें सीधे श्रोताओंको समाचार सुनाता है।

इस असुविधासे बचनेके लिए तथा शहरकी जनताकी अभिरुचि न घटने देनेके लिए समाचारपत्रों द्वारा सन्ध्यामें स्थानीय संस्करण प्रकाशित किये जाते हैं और महत्त्वपूर्ण घटनाओंके घटित होनेपर विशेष संस्करण भी निकाल दिये जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिकामें रेडियो-प्रतियोगितासे बाध्य होकर समाचारपत्र प्रकाशित करनेवाली संस्थाओंने पत्र निकालनेके साथ-साथ अपनी अलग प्रसारण व्यवस्था स्थापित कर ली। भारतमें यदि कोई समाचारपत्र चाहे भी और उसके पास इतना पैसा भी हो, तो भी ऐसा नहीं कर सकता, क्योंकि राष्ट्रके कानूनोंमें इसका प्रतिषेध है।

जो हो, सरकारी मत यही रहा है कि आकाशवाणी द्वारा समाचारोंका प्रसारण प्रतियोगिताकी कोटिमें नहीं आता वरन् इसे अखबारी उद्योगका पूरक मानना चाहिये। प्रत्येक आदमी जो रेडियो सुनता है समाचारपत्रोंका परित्याग नहीं कर सकता। सच बात तो यह है कि जो लोग बेतारका यन्त्र खरीदकर रखनेकी सामर्थ्य रखते हैं, वे प्रायः समाचारपत्र भी खरीद सकते हैं और ऐसा करते ही हैं, क्योंकि रेडियो समा-

चारोंका केवल साराश ही सुना सकता है, जब कि समाचारपत्र उन्हे पूरे ब्योरेके साथ छापते है।

स्पष्ट है कि यह विचार अब देशके समाचारपत्राधिपोंके मनमे भी धीरे-धीरे प्रवेश करता जा रहा है और इस विषयकी ओर उतना ध्यान भी नही दिया जाता, सिवाय इसके कि रेडियो द्वारा समाचार कुछ पहले प्रकाशित कर दिया जाता है। समाचारपत्रोंने तथा रेडियोने यह बात मान सी ली है कि दोनो ही मित्रतापूर्वक साथ-साथ काम कर सकते है।

किन्तु रेडियो सम्बन्धी व्यक्तित्वके निर्माणमे दोनोकी एक राय नही हो सकी। कुछ वर्ष पहले जब आल इण्डिया रेडियोने व्यक्तित्व-वाला अश भी शामिल करनेका निश्चय किया और समाचारोकी विश्व-सनीयता दिखानेके लिए अपने सवाददाताओके नाम भी बताना शुरू किया, तब पत्रोंके कुछ बड़े अधिकारियोंने तुरन्त इसका विरोध किया और कहा कि सरकारी सस्थाके खर्चसे रेडियोके सवाददाता गढे जा रहे है जब कि समाचारपत्रोंको अपने समाचारोंकी विश्वसनीयता दिखानेके लिए ऐसा करना आवश्यक नही प्रतीत हुआ।

समाचार प्रेषित करनेवालेका नाम जाननेमे श्रोताकी दिल्चस्पीका होना, समाचारकी प्रामाणिकताके लिए श्रोताओ द्वारा सवाददाताका अभिज्ञान (पहचान), तथा अच्छेसे अच्छे समाचार भेजनेके अपने कर्त्तव्यसे विचलित न होनेके लिए सवाददाताको प्रोत्साहन, जिससे आल इण्डिया रेडियोको अपने सवाददाताओसे केवल बढिया चीज ही प्राप्त हो सके—इन सब बातोंका महत्त्व सम्भवत आँका नहीं गया। इसीसे सरकारको झुक जाना पडा। जो विचार आगे और सपुष्ट किया जा सकता था और जो विशाल जनताको पसन्द भी आता, वह अपने जन्मके केवल दो ही महीनोंके भीतर समाप्त हो गया।

निजी रेडियो सस्था होती या स्वायत्त रेडियो निगम होता तो ऐसा विरोध-प्रदर्शन केवल प्रतियोगिताका सूचक ही माना जाता, इससे अधिक और कुछ नही।

हमें यह समझनेके लिए अभी काफी रास्ता तै करना है कि आकाश-वाणीका सुना जाना अधिक लोकप्रिय तथा अधिक प्रभावकर बनानेके लिए कौन-सी वस्तु निश्चित रूपसे अच्छी है, फिर मिलते जुलते व्यवसायोंपर उसकी चाहे जैसी प्रतिक्रिया क्यों न हो।

जो हो, ऐसी कठिनाइयाँ संस्थाके स्वरूपके कारण उसमें अन्तर्निहित है, क्योंकि इसका स्वामित्व तथा संचालन सरकारके हाथमें है, जिसे लोकतन्त्रात्मक पद्धतिके अनुसार उस टीका टिप्पणीके सामने झुकना ही पड़ता है जो प्रभावशाली व्यक्तियों या संस्थाओं द्वारा की जाय। आल इण्डिया रेडियोकी बहुत-सी सफलता तथा समृद्धि या तो लोगोंकी आलोचनाके बावजूद प्राप्त की गयी या इसलिए संभव हो सकी कि जनता इस ओरसे उदासीन सी थी। फिर भी संस्थाके लिए जो चीज निश्चित रूपसे अच्छी है, उसके विरुद्ध की गयी आलोचनाका जितना प्रतिरोध गैर सरकारी संस्था कर सकती है, उतना कोई सरकारी संस्था नहीं कर सकती।

सन् १९५२ में सूचना तथा प्रसारणके मन्त्री द्वारा संसदमें की गयी इस घोषणाने कि सरकार आल इण्डिया रेडियोको स्वायत्तशासी निगमके रूपमें संघटित करनेका विचार कर रही है, बहुतोंके दिलमें हलचल उत्पन्न कर दी है। अन्ततोगत्वा भारतका राष्ट्रीय रेडियो अपने अधिकार प्राप्त करने जा रहा है—यह निर्णय करनेका अधिकार कि उसके लिए क्या अच्छा है, क्या नहीं।

सरकारी व्यवस्थामें सामान्य जनता ही नहीं, वरन् कर्मचारिवर्ग भी रीतिपर स्वार्थोंसे चिपके रहना चाहता है जिन्हें वह अपनेमें 'निहित' समझता है और उन्हें दृढ़तासे पकड़े भी रहना चाहता है क्योंकि वहाँ जो वेतन या पारिश्रमिक मिलता है वह समाचारपत्रोंकी तुलनामें अधिक होता है। मुनाफा करना उनका उद्देश्य नहीं, इसलिए सुधार करनेका कोई उत्तेजन उन्हें नहीं होता। परिणामत हो सकता है कि योग्यताकी विशेष आवश्यकता न समझी जाय, यहाँ तक कि सरकारी नौकरी तथा

निहित स्वार्थसे सम्बद्ध 'उदरपूर्त्तिवाद' के मारे उनकी उपेक्षा भी की जाने लगे। स्वायत्त ध्वनि-प्रसारण-निगममें प्रतिभावान् व्यक्तियोंको, उदरपूर्त्तिवादियोंकी अपेक्षा, अधिक अवसर प्राप्त होना अवश्यभावी है।

अगले चार वर्षोंमें ३॥ करोड रुपये लगाकर प्रसारण-व्यवस्थाका विकास किया जानेवाला है। इससे स्पष्ट है कि अब प्रतिभासम्पन्न स्त्री-पुरुषोंके लिए, जिनमें दूरतक देखनेकी क्षमता, मौलिकता, वास्तविक निर्णायक बुद्धि और सुरुचि हो, अधिक अवसर मिल सकेगा।

जब प्रस्तावित उन्नीसों ध्वनिप्रसारण यन्त्र—लघुतरंगोंवाले तथा मध्यम तरंगोंवाले, दोनों—प्रतिष्ठित कर दिये जायँगे और छ नये केन्द्र खुल जायँगे जो इस समयके मध्यम तरंगोंवाले प्रसारणयन्त्रों सहित देशके १५ करोड वर्गमील क्षेत्रमेंसे लगभग एक तिहाई क्षेत्रमें अपना काम शुरू कर देंगे, तब किसी भी नवयुवकके सामने ऐसे अवसर आयेंगे जिनसे वह लाभ उठा सकता है।

प्रसारण-व्यवस्थाके विकासार्थ सन् १९५१ में जो वैज्ञानिक परामर्श समिति स्थापित की गयी थी, उसने सिफारिश की है कि परीक्षणके तौर पर एक दूरदर्शनकारी यन्त्र प्रतिष्ठित किया जाय। खबर है कि इसे कार्यान्वित करनेका प्रयत्न भी आरम्भ हो गया है। जब दूरदर्शन यन्त्र अन्तमें काम करना शुरू कर देगा, तब भारतके राष्ट्रीय रेडियोकी सेवाके अवसरोंके लिए आकाश ही अन्तिम सीमा होगी।

१३. व्यावसायिक अंग

यदि हम कहे कि अन्य देशोकी, विशेषकर अमेरिका तथा ब्रिटेनकी, स्थितिकी तुलनामे भारतीय समाचारोके व्यावसायिक अंगकी बहुत ही कम उन्नति हुई है तो यह बात बहुतोको अरुचिकर मालूम होगी, फिर भी यह सत्य है, इसमे सन्देह नहीं। इसका कारण भी बताया जा सकता है।

इस देशमे बहुतसे समाचारपत्र कतिपय राजनीतिक विचारधाराओंके सिद्धान्तो और मतोका प्रचार करनेके लिए ही मुख्यरूपसे निकाले गये थे। ससार भरके समाचारोका यथार्थ रूपमे प्रकाशन, जो कि सामान्य रूपसे समाचारपत्रोका उद्देश्य माना जाता है, यहॉके पत्रोका गौण लक्ष्य ही रहा है। भारतके एक अनुभवी पत्रकारने ठीक ही कहा था कि "भारतीय पत्रकारी अधिकाश रूपसे राष्ट्रीय जाग्रतिका ही एक अग तथा भारतके नवयुगकी और स्वातन्त्र्य सग्रामकी भावनाकी अभिव्यक्तिमात्र है। यह वह मुख्य धारा है जो स्वर्गीय लोकमान्य तिलक तथा अन्य नेताओके समयसे बराबर प्रवाहित होती आयी है।"*

यद्यपि यह बात, उसी हदतक, उन दैनिक तथा सामयिक पत्रोंपर लागू नहीं की जा सकती जिनके मालिक और प्रबन्धक अभारतीय लोग थे, फिर भी यह कहना सत्य है कि कमसे कम आरम्भमे ये पत्र भी ऐसे व्यावसायिक उद्योग होनेके बजाय, जो खूब सोच-समझकर शुरू किये गये हों तथा ठिकानेसे जिनकी योजना तैयार की गयी हो, अधिकतर प्रचारके लिए निकाले गये पत्रोंकी ही तरहके थे। इस तरहका पत्र चलानेके लिए ग्राहको तथा विज्ञापनदाताओसे ही पैसा प्राप्त करना

---

* पूनामे किये गये श्री चेलापतिरावके भाषणसे।

आवश्यक न था, इसलिए इन दोनोंकी ओर अर्थात् पत्रके व्यावसायिक अंगकी ओर अभी अभीतक अधिक ध्यान नहीं दिया जाता था।

उपर्युक्त कारणसे ही इनमेंसे अधिकतर पत्रोंके प्रबन्धकगण भी प्राय किसी न किसी राजनीतिक दल—कांग्रेस, उदारदल (लिबरल), मुसलिम तथा जमींन्दार या व्यवसायी वर्ग—के साथ रहनेका प्रयत्न करते थे।

कई वर्ष बीत जानेपर, विशेष कर स्वातन्त्र्य-प्राप्तिके बादसे और जबसे इस 'चतुर्थ सम्पत्ति' (समाचारपत्रों) की शक्तिका पता चला है, तबसे अखबारी व्यवसायके सम्बन्धमें पहलेके विचार स्पष्ट रूपसे बदल गये हैं। फिर भी यह बात किसी प्रतिवादके भयके बिना कही जा सकती है कि भारतीय पत्रोंके व्यावसायिक अंगको अभी काफी उन्नति करनी होगी तब कहीं मामूली रूपसे उसकी तुलना अमेरिका, कनाडा तथा इंग्लैण्ड जैसे उन्नत देशोंके समाचारपत्रोंके व्यावसायिक अंगसे की जा सकेगी। इतनी बातें तो हमने इस विषयकी भूमिकाके रूपमें कहीं।

अब हम इस अध्यायके मुख्य विषयकी ओर आते हैं। सब बातें अच्छी तरह समझनेमें सुविधा हो, इस दृष्टिसे इसे इन तीन हिस्सोंमें बाँट देना बेहतर होगा—प्रबन्ध, प्रचार तथा विज्ञापन। प्रबन्ध' शब्दमें, जैसा कि मोटे तौरसे भारतमें उसका अर्थ समझा जाता है, प्रचार तथा विज्ञापनका काम भी आ जाता है, क्योंकि प्रबन्धक-गण या मालिक ही प्रचार एव विज्ञापनके कार्यकी देखरेख करते हैं। फिर भी इस परिच्छेदकी सुविधाके लिए समाचारपत्रके व्यावसायिक अंगकी इन तीन मुख्य बातोंकी चर्चा हम अलग अलग शीर्षकके नीचे करेंगे।

प्रबन्ध-विभाग

प्रबन्ध-विभागसे हमारा आशय उस विभाग या कार्यवाहक दलसे है जो इस उद्योगका सञ्चालन करे। मोटे तौरसे हम भारतीय पत्रोंकी प्रबन्ध-व्यवस्थाके तीन भेद कर सकते हैं—(१) एक व्यक्ति या एक दलके पत्रकी व्यवस्था, (२) एक परिवार द्वारा की जानेवाली व्यवस्था, तथा

(३) संयुक्त स्कंधप्रमण्डलकी व्यवस्था। अन्तर्गत 'स्वराज्य', 'स्वतन्त्र' तथा 'हितवाद', पहले समूहके उदाहरण हैं। 'हिन्दू' पारिवारिक व्यवस्थाका निराला उदाहरण है। 'टाइम्ज ऑफ इण्डिया', 'दि हिन्दुस्तान टाइम्ज', 'दि ईस्टर्न एकानामिस्ट' तथा 'कैपिटल' ऐसे पत्र हैं जिनका प्रबन्ध संयुक्त स्कन्धप्रमण्डल (ज्वाइण्ट स्टॉक कम्पनी) द्वारा किया जाता है। प्रबन्ध-व्यवस्थाके इन तीन भेदोंके सिवा, हमारे यहाँ कुछ पत्र ऐसे भी हैं—'संयुक्त कर्नाटक' तथा 'हरिजन'—जिनका प्रबन्ध किसी न्यास (ट्रस्ट) के सिपुर्द होता है और कुछ ऐसे भी, जैसे 'नैशनल हेरल्ड' तथा (सहकार प्रकाशन-का) 'भारत' जिनका प्रबन्ध कर्मचारियोंकी सहयोग-समितियाँ करती हैं।

पुराने अनुभवसे इस बातका कोई सुदृढ़ प्रमाण नहीं मिलता कि इनमेंसे किस तरहका संघटन—व्यक्ति या दलका, परिवारका, संयुक्त स्कन्धप्रमण्डलका, न्यासका या कर्मचारियोंकी सहयोग समितिका—सफल पत्रोद्योगका सञ्चालन करनेके लिए सबसे अधिक उपयुक्त है। कारण यह है कि पत्रोंके बन्द हो जानेके सम्बन्धमें प्रायः एक सा ही अनुभव इन सब तरहके संघटनोंमें—विशेषकर व्यक्ति या दलके और संयुक्त स्कन्ध प्रमण्डलके संघटनोंमें—होता है। यद्यपि स्थल-सकोचके कारण लेखकके लिए व्यक्ति विशेषके या किसी दलके प्रबन्धमें चलनेवाले सभी अन्तर्गत पत्रोंकी सूची देना सम्भव नहीं है, फिर भी यह कहनेमें उसे कोई हिच-किचाहट नहीं कि भारतीय प्रतिमानसे विचार करते हुए उनकी संख्या नगण्य नहीं मानी जा सकती। ज्वाइण्ट स्टॉक कम्पनी द्वारा चलाये जाने-वाले पत्रकी विफलताका सबसे महत्त्वपूर्ण और सबसे हालका उदाहरण है 'भारत' तथा उसके समूहके अन्य पत्रोंका। पत्रोंके शायद अन्य किसी भी समूहका इतनी अनुकूल परिस्थितियों तथा समर्थकोंकी इतनी अधिक श्रद्धाके साथ प्रारम्भ इसके पहले कभी नहीं किया गया था। तत्कालीन सरकारके सबसे शक्तिशाली पुरुष, सरदार वल्लभभाई पटेल, का व्यक्ति-गत आशीर्वाद और निस्सन्देह शासनारूढ़ दल, कांग्रेस, का भी पृष्ठपोषण इन पत्रोंको प्राप्त था।

उनके सञ्चालक-मण्डलमें भारतीय व्यवसायि-वर्गके बड़े-बड़े लोग शामिल थे। जिस दिन उनका जन्म हुआ, करीब-करीब उसी दिनसे उन्हें भरपूर विज्ञापनका और प्रशंसाके योग्य ग्राहक-संख्याका आश्वासन मिल चुका था। और इन सबसे बड़ी बात यह थी कि उनके साधन भी बहुत अच्छे थे—पत्रकार जगत्के चुने हुए कार्यकर्त्ता और प्रचुर धन। किन्तु इन सबके बावजूद पत्रोंके अस्तित्वकी रक्षा नहीं की जा सकी।

परिवार द्वारा संचालित पत्र, जिसका एक विशिष्ट उदाहरण मद्रास का 'दि हिन्दू' है, अपने ढंगका निराला ही होता है। उसका अलग भेद ही माना जाना चाहिये। 'हिन्दू' का यह बड़ा भारी सौभाग्य था, जैसा बहुत कम देखनेमें आता है, कि उसके जितने भी सम्पादक स्वामी हुए वे सब एक ही परिवारके थे और उन्होंने बड़े परिश्रमसे पत्रका अभिरक्षण कर उसे उसके वर्त्तमान आकार, रूप और स्थितिमें पहुँचाया।

प्रबन्धकोंके मुख्य कार्य ये हैं—(१) पत्रका आरम्भ करनेके लिए प्राथमिक पूँजी जुटाना—या तो खुद अपनी पूँजी देकर या फिर किसीके साथ साझेदारी कर, या संयुक्त प्रबन्धप्रमण्डल बनाकर अथवा फिर किसी राजनीतिक दल द्वारा इस कामके लिए अलग कर दिये गये कोष से लेकर, (२) पत्रके लिए कार्यालयकी स्थापना करना, (३) अच्छे छापेखानेमें छपाईकी व्यवस्था करना या अपना छापाखाना खोलना, (४) अखबारी कागज बराबर मिलते रहनेका निश्चित प्रबन्ध करना, और (५) सम्पादन, मुद्रण, प्रशासन, प्रचार एवं विज्ञापनका काम करनेके लिए सुयोग्य कर्मचारियोंकी नियुक्ति करना।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, उससे स्पष्ट हो जाना चाहिये कि दैनिक पत्रके उद्योगमें सफलताकी निश्चित आशाके लिए इफरात पैसा, अच्छा छापाखाना और अच्छे कर्मचारियोंकी नियुक्ति ही पर्याप्त नहीं है। सबसे बड़ी आवश्यकता इस बातकी प्रतीत होती है कि मनुष्यों और रुपये पैसेके इन साधनोंके कामका, एक जिम्मेदार और सुयोग्य व्यक्तिके निदेशनमें, ठीक ढंगसे समन्वय तथा एकीकरण हो। इस

आदमीमें यथेष्ट शक्ति, पर्याप्त कल्पनाबुद्धि तथा अच्छी दूरदर्शिताका होना आवश्यक है। यह उच्चाधिकारी या मालिक अथवा सञ्चालक-मण्डल पत्रके लिए कोई सामान्य नीति निर्धारित कर दे सकता है किन्तु उसकी छोटी छोटी बातें तय करनेका काम उसे अपने विश्वसनीय कर्मचारीपर छोड देना चाहिये। यही वह तरीका है जिससे अच्छेसे अच्छे परिणाम निकलनेकी निश्चित आशा की जा सकती है।

प्रचार-व्यवस्था

अब प्रचार-व्यवस्थाका प्रश्न लीजिये। प्रचार ही समाचारपत्रकी साँस या जान है। वह उसी तरहकी चीज है जैसे मनुष्यके शरीरमें रक्तका सञ्चार, क्योंकि पत्रका अच्छा प्रचार, अच्छी ग्राहक संख्या, न हो तो विज्ञापन मिलना बहुत मुश्किल होता है। यह ठीक है कि ग्राहक संख्या अधिक होनेसे ही पत्रकी छपाई और प्रकाशनका पूरा खर्च नहीं निकल सकता किन्तु विज्ञापन प्राप्त करनेमें उसका बहुत अधिक मूल्य है और इस विज्ञापनके बलपर ही पत्र चलाना सम्भव तथा किसी कामका हो सकता है। इधर प्रचार या ग्राहक-संख्याका अधिक होना भी सम्पादकीय नीति तथा समाचार देनेके ढंग आदिपर निर्भर करता है।

भारत जैसे देशमें कतिपय प्रतिकूल परिस्थितियोंके कारण पत्रोंका प्रचार बहुत आगे नहीं बढने पाता। उदाहरणके लिए भारतमें पढे-लिखे व्यक्तियोंकी संख्या कम है जिससे सीमित संख्यामें अधिक प्रचार नहीं बढने पाता। देशकी कुल ३५ ७ करोडकी आबादीमेंसे केवल १४ प्रतिशत अर्थात् पाँच करोडसे भी कम लोग पढना जानते हैं और ये सब भी केवल एक भाषा नहीं बोलते।

स्वयं भारतके संविधानमें ही कमसे कम १४ भाषाएँ स्वीकार की गयी हैं और जो लोग इन्हें बोलते हैं—लिखने-पढनेवालोंकी बात छोडिये—उनकी संख्या १४ लाख (कश्मीरी) से लेकर १०॥ करोड (हिन्दी) तक है। अतः जो स्थिति देशमें है, उसके कारण कोई भी एक पत्र, चाहे वह किसी मुख्य देशी भाषाका ही पत्र क्यों न हो, सारी आबादीके

पास—केवल पढी-लिखी जनतातक भी—नही पहुँच सकता। अँग्रेजी पत्रोंमे अभीतक सबसे अधिक प्रचार-सख्या 'टाइम्ज ऑफ इण्डिया', 'स्टेट्स मेन', 'हिन्दू', 'हिन्दुस्तान टाइम्ज' और अमृत बाजार पत्रिका' की रही है किन्तु यदि क्षेत्रोंके अनुसार इनकी प्रचार-सख्याका अवलोकन किया जाय तो पता चलेगा कि कुछ पत्र क्षेत्र-विशेषमें तो अधिक लोकप्रिय है किन्तु अन्य क्षेत्रोंमे उनका प्रचार बहुत कम है। भारतके स्वतन्त्र होनेके बादसे देशी भाषाओंके पत्र अपना उचित स्थान प्राप्त करते जा रहे है। अँग्रेजीको गौण स्थान दिये जानेसे तथा भाषाओंके आधारपर अधिकाधिक प्रान्तोंका निर्माण होने पर उनका महत्त्व घटनेके बजाय बराबर बढता ही जायगा। राष्ट्रभाषाके पदपर हिन्दीके अधिष्ठित कर दिये जानेसे यह बात साफ दिखाई देती है कि हिन्दीको पत्र-पत्रिकाओंका भविष्य बहुत उज्ज्वल है और अग्रेजीके बाद ये पत्र ही सारे देशमे प्रचलित होनेका थोडा-बहुत दावा कर सकेंगे।

यहाँ यदि हम कुछ सामयिक पत्रों, विशेषकर कुछ विशिष्ट विषयोंके पत्रोंके, जो प्राय अग्रेजीमे निकलते है, प्रचारके सम्बन्धमे भी दो शब्द कह दे, तो यह असगत न होगा। उदाहरणके लिए अग्रेजीमे प्रकाशित होनेवाले किसी आर्थिक या वित्तीय विषयोंके पत्रको ले लीजिये। उसकी ग्राहक सख्या ४—६ हजारसे अधिक नहीं हो सकती, क्योंकि अग्रेजी जाननेवाले ही, और उनमे भी केवल वही जिन्हे वित्त सम्बन्धी विषयोंमे दिलचस्पी हो, उसे पढ सकते है। इनमे भी केवल वे ही इसे मँगा सकते हैं जो इस तरहके पत्रोंके अपेक्षाकृत अधिक मूल्य दे सकनेकी क्षमता रखते हों।

भारतमे पत्रोंकी प्रचार-सख्या अधिक न होनेका एक और बाधक सारे देशमे एक सिरेसे दूसरे सिरेतक फैले हुए पुस्तकालयों तथा वाचनालयोंका जाल है। बहुतसे लोग जो इन पुस्तकालयोंमे जाते है, विशेषरूपसे सबेरेके या शामके समाचारपत्र पढने जाते है और इससे पत्रोंके प्रचारपर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। इसी तरह एक ही अखबारसे दो,

चार या अधिक लोगोंके काम चलानेकी आदतके कारण भी सम्भावित ग्राहकोंकी संख्या घट जाती है।

एक और चीज जिसका प्रचार-संख्याकी वृद्धिपर प्रतिकूल प्रभाव पडता है, और जो अन्य देशोंकी अपेक्षा भारतमें अधिक प्रचलित है, विज्ञापनदाताओं द्वारा की जानेवाली प्रमाणक प्रतियों यानी उन प्रतियोंकी माँग है जिनमें उनका विज्ञापन निकला हो। एक जमाना था जब विज्ञापनदाताके पास उसके विज्ञापनवाली अखबारकी कतरन ही बिलके साथ भेज दी जाती थी। किन्तु जबसे विज्ञापन दिलानेवाली समितियोंकी वृद्धि हुई है और कुछ बडे बडे कार्यालयोंमें अपने विज्ञापनकी खुद ही देखरेख करनेके लिए पृथक् विभाग बना दिये गये है, तबसे और नहीं तो कमसे कम दो प्रमाणक प्रतियाँ (वाउचर कापीज) समूचे अखबारकी माँगनेकी प्रवृत्ति बढ गयी है। ऐसा करना न्यायतः समर्थनीय ही क्यों न हो, परिणाम यह होता है कि पत्र विशेषकी प्रचार संख्यामें उतनी प्रतियोंकी कमी हो जाती है जितनी उक्त व्यापारिक संस्थाओं आदिको, वाउचर-कॉपियाँ न मिलने पर खरीदकर मँगानी पडतीं।

जब हम प्रचार संख्याकी बात करते हैं तब हमें यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये कि हमारा आशय समस्त प्रचार-संख्यासे है या केवल विशुद्ध प्रचार संख्यासे। पहलेमें वे प्रतियाँ भी शामिल हैं जो विनिमयमें भेटमें या अन्य रूपसे मुफ्तमें वितरित कर दी गयी हों और दूसरी संख्या उन प्रतियोंकी है जिनका मूल्य वास्तवमें प्राप्त हुआ हो। छापी गयी प्रतियोंकी कुल संख्या तो समस्त प्रचार-संख्या (ग्रॉस सरकुलेशन) से भी अधिक हो सकती है। जो हो, विज्ञापनदाताकी दृष्टिमें तो विशुद्ध प्रचार संख्या ही ध्यान देनेके योग्य है। वह इस तरह निकाली जा सकती है—छपी हुई प्रतियोंकी कुल संख्या (छ) में से बिना बिकी हुई प्रतियाँ (बिना) निकाल दीजिये, फिर अन्य पत्रोंके बदले या विनिमयमें दी हुई प्रतियाँ (वि) भी घटा दीजिये, इसके बाद विज्ञापनदाताओंको भेजी गयी प्रमाणक प्रतियाँ (प्र) तथा भेट या नमूने आदिके

रूपमे समर्पित प्रतियॉ (स) भी कम कर दीजिये। तात्पर्य यह हुआ कि विशुद्ध या वास्तविक प्रचार सख्या सूत्र रूपमें इस प्रकार रखी जा सकती है—"छ—विना वि प्र स'।

यद्यपि विशुद्ध ग्राहकसख्याको ही विज्ञापनदाता अपना आधार मानते है, फिर भी अक्सर 'समस्त पाठकसख्या' को भी यथेष्ट या समान महत्त्व दिया जाता है। उदाहरणके लिए प्रथम श्रेणीके व्याव-सायिक या व्यापारिक पत्रोंमे, जिनका मूल्य अधिक होता है, विज्ञापन-दाता प्राय यह हिसाब लगानेका प्रयत्न करता है कि प्रत्येक अकके पाठकोकी सम्भावित सख्या क्या हो सकती है। कितने ही ऐसे पत्र है जिनके अककी एक एक प्रति १०–१० या १२–१२ व्यक्तियो द्वारा पढी जाती है। जितनी प्रतियॉ कुल बिकी हो उतनेमे प्रत्येक प्रतिके पाठकोंकी सख्याका गुणा करनेसे 'समस्त पाठकसख्या' प्राप्त की जा सकती है। यहॉ एक बात और कह देनी चाहिये। केवल यही देखना आवश्यक नही है कि किस पत्रके कितने पाठक है बल्कि पाठक किस कोटिके है, कितने प्रभावशाली व्यक्ति है, यह भी विचारणीय है, विशेषकर व्याव-सायिक, वित्तसम्बन्धी तथा अन्य विशेष विषयोके पत्रोके लिए।

सन् १९४९ तक किसी समाचारपत्रकी ठीक-ठीक प्रचारसख्या जाननेका कोई उपाय न था किन्तु उस वर्ष ए बी सी —अर्थात् आडिट ब्यूरो ऑफ सरकुलेशन्स—के स्थापित हो जाने तथा समाचारपत्रों सम्बन्धी अब्द-पुस्तके (ईयर बुक्स) एव निदेशिकाओ (डाइरेक्टरीज) के प्रकाशित होने लगनेसे अब विशुद्ध ग्राहकसख्याके विश्वसनीय ऑकडे प्राप्त करना मुश्किल नही है। यदि लोगोका इन ऑकडोपर विश्वास करना अभीष्ट हो तो इस कार्यके लिए इस तरहकी कोई स्वतन्त्र सस्थाका होना आव-श्यक है, जैसी कि अमेरिका तथा ब्रिटेनमे है, जहॉ एक समय (विज्ञापन प्राप्त करनेके लिए) बडी बडी प्रचारसख्याका झूठा दावा करनेकी चाल-सी पड गयी थी। कहते हैं कि अमेरिकामे इन ऑकडोको प्रकाशित करनेकी पहली बार कोशिश की गयी, तब कितने ही प्रकाशकोपर गलत

या बढ़े हुए ऑकडे बतानेके कारण मुकदमा चलनेकी नौबत आ गयी थी, यद्यपि उन्होंने इस सम्बन्धमें काफी सावधानी बरती थी।

समाचारपत्रके प्रचार-व्यवस्थापकपर बड़ी भारी जिम्मेदारी रहती है। उसे अपनी आँखें पत्रकी बाहर जानेवाली प्रतियोंपर गड़ाकर रखनी पड़ती है। यदि उसे पता चले कि किसी क्षेत्र-विशेषमें प्रतियोंकी खपत घटने लगी है तो उसे तुरन्त इसके कारणोंकी छानबीन करनी चाहिये और यह देखना चाहिये कि कहाँतक इस स्थितिका सामना सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

उसके पास इस बातका ठीक ठीक लिखित ब्यौरा होना चाहिये कि किसी ग्राहकका चन्दा कब समाप्त होता है, ताकि उसके नवीनीकरणकी प्रार्थना समयसे की जा सके और आवश्यकता हो तो बादमें अनुस्मारक भी भेजे जा सकें। वास्तविक कठिनाई उस श्रेणीके ग्राहकोंके सम्बन्धमें होती है जो जान-बूझकर पत्रका उत्तर नहीं देते और आशा करते हैं कि जितने समयतक सम्भव हो उतने समयतक मुफ्तमें अखबार मिलता रहे। यदि पत्र-व्यवसायमें इस तरहके बट्टेखातेकी रकम उचित सीमासे अधिक न बढ़ने देना अभीष्ट हो तो इस तरहके पाठकोंका पता लगा लेना बहुत जरूरी है।

बम्बई तथा कलकत्ते जैसे शहरसे प्रकाशित होनेवाले पत्रकी प्रचार-संख्या सम्बन्धी समस्या मुफस्सलके पत्रकी तुलनामें अधिक जटिल है और इसके कारण भी स्पष्ट हैं। मुफस्सलके पत्रमें प्रचार व्यवस्थापकको (जो स्वयं पत्र स्वामी भी हो सकता है) केवल स्थानीय वितरणकी तथा मुफस्सलके विभिन्न स्थानोंको रेल मार्गसे (या विमानसे, यदि विमानपथसे उसका सम्बन्ध हो तो) भेजनेकी व्यवस्था करनी पड़ती है।

बड़े शहरके अधिक प्रचारवाले पत्रके प्रचार व्यवस्थापकको भी यह सब करना पड़ता है पर उसे अन्य बातोंकी ओर भी ध्यान देना पड़ता है जिससे सब काम सुचारु रूपसे चलता रहे। बम्बई जैसे शहरमें ऐसी विशेष टगकी मण्डलियाँ (एजंसीज) हैं जो नाममात्रका खर्च लेकर

आस-पासके स्थानोंमें पत्रका वितरण करानेका जिम्मा ले लेती है। (इनमें एक दो मण्डलियाँ तो वृहत्तर बम्बईके बाहरकी जगहोंतक अपनी वितरण-व्यवस्था फैलाये रहती हैं।) प्रचार-व्यवस्थापकमें इतनी योग्यता होनी चाहिये कि वह इस बातका निर्णय कर सके कि सबसे अच्छी एजंसी कौन है और उसीका चुनाव वह करे।

इसके सिवा अखबार बेचनेवाले लड़के भी होते हैं जो शहरके जन-संकुल भागोंमें घूम-घूमकर, विशेषकर दफ्तरके कामके समय, या अन्य महत्त्वके अड्डोंपर जा-जाकर अखबार बेचा करते हैं। प्रचार-व्यवस्थापक-का यह काम है कि वह इनमें जो सबसे तेज हों, ऐसे लड़कोंपर नजर रखे और उन्हें बुलाकर अपना काम निकाले। फिर, कुछ लड़कोंको वेतनपर नियुक्त करना या पत्र पहुँचानेवाली गाड़ियाँ कियायेपर तय करना भी आवश्यक हो सकता है, जिससे दूर दूरके ऐसे स्थानोंमें रहने-वाले महत्त्वपूर्ण व्यक्तियोंको भी अखबार मिल सके जहाँ ट्रेनसे, ट्रामसे या बससे पत्र भेजनेकी व्यवस्था आसानीसे न हो सकती हो। इस सारी व्यवस्थाको हम उसका स्थानीय वितरण-संघटन कह सकते हैं।

जितनी प्रतियाँ बाहर भेजनी होती हैं, उनके सम्बन्धमें किसी भी अच्छे, प्रतिष्ठित पत्रके प्रचार-व्यवस्थापकके पास प्रत्येक नगर तथा ग्रामके ग्राहकोंकी सुवर्गीकृत तथा सम्यक् रूपसे अनुक्रमित अद्यावधिक सूची तैयार रहनी चाहिये और उसे प्रयत्न करना चाहिये कि प्रेषितव्य स्थानोंके लिए जहाँ जितनी प्रतियोंकी आवश्यकता हो, उतनी प्रतियाँ यातायातके क्षिप्रातिक्षिप्र जो साधन उपलब्ध हों,—बस, रेल, स्टीमर या विमान—उनसे तुरन्त भेज दी जायँ।

जहाँ जहाँ हवाई जहाजसे प्रतियाँ भेजनेकी माँग प्राप्त हो, वहाँ वहाँ उन्हें प्रेषित करनेकी ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये जिसमें कोई गल्ती न होने पावे और इस बातका भी ध्यान रखना चाहिये कि प्रतियाँ हवाई जहाजके पहुँचते ही ले ली जायँ और अविलम्ब उनका यथानुरूप वित-रण कर दिया जाय। उन पत्रोंके सम्बन्धमें जिनके संस्करण अन्य बड़े

शहरोंसे भी निकलते हों, जैसे 'टाइम्ज ऑफ इण्डिया', 'नव भारत टाइम्ज' (हिन्दी) (बम्बई, दिल्ली), विश्वमित्र (कलकत्ता, बम्बई, पटना, कानपुर) इस प्रश्नपर शायद उतना अधिक ध्यान देनेकी आवश्यकता न हो, किन्तु जो पत्र केवल एक ही केन्द्रसे निकलते हों और वे विभिन्न केन्द्रोंसे प्रकाशित होनेवाले पत्रोंसे टक्कर लेना चाहें तो उन्हें इस मामलेमें बहुत ही सतर्क होना चाहिये।

समुचित रूपसे प्रचार बढ़ानेके लिए संघटनका कोई ऐसा सामान्य तरीका सुझाना सम्भव नहीं जान पड़ता जो सब पत्रोंके लिए उपयुक्त कहा जा सके, क्योंकि प्रत्येक पत्रकी स्थिति दूसरेसे भिन्न होती है, इसलिए हर एककी समस्या भी अलग-अलग होती है। समस्याका स्वरूप और विस्तार तो हमने बतला ही दिया है अब यह बात हर एक प्रचार-व्यवस्थापककी बुद्धि और प्रतिभापर छोड़ देनी चाहिये कि वह अपने पत्रकी आवश्यकताओंके अनुसार सुचारु रूपसे चलनेवाली, त्रुटि विहीन कोई व्यवस्था तैयार कर ले। यहाँ हम प्रचार-व्यवस्थापकके लिए कुछ ऐसे सूत्र दिये देते हैं जो हमने कतिपय पुस्तकों तथा इस विषयपर किये गये भाषणोंसे संगृहीत किये हैं और जिनसे उसे अच्छी सहायता मिल सकती है।

बिक्रीकी देखरेख करनेवाला प्रचार-व्यवस्थापक चन्देकी रकमों, नकद बिक्री तथा पत्र भेजवानेके लिए जिम्मेदार होता है किन्तु यहीं उसकी जिम्मेदारी समाप्त नहीं हो जाती। प्रचार-व्यवस्थापकका मुख्य काम है और हमेशा रहेगा, बाजारका विश्लेषण—अपने पत्रके पाठकोंके सम्बन्धमें प्रतिदिनका अध्ययन, उनका निरूपण, वर्गीकरण तथा स्वरूप-निर्धारण जिसका आधार हो उनकी बेचने, खरीदने, आगे बढ़ाने और प्रभावित करनेकी शक्ति। यह गुण प्रचार-प्रबन्धकके लिए एक तरहका निदानज्ञ तथा चिकित्सक होता है। वह उस प्रचार-सख्याका विश्लेषणकर्ता है जिसे विज्ञापन-बिक्री-व्यवस्थापक तथा विज्ञापनका अभिकर्ता "बाजार" कहते हैं। उसे उसके ज्ञात मूल्योंको एकत्रकर एक छोटा

पैकेट या संग्रह सा बना लेना चाहिये जिससे व्यवस्था-विभाग लाभ उठा सके।

प्रचार व्यवस्थापकका एक कार्य अपने मौजूदा पाठकों तथा भावी पाठकोंके हाथ पत्र बेचकर उनकी यह प्रतीति करा देना है कि समाचारोंकी दृष्टिसे तथा सम्पादकीय विचारोंकी दृष्टिसे उसीका पत्र सबसे बढ़िया है। पत्रके कालमोंमें स्थान सुरक्षित करानेवाले (विज्ञापनदाता) जानते हैं कि प्रति सैकड़ा जितने व्यक्ति दुबारा, तिबारा अपना चन्दा भेजते चलते हैं, उसीसे पता चलता है कि पत्रका प्रचार पूर्णतः सन्तोषजनक है या नहीं। पुराने ग्राहकोंमेंसे प्रतिशत अधिकसे अधिक व्यक्ति अपना चन्दा फिरसे भेज दें, यह देखते रहना प्रचार-व्यवस्थापकका ही काम है।

नये पाठक और ग्राहक प्राप्त करनेके लिए प्रचार-व्यवस्थापकको यह बात बराबर दिखाते रहना चाहिये कि पत्रमें हमेशा उपयोगी सामग्री मिलती रहेगी। इसके लिए प्रमाण देनेकी आवश्यकता है। केवल मुँहसे कह देनेसे काम न चलेगा। केवल इसीके बलपर विज्ञापन तथा नये ग्राहक प्राप्त किये जा सकते हैं। इसलिए प्रचार-व्यवस्थापकको अपने पत्रकी सभी महत्त्वपूर्ण बातें अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये जिन्हें बता-कर, समझाकर वह पत्रकी बिक्री बढ़ा सके।

बिक्री बढ़ानेका प्रयत्न करनेवाले प्रचार-व्यवस्थापकको हमेशा नये बिन्दु रेखाचित्र (ग्राफ) और प्रचार-संख्या प्रस्तुत करनेके नये-नये नाटकीय ढंग सोचते रहना चाहिये ताकि जो लोग देखना चाहें कि पत्र विशेषका प्रचार किस ओर या किस वर्गमें घट-बढ़ रहा है वे देख सकें और अपनी तसल्ली कर सकें।

विज्ञापन

यदि प्रचार ही समाचारपत्रकी साँस और उसकी जान है तो विज्ञा-पन समाचारपत्र रूपी भवनकी मेहराबमें लगनेवाला बीचका पत्थर है। 'इण्टेंसिव एडवरटाइजिंग' नामक पुस्तकके लेखक तथा विज्ञापन-कलाके मान्य विशेषज्ञ जॉन ई० कनेडीके कथनानुसार 'विज्ञापन और कुछ नहीं,

विक्रय-कलाका ही छापनेकी मशीन द्वारा बहुगुणीकृत रूप है।' इस-लिए जो लोग अपना माल बेचना चाहते हैं, वे पत्रोंमें विज्ञापन छपवाने-को तुच्छ दृष्टिसे नहीं देख सकते और न उसकी उपयोगिताकी उपेक्षा कर सकते हैं। हाँ, किस पत्रको विज्ञापनका साधन बनाया जाय, किसको नहीं, इस बारेमें प्रत्येक व्यवसायीको अपनी पृथक् राय रखनेका अधिकार है। जैसा माल हो और जैसे क्षेत्र या जिस वर्गके लोगोंमें उसे बेचना हो, उसके अनुसार वह उचित निर्णय कर सकता है।

उदाहरणके लिए यदि प्रतिदिन काममें आनेवाली साबुन या दिया-सलाई जैसी वस्तुका विज्ञापन देना हो तो उसे तैयार करनेवाले कार-खानेके मालिकको चाहिये कि वह ऐसे पत्रमें उसका विज्ञापन छपवाये जिसकी प्रचार-संख्या अधिक हो, न कि किसी व्यापारिक या वित्तीय पत्रमें, क्योंकि उसका मुख्य उद्देश्य जितने अधिक लोगोंतक सम्भव हो, उतनेतक पहुँचना है, केवल चुने हुए वर्गके लोगों या आबादीके विशिष्ट भागतक, जैसे उद्योगपति, व्यवसायी या बैंकर, पहुँचनेसे उसका काम नहीं चल सकता। इसके विपरीत यदि किसी संयुक्त स्कन्ध प्रमण्डलके प्रवर्तक (प्रमोटर) को अपनी कम्पनीके उद्देश्य पत्रका विज्ञापन करना हो तो वह ऊपर कहे गये दैनिकपत्र जैसे पत्रकी अपेक्षा किसी व्यापारिक या वित्तीय पत्रको ही अधिमान्यता देगा।

जिस प्रकार विज्ञापनदातागण समाचारपत्रोंमें विज्ञापन छपवानेके महत्त्वकी उपेक्षा नहीं कर सकते, उसी तरह समाचारपत्र भी विज्ञापन-दाताओंकी उपेक्षा नहीं कर सकते। 'यंग इण्डिया' जैसे पत्रको इसका अपवाद समझना चाहिये क्योंकि उसमें महात्माजी एक भी विज्ञापन छपने नहीं देते थे। एकाध पत्र 'रीडर्स डाइजेस्ट' जैसा भी ऐसा पत्र है जिसे विज्ञापनकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि सब तरहके लोग उसे पढ़ते हैं और दुनियाके विभिन्न भागोंमें उसका बहुत अधिक प्रचार है।

वस्तुतः दिसम्बर १९५२ में 'इण्डियन सोसाइटी ऑफ एडवर्टाइ-जर्स' (विज्ञापनदाताओंकी भारतीय समिति) का उद्घाटन करते हुए

'टाइम्ज ऑफ इण्डिया' के वर्त्तमान सम्पादक फ्रैंक मोरेशने ठीक ही कहा था कि "विज्ञापनदाता न रहें तो समाचारपत्र चल नहीं सकते।" जिस तरह अपनी अधिकांश आमदनीके लिए समाचारपत्र विज्ञापनदाताओंपर अवलम्बित रहते हैं, उसी तरह विज्ञापनदाता भी उन वस्तुओं या उन सेवाओंका विज्ञापन करनेके लिए जिन्हें वे लोगोंके हाथ बेचना चाहते हों, विज्ञापनका सत्र-प्रस्तुत एवं सर्वोत्तम साधन समझकर किसी अच्छे प्रचारवाले पत्रका सहारा लेनेको विवश होते हैं। विज्ञापन-दाताओंको यह बात हमेशा स्मरण रखनी चाहिये कि विज्ञापन करनेके कितने ही नये-नये साधनोंके निकल आने पर भी समाचारपत्रका स्थान अब भी सबसे आगे है। सन् १९५१ में अमेरिकामें विज्ञापनका सर्वप्रथम साधन समाचारपत्र ही थे, जैसा कि विज्ञापनके विभिन्न साधनोंपर किये गये खर्चके निम्नलिखित ऑकड़ोंसे स्पष्ट है—

समाचारपत्र	१,११,५६,५२,६२१	रुपये
सामान्य पत्रिकाएँ	८८,६४,५८,२०१	,,
रेडियो	६५,७१,७६,३७९	,,
टेलीविजन	४३,१४,६८,०२२	,,

ज्ञात पड़ता है कि ब्रिटेनमें भी विज्ञापनका सर्वोत्तम साधन समाचार-पत्र ही समझे जाते हैं, क्योंकि सन् १९५२ के प्रथमार्द्धमें विज्ञापनके समस्त साधनोंपर जितना खर्च हुआ, उसमेंसे ३० करोड़ १८ लाख ७३ हजार रुपये केवल समाचारपत्रोंमें दिये गये विज्ञापनोंपर खर्च हुआ। कहा गया है कि १९५१ की उसी अवधिकी तुलनामें यह व्यय १७ प्रति-शत अधिक हुआ। दुर्भाग्यवश अपने देशके ऐसे तुलनात्मक ऑकड़े उपलब्ध नहीं हैं, फिर भी यह जानकर सन्तोष होता है कि बम्बईमें 'इण्डियन सोसायटी ऑफ एडवरटाइजर्स' नामक जो संस्था हालमें ही स्थापित हुई है उसने ऐसे ऑकड़ोंका संग्रह करना अपना पहला काम घोषित किया है।

विज्ञापनदाता अब सभी जगह अधिकाधिक मात्रामें अपना महत्त्व

समझते जा रहे हैं। एक समय था जब विज्ञापनदाताको समाचारपत्रोंके सुरपर नाचना पड़ता था किन्तु अब वह समझने लगा है कि पैसा तो मैं देता हूँ, इसलिए मैं जो राग चाहूँगा, वही समाचारपत्रको अलापना पड़ेगा। विज्ञापनदाताओंकी अभीतक कोई अपनी अलग संस्था भारतमें न थी, इसलिए उन्हें समाचारपत्रोंकी सुविधाओंके सामने—कभी कभी बहुत नाक-भौं सिकोड़ते हुए—सिर झुकाना पड़ता था किन्तु अब धीरे-धीरे उनकी श्रेणियोंमें अधिकाधिक दृढ़ताकी भावना फैलती जा रही है और वे अपने भीतर इतने साहसका अनुभव करने लगे हैं कि पत्रोंके मालिकों तथा सम्पादकोंकी नजरमें नजर मिलाकर खड़े रह सकें।

विज्ञापनदातागण समाचारपत्रोंको कहाँतक प्रभावित करते हैं, यह प्रश्न हमेशा ही वाद-विवादका विषय रहा है। एक मत तो यह है कि समाचारपत्रोंपर विज्ञापन दाताओंके किसी प्रभावकी चर्चा करना बिलकुल बेतुकी और हास्यास्पद-सी बात है, दूसरा मत है कि विज्ञापन-दाताओं द्वारा सम्पादकीय नीतिके प्रभावित किये जानेके सम्बन्धमें की गयी आलोचना, बहुतसे मामलोंमें बिलकुल 'सारगर्भ' और 'सप्रमाण' है।* सच बात यह है कि विज्ञापन दाताओंके लिए समाचारपत्रोंको प्रभावित करना सम्भव अवश्य है, विशेषकर उस समय जब विज्ञापन-दाता निरंकुश हो, पत्रका मालिक केवल पैसेका भूखा हो और सम्पादक थोड़ा-सा "कृपालु" या अनुग्रह करनेवाला हो।'

विज्ञापन तीन तरहसे प्राप्त हो सकते हैं—या तो समाचारपत्रका विज्ञापन-विभाग स्वयं अनुयाचना कर उन्हें प्राप्त करे या कोई व्याव-सायिक संस्था सीधे उसके पास भेज दे, या फिर किसी विज्ञापन दिलाने-वाली संस्थाके जरिये प्राप्त हो। अक्सर कितनी ही व्यावसायिक संस्था-ओंमें अपना अलग विज्ञापन-विभाग होता है जो अपने विज्ञापनोंकी व्यवस्था देखरेख आदि करता है, यद्यपि इधर कुछ समयसे उनमेंसे कईको फिर यह धारणा होती जा रही है कि किसी अच्छी विज्ञापक

* Elfenbein, p 141

संस्था द्वारा विज्ञापन छपवाना ही अन्ततोगत्वा अधिक लाभदायक होता है। कुछ मामलोंमें तो अपने विज्ञापनोंकी देखरेख स्वयं करनेकी प्रवृत्ति व्यावसायिक संस्थाओंमें इस कारण उदय हुई कि वे विज्ञापनक संस्थाओंको दिया जानेवाला कमीशन (वर्त्तन) अपने लिए ही बचा लेना चाहती थीं, किन्तु जबतक विज्ञापन छपवानेका काम इतना बढ़ा चढ़ा न हो कि उसके लिए पूर्ण रूपसे सज्जित एक पृथक् विभाग रखना आवश्यक हो, तबतक यह प्रयोग करनेसे कोई लाभ नहीं।

विज्ञापनके एजेण्ट या विज्ञापनक संस्थाएँ विज्ञापन भेजवानेके बदले समाचारपत्रोंसे कमीशन लिया करती हैं। ये एजेण्ट या ये संस्थाएँ विज्ञापन इकट्ठा ही नहीं करतीं, वरन् अन्य कामोंके साथ यह भी करती हैं कि विज्ञापनको ठीकसे सजा देना, जहाँ जरूरत हो वहाँ ब्लॉक बनवा देना, ठीक ढंगके अखबारोंका चुनाव करना और उन्हें इस बातकी हिदायत करना कि कौनसा विज्ञापन किस स्थानपर रखा जाय, विज्ञापनदाताओंसे प्राप्यकों (बिलों) का रुपया वसूल कर शीघ्र ही—और यह काम बड़ी जोखिमका तथा जिम्मेदारीका होता है—उन उन समाचारपत्रोंको चुका देना जिनमें विज्ञापन छपवाया गया हो।

विज्ञापन संग्राहक दो तरहके होते हैं—मान्य तथा अमान्य। मान्य संग्राहक (एजेण्ट) वे हैं जिन्हें समाचारपत्रोंकी संस्थाओंने—जैसे इण्डियन एण्ड ईस्टर्न न्यूज पेपर सोसायटी—मान्यता दी हो। इन्हें अन्योंकी अपेक्षा अधिक अच्छी शर्तें या रियायतें मिलती हैं—कमीशन उनसे अधिक यानी १५ प्रतिशत तथा पत्रोंके व्यवस्था-विभागको रुपयेकी अदायगीके लिए अधिक समय (९० दिन) मिलता है*।

प्रत्येक समाचारपत्रमें विज्ञापनोंकी देखरेखके लिए पृथक् विभाग होना चाहिये। इस विभागका अधिपति होगा विज्ञापन-व्यवस्थापक। समाचारपत्र या मासिकपत्रके कार्यक्षेत्र और रूप-रंग आदिसे इसके कर्तव्योंका घनिष्ठ सम्बन्ध है।

---

* अब यह अवधि ७५ दिन कर दी गयी है।

चाहिये और उसके मिलने-जुलने, बातचीत करने आदिका ढंग आनन्द-दायक तथा फुसला लेनेवाला होना चाहिये। थोड़ेमें उसे अपने पत्रकी वकालत इस तरह करनी चाहिये जिससे किसीकी भी तसल्ली हो जाय और जो भावी ग्राहक विरोधी रुख धारण किये हो या हिचकिचा रहा हो वह भी समुचित आश्वासन तथा प्रोत्साहन पाकर अपना विचार बदल दे।

विज्ञापन छपवानेकी प्रवृत्ति बराबर बढ़ रही है। भारतमें उसका भविष्य उतना ही महान् है जितना पत्र-पत्रिकाओं आदिका। जिस तरह हमें पत्रकारोंको प्रशिक्षण देनेकी आवश्यकता है, उसी तरह हमें अपने युवकोंको विज्ञापन सम्बन्धी नौकरियों या कार्योंके लिए भी प्रशिक्षित करना चाहिये। यह ऐसी चीज है जिसकी ओर केवल समाचारपत्रों, विज्ञापनदाताओं तथा विज्ञापन संस्थाओंका ही नहीं, वरन् शिक्षा-विशारदों, माता-पिताओं तथा देशके युवकोंको भी ध्यान देना चाहिये।

इस छोटेसे अध्यायमें कानूनकी इन शाखाओंका ब्यौरेवार वर्णन करना सम्भव नहीं। फिर भी प्रारम्भिक सिद्धान्तोंकी चर्चा यहाँ की जा सकती है।

अपमान-लेख तथा मानहानि

मानहानिका अपराध हमेशा ही समाचारपत्रों द्वारा किया जानेवाला मुख्य अपराध माना गया है। यह अपराध अधिकारोंके अन्य सब तरहके उल्लंघनसे गुरुतर है जिसके लिए कोई समाचारपत्र दोषी ठहराया जाय। पत्रकारोंको आयेदिन व्यक्तियोंकी प्रतिष्ठा और कीर्तिकी चर्चा करनी पडती है—चाहे वे तथ्यकी बात लिख रहे हों, अभिकथन और आरोप कर रहे हो, सम्पादकीय टीका-टिप्पणी कर रहे हों, स्थान समाचार दे रहे हों, शीर्षक बना रहे हों या ऐसा ही अन्य काम कर रहे हों।

'मानहानि' अधिक व्यापक शब्द है जिसका प्रयोग उन अपमान-जनक वक्तव्यों या कथनोंके लिए होता है जो मौखिक रूपसे अथवा लेखके रूपमे दिये या किये गये हों। किसीकी मानहानि करनेवाली जो बातें समाचारपत्रमें प्रकाशित की जाती हैं, उन्हें ही हम अपमान लेख' (लाइबल) कहते हैं। अपमान-वचन (स्लैण्डर) मौखिक रूपमें की गयी मानहानिकी ओर संकेत करता है।

'अपमान लेख' समाचारपत्रोंके लिए भयका मुख्य कारण होता है। किसी व्यक्तिके सम्बन्धमें ऐसे झूठे और अपमान-जनक वक्तव्यका प्रकाशित किया जाना 'अपमान-लेख' कहा जाता है, जो लिखा गया हो, छपा हो या संकेतों-चित्रों द्वारा या किसी ऐसे रूपमें प्रकट किया गया हो जो स्थायी हो तथा जिसे प्रकाशित करनेके लिए कोई विधिक औचित्य या कारण न हो। उसके सम्बन्धमें यह समझा जाता है कि जिनके लिए वह प्रकाशित किया जाता है उनमें व्यक्ति-विशेषके विरुद्ध अध्यारोप फैलानेका प्रयत्न किया गया है या उसमें उसके व्यापार, पेशे या रोजगारको हानि पहुँची है, या उसे घृणा, अपमान तथा उपहासका पात्र बनाया गया है अथवा इस तरह विचारशील और अच्छे आद-

मियोंके मनमें उसके सम्बन्धमें कलुषित धारणा उत्पन्न करानेकी चेष्टा की गयी है। ऐसा वक्तव्य, लेखकका चाहे जो भी उद्देश्य क्यों न रहा हो, अपमानजनक ही माना जायगा और इसके कारण उसपर मुकदमा चल सकता है।

ऐसे कोई भी शब्द मानहानि जनक समझे जायँगे जिनमें वादीपर यह अभ्यारोप किया गया हो कि उसने कोई अपराध, धोखेबाजी, बेईमानी या अनैतिक कार्य किया है अथवा वह किसी दुर्गुण या दुराचारका दोषी है या उसपर ऐसे दुराचारका अभियोग लगाया गया है या इसकी शंका की गयी है, या जिनमें यह सुझाव हो कि वादी किसी सक्रामक विकारसे पीडित है, या जिनकी प्रवृत्ति उसे दफ्तरमें, अपने पेशे या व्यापारमें, क्षति पहुँचानेकी हो।

इसी तरह वे सब शब्द भी अपमानजनक हैं जिनके कारण वादीके प्रति तिरस्कार, घृणा या उपहासका भाव पैदा हो और जो विचारशील भले-मानुसोंके मनमें उसके प्रति बुरी धारणा उत्पन्न कर उसे मित्रता-पूर्वक लोगोंसे मिलने-जुलने या बातचीत करने और दूसरोंके साथ रहनेसे वञ्चित रखनेका उपक्रम करे। 'अपमान-लेख' का सार यह है कि किसी व्यक्तिके विरुद्ध कोई अभ्यारोप किया गया हो। यह अभ्यारोप या तो उसके चरित्रपर हो या उसके अपने कारबार चलाने या व्यापार करनेके ढगपर।

अपमान-लेखके सम्बन्धमें कोई संहिताबद्ध विधि (कानून) भारतमें नहीं है। वह अंग्रेजी कानूनसे ली गयी नजीरों (पूर्वोदाहरणों) पर आधारित है।

अपमान-लेखके सघटक (इनग्रेडिएण्ट्स) ये हैं—

(१) वक्तव्य या कथन झूठा हो,

(२) वह अपकीर्तिकर हो,

(३) वह (समाचारपत्रादिमें) प्रकाशित किया गया हो,

(४) वह किसी स्थायी रूपमें हो,

(५) वह वादीके सम्बन्धमें ही दिया या किया गया हो।

अपमानजनक वक्तव्य या कथन इन चार हिस्सोंमें बाँटे जा सकते हैं—

(१) घृणा, अवज्ञा या तिरस्कारका भाव उत्पन्न करनेवाले अथवा उपहास करानेवाले,

(२) वे जिनके कारण समाजके लोग वादीसे दूर-दूर रहने या उसकी सगतिमें आनेसे बचनेका प्रयत्न करें,

(३) पेशा, वृत्ति या पदपर प्रभाव डालनेवाले,

(४) व्यापार या कारोबारपर प्रभाव डालनेवाले।

जिन वक्तव्योंके कारण किसी व्यक्तिकी वैयक्तिक ख्यातिको क्षति पहुँचे, उनसे उसकी हँसी होती है या लोग उससे घृणा करने लगते हैं, उसकी अवज्ञा करते हैं। यदि किसीपर दुराचार या दुश्चरित्रका आरोप लगाया जाय और वह आरोप झूठा हो तो वह व्यक्ति लोगोंकी घृणा, अवज्ञा तथा तिरस्कारका पात्र बन जाता है।

किसी व्यक्तिके बारेमें झूठमूठ यह प्रकाशित कर देना कि उसने अपनी माताकी हत्या कर डाली है, किसी बैंकका रुपया उड़ा दिया है, या यह कि वह शराबी है, अपनी पत्नीको बहुत पीटता है, या यह कि वह गलित कुष्ठसे अथवा किसी अन्य सक्रामक रोगसे पीड़ित है, अथवा यह कि कोई औरत असती है, कोई वकील कानून नहीं जानता, कोई वैद्य नकली चिकित्सक है,—यह सब अपमानकारी है।

किसी व्यक्तिकी तुलना ऐसे किसी पशुसे करना जिनकी आदत या विशेषता छलमय, घृणा उत्पन्न करनेवाली, उबिया देनेवाली या गुस्सा दिलानेवाली हो—उदाहरणके लिए उसे 'काली भेड़', 'घासमें छिपा साँप', 'सियार' या 'सूअर' कह देना—अपमानकारक है। इसी तरह किसी मासिक पत्रिकामें घटिया मेलकी कोई कहानी किसी सुविख्यात लेखकके नामसे प्रकाशित कर देना, यद्यपि वह उसकी लिखी हुई न हो, अपमानकारक समझा जाता है। समाचारपत्रमें कोई ऐसा वृत्तान्त प्रका-

शित करना जिसमे वादीका रगटग हास्यास्पद प्रतीत हो, यद्यपि खुद उसीने यह बयान पहलेपहल दिया हो—अपमानकारक माना जायगा। जो आदमी किसी पदपर काम कर रहा हो, या अपने पेशे अथवा व्यापार-मे लगा हो, उसके सम्बन्धमे यह अभ्यारोप करना कि वह उसके नाका-बिल है या उसमे उसने कोई अनुचित व्यवहार किया है, अपमानजनक है। इसी तरहके और भी अगणित उदाहरण दिये जा सकते हैं। नियम यह है कि आप स्वय अपने आपसे पूछकर देख लें कि किसी व्यक्तिके सम्बन्धमे जो शब्द आपने कहे हैं, उनसे क्या उसकी कीर्त्तिको क्षति पहुँचनेकी सम्भावना है?

किसी वक्तव्य या चित्रके छपनेके बाद सर्वसाधारणपर उसकी क्या प्रतिक्रिया होती है, यही अपमान-लेखके आरोपकी कसौटी है। यह आवश्यक नहीं कि उक्त वक्तव्यसे समस्त जनतामे ही घृणा, अवज्ञा या तिरस्कारका भाव जागरित हो उठे। सयुक्तराष्ट्र अमेरिकाके सर्वोच्च न्यायालयने कहा था कि कोई तथा-कथित अपकीर्त्तिकर वक्तव्य सभीकी दृष्टिमे अपकीर्त्तिकर हो, यह आवश्यक नहीं, किन्तु यदि उससे किसी समाजके विचारणीय एव सम्मानित वर्गके लोगोंमें उसकी बदनामी फैलने-की सम्भावना हो तो वह 'अपमान-जनक' समझा जायगा। समझदारीका प्रतिमान उस मामूली समझदार आदमीकी समझ है जिसमे उस वर्गके औसत आदमीकी बुद्धि, ज्ञान, शिक्षा और अनुभव हो जिनके लिए उक्त शब्द प्रकाशित किये गये थे।

प्रत्येक आदमीको अपनी कीर्त्तिके उपभोगका अधिकार है और उन नैतिक तथा भौतिक लाभोंके भी उपभोगका जो उस कीर्त्तिके कारण लोगोंके साथ सम्बन्ध बने रहनेसे उसे प्राप्त हों। इसमे वह चीज भी शामिल है जिसे एल जे स्लेसरने यूसान पॉफके मामलेमें (१९३४) "ससारसे सम्मानजनक व्यवहार पानेके अवसर" कहा है। कोई भी ऐसा अभ्यारोप जिससे इस अधिकारके उल्लघनकी सम्भावना हो और जो प्रकाशित किया गया हो, अपमानकारक समझा जाता है।

व्यंग्योक्ति

कुछ शब्द अपने दूसरे अर्थमें अपकीर्त्तिकर हो सकते हैं—अर्थात् अपने सामान्य अर्थमें यद्यपि वे अपकीर्त्तिकर नहीं होते किन्तु कभी कभी विशेष अपमान-जनक अर्थमें उनका प्रयोग किया जा सकता है। ऐसा कोई प्रकाशित लेख या वक्तव्य देखनेमें बिलकुल निर्दोष और अपकीर्त्ति-कर अर्थोंसे रहित प्रतीत हो सकता है, फिर भी परिस्थिति-विशेषमें उससे किसी व्यक्तिकी कीर्त्तिको हानि पहुँच सकती है।

अन्य अपमान-लेख

व्यक्तियोंके जन्म, मरण, मँगनी, विवाह आदि सम्बन्धी गलत सूच-नाएँ अपमान-जनक हो सकती हैं, उदाहरणके लिए किसी उच्च कुलकी सम्भ्रान्त महिलाके किसी क्षुद्र जाति या क्षुद्र ख्यातिके व्यक्तिके साथ विवाहकी सूचना। यदि किसीके नामके पहलेके अक्षर गलत लिख दिये जायँ या नामकी अशुद्ध वर्त्तनी छाप दी जाय, तो इससे किसी अन्य व्यक्तिका द्योतन होकर उसका अपमान हो सकता है।

इसलिए यह बहुत ही जरूरी है कि समाचारोंका संग्रह करते समय और उनके सम्पादनमें उच्च स्तरकी सावधानी रखी जाय जिससे किसीका नाम, विवरण आदि गलत न जाने पाये। विवरण या कथानककी अन्तर्वस्तुमें अपकीर्त्तिकर बातका होना जितना बुरा है, उतना ही शीर्षक-पंक्तियोंमें उसका रहना बुरा है। अपमानजनक शीर्षक-पंक्तियाँ देनेसे सम्पादकीय विशेषाधिकार समाप्त हो जानेकी आशंका रहती है। समाचार-पत्रोंमें शीर्षक-पंक्तियोंके सम्बन्धमें थोड़ी सी खतरा उठानेकी प्रवृत्ति बढ़ रही है जिसके कारण किसी भी दिन संकट उपस्थित हो सकता है। किसीके चित्रके नीचे गलत पंक्तियाँ देना भी अपमानजनक हो सकता है। किसी भी अपमानजनक विवरणके साथ कहा जाता है कि'या 'खबर मिली है कि','सुना गया है कि' आदि शब्द रख देनेसे ही बचाव नहीं हो जाता। उससे केवल हरजानेमें कमी हो सकती है। अपमान लेख यदि लोकवार्त्ताके छद्म रूपमें रखा जाय तो इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं।

'प्रकाशन' का अर्थ

प्रकाशनका अर्थ होता है अपमानजनक वक्तव्यका, जब वह लिखा जा चुका हो या जिसके सम्बन्धमें वह हो उसे छोड़कर अन्य किसीको बता दिया गया हो, जाहिर कर दिया जाना। जिसकी बदनामी हुई हो उसको छोड़कर अन्य किसी व्यक्ति या व्यक्तियोंपर अपकीर्तिकर कथनका प्रकट कर दिया जाना ही उसका प्रकाशित होना कहलाता है। पत्रका प्रकाशक, यद्यपि वह स्वयं अपमान लेखका रचयिता नहीं और न उसके लिखे जाने या प्रकाशित किये जानेसे उसका कोई सम्बन्ध या जिम्मेदारी होती है, प्रकाशक होनेके नाते ही दोषाई माना जाता है। अपमान लेखकी लिखी या छपी हुई प्रत्येक प्रतिकी बिक्री या किसीके हाथमें उलका दिया जाना प्रत्येक बारका नया प्रकाशन समझा जायगा।

किसी अपमानजनक वक्तव्य या कथनका प्रकाशन केवल उस कार्यालयमें ही या उस नगरमें ही नहीं होता जहाँसे कोई पत्र निकलता है वरन् उन स्थानोंमें भी होता है जहाँ-जहाँ उसका प्रचार हो। अपमानजनक लेखवाले समाचारपत्रकी प्रत्येक बारकी बिक्री वैधिक दृष्टिमें 'प्रकाशन' कहलाता है और वह स्पष्टतः मुकदमेका कारण बन सकती है। प्रकाशनमें बादमें किया जानेवाला दुबारा प्रकाशन तथा उसका अनुवाद भी शामिल है।

जो आदमी अपमान-लेखको दोहराता है (अपने पत्र या ग्रन्थादिमें उद्धृत करता है) वह मानो उसे अपना बना लेता है और इसलिए उसकी पुनरावृत्तिके लिए दोषी होता है। यदि पहली बार उसका प्रकाशन किसी विशेषाधिकारके कारण हुआ हो, तो जो आदमी इस अपमान लेखको दोहराता है, वह इस तरह उसे दोहरानेके लिए जिम्मेदार माना जाता है। विशेषाधिकार प्रकाशनसे बिल्कुल भिन्न वस्तु है। वह प्रकाशनकी मनाही नहीं करता, किन्तु प्रकाशनके दोषको क्षमा कर देता है।

अपमानजनक कथन या लेखपर मुकदमा तभी चल सकता है जब

किसी विशेष व्यक्ति या व्यक्तियोंपर जिनकी निश्चित रूपसे पहचान की जा सके, कोई अभ्यारोप किया गया हो। यदि नामका उल्लेख न भी किया गया हो, तब भी यह साबित करना होगा कि अभ्यारोप किसी खास आदमी या आदमियोंको लक्ष्यकर किया गया है जिनकी शिनाख्त की जा सकती है। अपमान-लेखके सम्बन्धमे इरादा या वह उद्देश्य जिससे शब्द लिखे गये हो, सामान्यत महत्त्वहीन समझा जाता है।

यदि लेखकके कुछ लिख देनेसे सचमुच वादीकी कीर्त्तिपर आघात हुआ है, तो वह दोषी है, भले ही उसका इरादा ऐसा करनेका न रहा हो, और जब उसने ये शब्द लिखे थे तब उसके मनमें ऐसी कोई बात न रही हो। प्रकाशन मिथ्या तथा अपकीर्त्तिकर हो सकता है, यद्यपि वह सयोगसे या कथनकी सचाईमे विश्वासके कारण अनजाने हो गया हो। हॉ, यह बात अवश्य है कि इस स्थितिमे हरजाना घटा दिये जानेमे इससे बडी सहायता मिलती है। जो समाचारपत्र अपमानजनक बात प्रकाशित करता है, खुद जोखिम उठाकर ही ऐसा करता है।

बचावकी दलीले

अपमान-लेखके किसी मामलेमे बचावकी ये मुख्य दलीले उपस्थित की जा सकती है—

(१) कथनकी सत्यताका प्रमाण।

(२) विशेषाधिकार (परम या अबाधित, तथा मर्यादित)

(३) उचित टीका या आलोचना।

विशेषाधिकार—समाचारपत्रोंको कोई अबाधित या परम विशेषाधिकार प्राप्त नही है। यह केवल इन लोगोंपर लागू होता है—विधान-मण्डलोंके सदस्य, वकील, गवाह या वादी-प्रतिवादी, या राज्योंके कार्य या उनकी सम्सूचनाऍ (कम्यूनिकेशन्स)। प्राविधिक दृष्टिसे इनके कथन आदिके प्रकाशनका अबाधित अधिकार समाचारपत्रोंको नहीं है।

"इनकी काररवाइयोंकी जो रिपोर्ट पत्रकार देते है, उन्हें वह उन्मुक्ति

प्राप्त नहीं है जो कानूनने उन्हें दी है जो इन कारवाइयोंमें स्वयं हिस्सा ग्रहण करते हैं।"

मर्यादित विशेषाधिकार—फिर भी, विधान-मण्डलों या न्यायालयोंकी ऐसी कारवाइयोंका जिनमें विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्तियोंके कथन, आदि हों, विभिन्न घटनायुक्त लम्बे इतिहासके बाद प्रकाशन करना अब मर्यादित विशेषाधिकारकी बात मान ली गयी है और वे उन्मुक्ति पूर्वक प्रकाशित की जा सकती हैं, भले ही वे अपमानजनक रही हों।

किसी सार्वजनिक, विधिक, नैतिक या सामाजिक कर्त्तव्यका पालन करनेके लिए या अन्य किसी रूपसे अपने हितोंकी रक्षाके लिए मनुष्यको कानूनन यह अधिकार प्राप्त है कि वह ऐसा मत प्रकट करे, वक्तव्य दे या विवरण प्रकाशित करे जिसे वह न्यायोचित समझता हो, भले ही वह किसीके लिए अपकीर्तिकर हो, उपबन्ध यह है कि वक्तव्य देनेवाला व्यक्ति ईमानदार या सच्चा हो और द्वेषपूर्ण उद्देश्यसे प्रेरित होकर उसने उन वक्तव्य न दिया हो। ऐसी ससूचनाओंको परिभाषा इस प्रकार की गयी है—"व वक्तव्य जो किसी व्यक्ति द्वारा कोई सार्वजनिक या निजी कर्त्तव्य पालन करते समय, चाहे वह कानूनी हो या नैतिक, या अपने निजी काम काजके सचालनके समय, दिये गये हों—शर्त यह है कि वे किसी बुद्धिसगत अवसर या तात्कालिक आवश्यकतासे बहुत कुछ उचित जान पड़े और सचाईके साथ दिये गये हों।"

इस तरह दिये गये वक्तव्यों आदिको जनताकी सुविधा तथा समाजकी भलाईकी दृष्टिसे विधिक सरक्षण प्राप्त है और विधि याने कानूनने उन्हें देनेके अधिकारको थोड़ेसे समयके भीतर निर्बन्धित नहीं किया है। प्रकाशित करनेके मर्यादित विशेषाधिकारके सिलसिलेमें किसी व्यक्तिको उस समय किसी दूसरेसे कोई बात कह देने, प्रकाशित करनेकी छूट मिल जाती है, जब इससे कह देनेमें विधिक, सामाजिक या नैतिक दृष्टिसे उसका अपना कोई स्वार्थ या कर्त्तव्य नहीं होता और जिससे बात कही

जाय उसे भी उसे सुन लेने या जान लेनेमें कोई स्वार्थ सिद्धि या कर्त्तव्य की बात न हो। इस पारस्परिकताका होना आवश्यक है।

जहाँतक समाचारपत्रोंका सम्बन्ध है, इस मर्यादित विशेषाधिकारके प्रयोगका सबसे महत्त्वपूर्ण अवसर वह है जब उन्हें संसद या विधान-मण्डलोंकी अथवा न्यायालयोंकी काररवाई छापनी पडती है। जनताको यह जाननेका अधिकार है कि न्यायालयोंमें या विधान मण्डलोंमें क्या हो रहा है।

विधिक नियम यह है कि जब उचित ढंगसे गठित न्यायिक अधिकरण (जूडिसनल ट्रिब्यूनल) के सामने, जो खुली अदालतमें अपने क्षेत्राधिकारका प्रयोग करे, किसी मामलेपर न्यायिक काररवाई हो तो उक्त अदालतके सामने जो कुछ कहा-सुना जाय, उसकी निष्पक्ष और सही रिपोर्ट, बिना किसी द्वेषभावके प्रकाशित करना विशेषाधिकारके अन्तर्गत आता है (उक्त रिपोर्ट प्रकाशित करनेका विशेषाधिकार समाचार पत्रोंको प्राप्त है) जब पहले पहल किसी शिकायतके मजमून या वादपत्र-की रिपोर्ट फाइल की जाती है, तब उसे प्रकाशित करनेका विशेषाधिकार पत्रोंको नहीं होता। बहुतसे अखबार अक्सर यह महत्त्वपूर्ण नियम भूल जाते हैं और कभी-कभी उन्हें इसकी कीमत भी चुकानी पडती है।

द्वेषभाव—बन्द कमरेमें उचित ढंगसे की गयी अदालतकी काररवाईका विवरण प्रकाशित करना, चाहे वह कितना ही निष्पक्ष एवं सत्य क्यों न हो, विशेषाधिकारकी परिधिमें नहीं आता (अतः समाचार पत्र भी उसे नहीं छाप सकते)। जिन काररवाइयोंकी रिपोर्ट प्रकाशित करने-का विशेषाधिकार किसी प्रकाशकको प्राप्त हो, उनके सम्बन्धमें यदि यह पता चल जाय कि उसने अनुचित उद्देश्यसे प्रेरित होकर ऐसा किया है, तो उसका यह विशेषाधिकार या विशेष सुविधा समाप्त हो जाती है। मर्यादित विशेषाधिकार द्वेषका प्रमाण मिलते ही समाप्त हो जाता है। जो वक्तव्यादि मर्यादित विशेषाधिकारके अन्तर्गत प्रकाशित किये जाते हैं, जनताके हित तथा समाजके कल्याणकी दृष्टिसे कानून उनकी रक्षा करता

है। यदि कोई प्रकाशक किसी बाह्य या अनुचित उद्देश्यसे प्रभावित होकर ऐसी कोई चीज प्रकाशित करता है तो विशेषाधिकारका रक्षण पानेका अधिकारी वह नहीं रह जाता। जो काररवाई प्रकाशित की गयी हो, वह सही हो सकती है, उसकी रिपोर्ट निष्पक्ष और यथार्थ हो सकती है, फिर भी यदि वह द्वेषवश प्रकाशित की गयी है तो सफाईकी दलील समाप्त हो जाती है। समाचारको समाचारके रूपमें ही प्रकाशित करना लक्ष्य होना चाहिये. अपना राग द्वेष प्रकट करनेका अवसर ढूँढना नहीं।

काररवाईका कोई विशेष अंश ही प्रकाशित करना, जिसका गलत और अनुचित प्रभाव पड़े, न्यायत उचित नहीं माना जा सकता। सच्ची बातोंको छिपा देना और झूठी बातोंको अपनी तरफसे जोड देना, इन दोनों ही तरहसे पक्षपात करने और गलत चीज छापनेका अपराध किया जा सकता है। उदाहरणके लिए ऐसी कोई रिपोर्ट न्यायोचित तथा पक्षपात-विहीन नहीं मानी जा सकती, जिसमे एक तरफके वकीलके वक्तव्य तो छाप दिये जाते है जो (दूसरे पक्षको) हानि पहुँचानेवाले हो, कि तु उनकी बात अस्वीकार करते हुए या उनके खण्डनमे जो वक्तव्य दूसरी ओरसे दिये गये हो, प्रकाशित न किये जायँ। किसी सदस्यपर किसीके द्वारा किए गये आक्रमणकी बात तो छाप देना पर उसने उसका क्या जवाब दिया, इसे न प्रकाशित करना अन्यायोचित है और ऐसा करनेका विशेषाधिकार किसी भी पत्रको प्राप्त नहीं है।

परिस्थितियाके कारण यह स्वाभाविक है कि विवरण सक्षेपमें ही दिया जाय किन्तु समाचार देनेवालेको "अपनी लेखनी द्वेष या कटुताकी रोशनाईमें डुबाकर" न लिखना चाहिये—किसके प्रति उसकी सहानुभूति है, यह बात उसकी रिपोर्टसे प्रकट न होनी चाहिये। जो कुछ होता है, उसका मुख्यत. सही वृत्तान्त समाचारपत्रोंको देना चाहिये। वह सक्षिप्त हो सकता है किन्तु उसमें कोई महत्त्वकी बात छूटनी न चाहिये, नहीं तो वह अन्यायोचित ही समझा जायगा। रिपोर्टका मूलभाग भी और शीर्षक-पक्तियाँ भी निष्पक्षतासूचक एव सही होनी चाहिये। यदि वे

सनसनीखेज या अतिरंजित हो तो विशेषाधिकार समाप्त हो जा सकता है।

उदाहरणके लिए ऐसी शीर्षक-पंक्तियाँ न देनी चाहिये—'हत्यारा पकड़ा गया।' शीर्षककी पंक्तियोंमें ऐसे शब्दोंका प्रयोग करना—'विश्वासघातक', 'झूठा', 'बेईमान' या 'लम्पट' आदि—विवरण देनेके अन्तर्गत नहीं आता, वह तो टीका टिप्पणी करना हुआ। विवरणमें यह ध्वनि न निकलनी चाहिये कि पकड़ा गया आदमी (अवश्यमेव) अपराधी है। मुकदमेकी सुनवाईके वृत्तान्तमें भी कोई टीका न होनी चाहिये। फैसला हो जानेके बाद ही टीका-टिप्पणी की जा सकती है।

एक गवाहका प्रति-परीक्षण करते हुए किसी वकीलने पूछा—"जिस कम्पनीके प्रतिनिधि आप हैं, क्या वह शहरमें सबसे बड़ी नहीं है?" गवाहने जवाब दिया—'जी हाँ'। इसपर विरोधी पक्षका वकील बोल उठा, "और वह शहरमें सबसे अधिक बेईमान भी है।" यह अभ्युक्ति कम्पनीके लिए अपकीर्तिकर समझी गयी, अदालती कारवाईके विषयमें इसका कोई सम्बन्ध न था और यह वकीलके कर्त्तव्यसे बाहरकी चीज थी। इस तरहके कथनों या अभ्युक्तियोंको प्रकाशित करनेकी छूट कानून नहीं देता। (रहीमबख्श बनाम बचालाल, ५१ अलाहा ५०१)।

पत्रकारको अपनी ओरसे कोई बात जोड़कर, जिससे टीका झलकती हो, रिपोर्टको मनोरंजक बनानेके प्रलोभनसे बचना चाहिये। पत्रोंके संवाददाताओंको अक्सर पहली सूचना सम्बन्धी रिपोर्ट, आरोपपत्र, शपथपत्र, वादपत्र आदि देखनेकी अनुमति दे दी जाती है। उनका प्रयोग केवल नाम, पता या ऐसी ही अन्य बातें ठीक करनेके लिए किया जाना चाहिये। छापे गये विवरणोंमें इनका निर्देश नहीं देना चाहिये, जबतक कि वे अदालतमें पढ़े न जायँ और नियमित साक्ष्यके रूपमें न प्रस्तुत किये जायँ।

संसद्की कारवाईका प्रकाशित किया जाना उसी स्तरपर रखा गया है जिसपर न्यायालयकी कारवाईका प्रकाशन। छापी गयी रिपोर्ट पर

पातविहीन तथा सही होनी चाहिये और बिना किसी द्वेषभावके प्रकाशित की जानी चाहिये। सदनके भीतर कोई सदस्य जो भाषण करता है, उसे करनेका उसे विशेषाधिकार प्राप्त होता है, चाहे वह किसी अन्य सदस्यके लिए अपकीर्तिकर ही क्यों न हो। मर्यादित विशेषाधिकारसे उसकी रिपोर्ट समाचारपत्रमें प्रकाशित की जा सकती है, उपबन्ध यह है कि समाचारोंकी रिपोर्टिंगके साधारण कार्यके सिलसिलेमें यह किया जाय। किन्तु यदि भाषणका अपकीर्तिकर अंश भाषण करनेवाले सदस्यकी पीठ ठोकने या प्रशंसा करनेके उद्देश्यसे अथवा इस इरादेसे विशेषरूपसे छापा जाय कि उनसे उस सदस्यकी परेशानी बढ़े जिसपर आक्षेप किया गया है, तो पत्रका यह विशेषाधिकार समाप्त हो जायगा।

सार्वजनिक सभाओंकी रिपोर्ट छापनेके सम्बन्धमें पत्रकारोंको कोई विधिक रक्षण प्राप्त नहीं किन्तु ऐसी रिपोर्टें उन्हें प्राय नित्य ही छापनी पड़ती है, इसलिए इनका विवरण देते समय पत्रकारको विशेष सावधानी और होशियारीसे कॉपी तैयार करनी चाहिये। सभी अपमानजनक या अपकीर्तिकर अशिष्टतापूर्ण या अपवित्र निर्देश बिल्कुल उड़ा देने चाहिये और द्वेषपूर्ण भावसे उनका प्रकाशन न किया जाना चाहिये।

न्यायोचित टीका, या आलोचना

सार्वजनिक पदोंपर काम करनेवालोंको उन आलोचनाओंकी तरफ, जो उनके कार्यों आदिके सम्बन्धमें की जायँ, बिल्कुल उपेक्षाभावसे नहीं देखना चाहिये। बहुत सम्भव है कि कई बार सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं-पर ऐसे आक्षेप किये जायँ, जिन्हें वे तहेदिलसे अवाञ्छनीय और अनुचित समझते हों, फिर भी उन्हें सब कुछ सह लेना चाहिये और इस बातका अवसर देना चाहिये कि कुछ समयमें यथार्थ स्थिति लोगोंकी समझमें आ जाय, क्योंकि यह बात सभी जानते हैं कि सार्वजनिक कर्त्तव्योंका समुचित पालन करानेके लिए समाचारपत्रोंकी आलोचना सबसे निश्चित उपाय है। (प्रधान न्यायाधिपति श्री कॉकबर्न)।

निष्पक्ष टीका-टिप्पणी करनेकी स्वतन्त्रताका अधिकार "कानूनके

मुकुटका सबसे उज्ज्वल रत्न है जिससे एक तरफ तो अपकीर्ति फैलाने और दूसरी तरफ स्वतन्त्रतापूर्वक सार्वजनिक रूपसे चर्चा करनेके मुक्त अधिकारके बीचका सुवर्णपथ अपनाया जा सकता है।" निष्पक्ष आलोचनाका आवश्यक तत्त्व यह है कि जिस विषयकी आलोचना की जाय वह सार्वजनिक हितका विषय हो। उसे स्पष्ट रूपसे कथित तत्त्वोंपर आधारित एक तरहका मानसिक मूल्यांकन-सा होना चाहिये और क्षुद्र तथा भ्रष्ट उद्देश्योंके किसी तरहके अभ्यारोपसे मुक्त होना चाहिये। किसी व्यक्तिकी सचमुच जो राय हो, उसीका परिणाम टीका-टिप्पणीके रूपमे प्रकट होना चाहिये। राग द्वेषसे उसे मुक्त होना चाहिये। टीका-टिप्पणी करनेका विशेषाधिकार लोकहितकी दृष्टिसे ही प्राप्त होता है, निजी भावनाओंकी परितृप्तिके लिए नहीं। किसी व्यक्तिकी आलोचना न कर उसके कार्य या व्यवहारकी आलोचना करनी चाहिये। आप अपने विषयकी धज्जियाँ उडा दे सकते हैं, भले ही उससे किसीकी कीर्त्तिपर आघात होता हो, फिर भी ऐसी आलोचनाके लिए जो सीमा बाँध दी गयी है, उसके भीतर ही आपको रहना चाहिये।

"कोई छिद्रान्वेषण या गाली-गलौजको ढँकनेके लिए ही आलोचनाका प्रयोग न होना चाहिये।" आलोचना केवल उन्हीं बातोंकी की जाती है जिनकी ओर सर्वसाधारणका ध्यान जाता है या जिनके सम्बन्धमें सार्वजनिक टीका-टिप्पणीकी आवश्यकता होती है। वह किसी सार्वजनिक कार्यकर्त्ताके निजी जीवनतक उसका पीछा नहीं करती और न उसके पारिवारिक मामलोंके ही भीतर घुसनेका प्रयत्न करती है।

अपकीर्त्ति

पूर्वके अनुच्छेदोंमें हमने नागरिक अपराधके रूपमें 'अपमानलेख' की चर्चा की है। अपकीर्त्ति फैलाना राज्यके विरुद्ध किया जानेवाला अपराध भी माना जाता है और भारतीय दण्डनीति संहिताके अनुसार उसमें सजा दी जा सकती है। संहिताकी धारा ४९९ मे अपकीर्त्तिकी परिभाषा

दी गयी है। अपराधके संघटक प्राय वही हैं। उक्त धाराके अन्तर्गत किसी मृत व्यक्तिपर ऐसा अभ्यारोप लगाना जिसके लगाये जानेसे, यदि वह जीवित होता, तो उसकी ख्यातिको क्षति पहुँचती तथा जिसका उद्देश्य उसके परिवारके लोगों अथवा निकट सम्बन्धियोंकी भावनाओंपर आघात करना हो, दण्डनीय माना गया है। ऐसा अभ्यारोप भी दण्डनीय है, जो विकल्पके रूपमें लगाया गया हो या व्यंग्यपूर्वक प्रकट किया गया हो अथवा जो प्रत्यक्ष रूपसे या अप्रत्यक्ष रूपसे किसी व्यक्तिके नैतिक या बौद्धिक चरित्रको जाति-बिरादरीमें या नौकरीमें गिरा देता है, या उसकी साख कम कर देता है अथवा जो यह विश्वास करा देता है कि उस व्यक्तिका शरीर घृण्य हालतमें या सामान्यत लज्जाजनक स्थितिमें है। फिर भी भारतीय दण्डनीति संग्रहमें वह 'अपकीर्त्तिकर' नहीं माना जाता, यदि अभ्यारोप सच्चा हो, अथवा यदि वह सार्वजनिक कर्त्तव्योंका पालन करते समय किसी सार्वजनिक कार्यकर्त्ताके व्यवहारके बारेमें या किसी सार्वजनिक प्रश्नके सम्बन्धमें सद्भावनापूर्वक प्रकट की गयी रायके रूपमें हो। इसी तरह अदालतकी काररवाईकी स्थूलत· सच्ची रिपोर्ट प्रकाशित करना या किसी मामलेकी, जिसका फैसला हो चुका हो, अच्छाई-बुराईके सम्बन्धमें सद्भावपूर्वक अपनी राय प्रकट करना, या फिर किसी ऐसी कृतिके सम्बन्धमें सद्भावना-प्रेरित मत प्रकट करना, जिसे उसके कर्त्ताने जन-निर्णयके लिए प्रस्तुत किया हो, अपकीर्त्तिकर कार्य न माना जायगा। इसीके सदृश अपकीर्त्तिकर न माने जानेवाले अन्य कार्य ये हैं—किसी विधिक प्राधिकार-सम्पन्न व्यक्ति द्वारा अपने या किसी अन्य दूसरे व्यक्तिके हितोंकी रक्षाके निमित्त या सार्वजनिक हितके लिए दोषारोप करना, या एक व्यक्तिके दूसरेके विरुद्ध, स्वय उसके हितार्थ या जिसमें उसकी दिलचस्पी हो, उसके हितार्थ या लोकहितार्थ चेतावनी देनेके लिए अभ्यारोप करना।

भारतीय दण्डनीति संहिताकी धारा ५०० में अपकीर्त्ति-प्रसारणके लिए दण्ड देनेकी—दो वर्ष तककी सादी कैद या जुरमाना या दोनोंकी—

व्यवस्था है। यह उल्लेखनीय है कि जुरमानेकी रकमकी कोई सीमा नहीं बतायी गयी है।

न्यायालयका अवमान

समाचारपत्रके कार्यालयमें किये जानेवाले विभिन्न प्रकारके कार्योंके सिलसिलेमें दीवानी या फौजदारीके उन मामलोंके विवरण भी जो अदालतमें प्रस्तुत किये जानेवाले हैं या जिनपर विचार होना अभी जारी है—प्रकाशित किये जाते हैं। कभी-कभी समाचार-सम्पादक या सम्पादकीय लेखादि लिखनेवाले व्यक्ति मामलेकी सुनवाई शुरू होनेके पहले ही तथ्योंकी ब्यौरेवार चर्चा करते हैं। जिन प्रमाणोंके पेश किये जानेकी सम्भावना हो, उनकी कल्पना कभी-कभी पहलेसे कर ली जाती है और वे सनसनीखेज शीर्षकोंके साथ प्रकाशित कर दिये जाते हैं। कभी-कभी ऐसे सम्पादकीय लेख या टिप्पणियाँ लिख दी जाती हैं जो मामलेके एक पक्षका अनुचित रूपसे समर्थन करती हैं और एकाध बार न्यायाधीशों एवं न्यायालयोंकी न्यायशीलताके सम्बन्धमें सन्देह प्रकट किया जाता है और यहीं समाचारपत्रोंके लिए संकट उत्पन्न होनेकी सम्भावना रहती है।

'न्यायालयका अवमान' इस पदावलीकी व्याख्या करना बहुत कठिन है। फिर भी सामान्यतः 'अदालतकी अवज्ञा' में ऐसा व्यवहार आता है जिससे विधि अर्थात् कानूनके अधिकार अथवा प्रशासनके अनादर या तिरस्कारकी प्रवृत्ति उत्पन्न होनेकी सम्भावना हो अथवा जिससे वादी-प्रतिवादी या उनके गवाहोंके विचारों, धारणाओंमें हस्तक्षेप हो या उन-पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े। यदि कोई ऐसा काम किया जाय या ऐसा लेखादि प्रकाशित किया जाय जिससे किसी न्यायालयका अवमान होने या उसका प्राधिकार घट जानेकी सम्भावना हो, या न्यायकी साधारण काररवाईमें या न्यायालयकी विधिक कार्यपद्धतिमें बाधा पड़े या हस्तक्षेप हो तो इसे ही 'अवमान' या 'अवज्ञा' कहेंगे। अवमान दो प्रकारका होता है—(१) न्यायालयके सामने ही किया गया अवमान, तथा (२) अप्रत्यक्ष अवमान याने वह जो न्यायालयके बाहर किया जाय।

कोई रिपोर्टर यदि किसी मुकदमेकी सुनवाईके समय अदालतके कमरेके बाहर निकाल दिया जाय और वह छलपूर्वक फिर कमरेमें मामले पर विचार होते समय ही वापस आ जाय तो इससे अदालतके हुक्मकी अवज्ञा होती है। न्यायालयके प्रतिषेधके बावजूद कोई रिपोर्टर किसी अभियुक्तका फोटो लेनेका प्रयत्न कर सकता है। जब किसी मामलेकी सुनवाई बन्द कमरेमें होता है, तब उसकी काररवाई प्रकाशित करना न्यायालयके आदेशोंका उल्लंघन करना ही हुआ। ये सब प्रत्यक्ष अवमानके उदाहरण हुए।

किन्तु समाचारपत्रोंमें काम करनेवाले व्यक्ति होनेके कारण हमारे लिए विचारणीय विषय है रिपोर्ट, काररवाई, टीका-टिप्पणी छापना। इस तरहका अवमान अप्रत्यक्ष या न्यायालयके बाहरका अवमान कहलाता है।

न्यायालयके बाहर किये जानेवाले अवमानके सामान्यतः तीन स्वरूप हो सकते हैं—

(क) अदालतकी काररवाईकी झूठी और बहुत ही अयथार्थ रिपोर्ट,

(ख) ऐसे लेख, विवरण आदि जिनसे न्यायके सम्यग् संचालनमें बाधा पड़नेकी सम्भावना हो,

(ग) ऐसी रचना जिससे न्यायालय, न्यायाधीशों, वकील, वादी-प्रतिवादी या गवाहोंकी बदनामी होती हो।

विचाराधीन मामले—जब कोई मामला विचाराधीन हो, तब उसकी गलत रिपोर्ट छापने या उसपर टीका-टिप्पणी करनेसे न्यायालयोंको अच्छा न लगेगा, क्योंकि इनके सम्बन्धमें और नहीं तो कमसे कम इतना तो मान ही लिया जायगा कि अभियुक्तके मामलेपर निष्पक्षरूपसे विचार होते समय इनका प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। सबसे अच्छा नियम यही है कि जबतक मामला विचाराधीन हो, कोई टीका-टिप्पणी न की जाय और काररवाईका विवरण देते समय समुचित सावधानी बरती जाय। अनुसन्धानकर्त्ता, वकील, या गवाहका कार्य ग्रहण करनेकी या

स्वयं न्यायाधीश बननेकी, इस प्रकार जबरन न्यायालयका कार्यभार सँभालनेकी—चेष्टा न करो। विचाराधीन मामलेके सम्बन्धमें न्यायालयके बाहरकी कोई राय प्रकट न करनी चाहिये। समाचारपत्रका ऐसा अनुच्छेद (पैरा) अवमान समझा जायगा, जिसका प्रभाव वादपर टीका करने जैसा हो और जो उसके विचाराधीन रहते हुए लिखा एवं प्रकाशित किया गया हो, तथा जिससे किसी पक्षपर प्रतिकूल प्रभाव पड़े या पड़नेकी सम्भावना हो। इस बातका ज्ञान होना ही चाहिये कि मामला अभी विचाराधीन है।

हर मामलेमें प्रश्न यह नहीं रहता कि जो चीज प्रकाशित की गयी है उससे न्यायव्यवस्थामें सचमुच हस्तक्षेप होता है या नहीं, वरन् यह कि उसकी प्रवृत्ति या सम्भावना ऐसी है या नहीं। यदि आप अभिवचन (प्लीडींग), याचिकाएँ अथवा साक्ष्य प्रकाशित करते हैं, तो आपको ध्यान रखना चाहिये कि ये चीजें दोनों पक्षोंकी छापी जायँ, अन्यथा आपका कार्य 'न्यायालयका अवमान' हो जायगा।

'अमृतबाजार पत्रिका' में व्यापारियोंकी एक संस्था द्वारा अन्य लोगोंके अतिरिक्त एक तहसीलदारके भी विरुद्ध चलाया गया एक मामला छपा था। वादीने वादपत्रमें जो बातें लिखी थीं, पत्रिका' में वे वास्तविक तथ्यके रूपमें छाप दी गयीं, 'वादमें कथित तथ्य' के रूपमें नहीं। इसपर उच्च न्यायालयने यह टीका की कि समाचारपत्रोंपर इस बातका ध्यान रखनेकी विशेष जिम्मेदारी रहती है कि विचाराधीन मामलोंके सम्बन्धमें, चाहे वे दीवानी हों या फौजदारीके, ऐसी कोई भी बात उनके स्तम्भोंमें न छपने पाये जिससे किसी न्यायिक अधिकारी, न्याय सभ्य, या सम्भावित गवाहके मनपर, जिनका इससे सम्बन्ध हो या हो सकता हो, प्रतिकूल प्रभाव पड़ने या पूर्वधारणा बन जानेकी आशंका हो।

जो वृत्तान्त या विवरण छापे जायँ वे पक्षपातपूर्ण न होने चाहिये और न उनमें ऐसी काट-छाँट हो कि अर्थका अनर्थ हो जाय। अपमान

लेखके सम्बन्धमें विचार करते समय हम इन सब बातोंकी चर्चा कर चुके हैं।

कोई भी न्यायाधीश आलोचनासे मुक्त नहीं है किन्तु आलोचना बुद्धिसंगत तर्क या सौहार्द्रपूर्ण विरोधके रूपमें होनी चाहिये। वह सच्चे विश्वासके साथ की जानी चाहिये और उसमें नीयतपर आक्षेप न होना चाहिये। किसी न्यायिक अधिकारीकी ऐसी आलोचना, जिसका रूप सरकारने किये जानेवाले अभ्यावेदन जैसा हो और जो ऐसे शब्दोंमें की गयी हो कि सीमाका अतिक्रमण न होने पाया हो, न्यायालयका अवमान न मानी जायगी। किसी न्यायिक कार्यकी ऐसी आलोचना करना जिससे न्याय-प्रशासनमें बाधा पड़े, न्यायालयका अवमान है किन्तु न्यायालयके विशुद्ध प्रशासी कार्यकी प्रतिकूल आलोचना करना अवमान नहीं है।

समाचारपत्र उस समय न्यायालयके अवमानके दोषी हो सकते हैं जब वे किसी मामलेकी रिपोर्ट छापते समय अपनी राय भी प्रकट करें और न्यायाधीशों तथा न्यायालयकी आलोचना करते हुए उचित सीमाका उल्लंघन करें जिससे न्याय-व्यवस्थामें बाधा पड़े। उसे न्यायालयकी बदनामीका रूप भी दिया जा सकता है जिसमें न्यायाधीशपर भ्रष्टाचार, अयोग्यता तथा बेईमानीका आरोप लगाया गया हो, चाहे ऐसे कथन उस समय किये जायँ जब मामलेपर विचार अभी शुरू भी न हुआ हो, या जब वह विचाराधीन हो, अथवा जब मामलेका फैसला हो चुका हो।

कोई भी आदमी अवमानका दोषी हो सकता है, भले ही उसका इरादा अवमान करनेका न रहा हो। प्रश्न यह नहीं है कि छापनेका उद्देश्य क्या था वरन् यह है कि उसका प्रभाव क्या पड़ा। प्रयुक्त किये गये शब्दोंके स्वाभाविक अर्थपर विचार करने तथा सामान्य पाठकपर उनका क्या असर पड़ता है, इसका खयाल करनेसे ही इरादेके सम्बन्धमें निष्कर्ष निकाला जा सकता है। फिर यदि अवमान करनेका इरादा न रहा हो तो यह बात अपराधकी गुरुता घटानेमें सहायक मानी जा सकती है।

किसी न्यायिक अन्वीक्षाके सम्बन्धमें कुछ लिखनेका प्रयत्न करते समय कारवाईके चार प्रक्रमोंका ख्याल रखना चाहिये, जो ये हैं—

(क) न्यायिक अन्वीक्षा (विचार) के पूर्व,

(ख) न्यायिक अन्वीक्षाके जारी रहते समय,

(ग) निर्णय हो जानेके बाद,

(घ) जब पुनर्न्याय-प्रार्थनापर विचार करना बाकी हो।

कोई मामला किसी समय किस अवस्थामें है, यह अच्छी तरह जान लेना समाचारपत्रके कर्मचारियोंकी योग्यतापर छोड़ दिया गया है और इसमें सन्देह नहीं कि इसका ठीक ठीक पता लगा लेना उन लोगोंका कर्तव्य ही है। यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि न्यायालयके सामने होनेवाली कारवाईका सच्चा सच्चा वृत्तान्त भी छापनेके समाचारपत्रके अधिकारके साथ यह शर्त लगी हुई है कि उसे प्रकाशित करनेसे न्यायालयमें मामलेपर निष्पक्ष विचार होनेमें कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़नेकी आशंका न हो। जिस मामलेपर अभी विचार हो रहा हो उसमें यदि कोई अर्जी दाखिल की जाय तो उसे प्रकाशित करना उस हालतमें अवमान समझा जायगा, जब वह स्पष्ट रूपसे इस इरादेसे प्रकाशित की गयी हो कि विचारपर उसका प्रतिकूल या अनुकूल प्रभाव पड़े।

जब अदालतकी कारवाई हो रही हो, तब पत्रोंके लिए फोटो लेनेवालोंको फोटो नहीं लेना चाहिये, जबतक कि इसके लिए विशेष रूपसे अनुमति न दे दी गयी हो। न्यायाधीश कभी कभी चित्र लेनेकी अनुमति दे देते हैं जैसा कि महात्मा गान्धीकी हत्याके समय किया गया था किन्तु सामान्यतः ऐसी प्रार्थना अस्वीकृत कर दी जाती है, विशेषकर फौजदारी मुकदमोंमें जहाँ कि छायाचित्रोंके प्रकाशित हो जानेसे गवाहों द्वारा अभियुक्तकी पहचान होनेके कार्यपर अनुचित प्रभाव पड़ सकता है।

व्यंग्यचित्रों द्वारा अवमान—व्यंग्यचित्रों द्वारा ऐसी आलोचना या उपहास करना जिसका लक्ष्य न्यायाधीश, वादी-प्रतिवादी या मामलेके विचारसे प्रत्यक्षतः सम्बद्ध अन्य व्यक्ति हो तथा जिसकी प्रवृत्ति

न्याय-प्रशासनमें बाधा पहुँचाना हो, न्यायालयकी अवमाननामें आ जाता है।

न्यायिक विचारके बाद—समाचारपत्रोंको न्यायोचित टीका टिप्पणी करनेका विशेषाधिकार प्राप्त है किन्तु यह आलोचना निष्पक्ष और न्यायोचित तभी हो सकती है जब वह वास्तविक घटनाओंपर आधारित हो। समाचारपत्र कानून सम्बन्धी तथ्योंकी समीक्षा कर अपनी राय प्रकट कर सकते हैं, भले ही वह न्यायालय द्वारा किये गये निर्णयके प्रतिकूल हो। किन्तु न्यायाधीशोंपर व्यक्तिगत आक्षेप करना और उनपर अयोग्यता, भ्रष्टाचार तथा पक्षपातका और न्यायिक अशुचिता, राजनीतिक झुकाव तथा अनुचित उद्देश्योंका या "अन्य बातोंके लिहाजका" अभ्यारोप करना न्यायालयके अवमानमें आ जाता है। मामलेका विचार समाप्त हो जानेके बाद अखबारवाले जिस तरहकी अवमानना प्राय: करते हैं, वह है न्यायालयके सम्बन्धमें या न्यायिक निर्णायकोंकी हैसियतसे काम करनेवाले न्यायाधीशोंके सम्बन्धमें अनादरपूर्वक कुछ कहकर या लिखकर न्यायालयकी बदनामी करना और इस प्रकार उसके अभिनिर्णयमें विश्वास या निष्ठा न रहने देना।

सन् १९५२ के न्यायालयके अवमान सम्बन्धी अधिनियम ३२ में कहा गया है—"यदि तत्काल प्रवर्त्तमान किसी विधिमें स्पष्ट रूपसे अन्यथा उपबन्धित हो, तो उसे छोडकर न्यायालयके अवमानके लिए छ महीनेतककी सादी कैदका या २०००) रुपयेतकके जुरमानेका, या एक साथ दोनोंका दण्ड दिया जा सकता है,

"उपबन्ध यह है कि यदि अपराधके लिए क्षमा-याचना कर ली जाय और न्यायालयका उससे सन्तोष हो जाय, तो अभियुक्त उन्मुक्त किया जा सकता है या उसके दण्डका परिहार किया जा सकता है।"

इस सिलसिलेमें भारतीय दण्ड संहिताकी धारा २२८ का भी उल्लेख किया जा सकता है जिसमें उपबन्धित है कि न्यायिक विचारके आसनपर अधिष्ठित किसी सार्वजनिक अधिकारीके काममें बाधा डालने या

जानबूझकर उसे अपमानित करनेपर छ' मासकी सादी कैद या १०००)
तक जुरमानेकी, या एक साथ दोनोंकी सजा दी जा सकती है।

क्षमा-याचना—पूर्ण और विशिष्ट ढगकी क्षमा-याचनासे अपमान-की कसक दूर हो जाती है। क्षमायाचना न करनेपर न्यायालयोंका कठोर रुख अख्तियार करना निश्चित है। क्षमा माँगनेसे इनकार करनेपर अपराधकी गुरुता बढ जाती है जिसके लिए निरोधक दण्ड देना आवश्यक समझा जाता है।

एकान्तताका कानून

एकान्तताके अधिकारका प्रश्न, जहाँतक समाचारपत्रोंसे उसका सम्बन्ध है, आजके समसामयिक जीवनकी एक नयी घटना है। उसके विधिक निर्वचनमें कोई अपमानजनक बात नहीं आती। एकान्तताका अधिकार मनुष्यके इस दावेपर आधारित है कि यदि वह चाहे तो दुनियामें उसे इस तरह रहनेका अधिकार है कि कहीं भी उसका चित्र प्रकाशित न किया जाय, उसके काम-रोजगारकी कोई चर्चा न की जाय, उसके सफल परीक्षण दूसरोंके लाभार्थ न लिखे जायँ या उसकी सनकोंपर हस्त-पत्रकों, परिपत्रों, सूचीपत्रों, सामयिक पत्रों या दैनिक पत्रोंमें कोई टीका-टिप्पणी न की जाय।

जनताकी ओरसे अक्सर इस बातकी शिकायत की जाती है कि पत्र-कार लोग नागरिकोंकी एकान्ततापर आघात करते रहते हैं। 'ब्रिटिश समाचारपत्रोंकी रिपोर्ट' (रिपोर्ट ऑन दि ब्रिटिश प्रेस) में यह सुझाव दिया गया था कि इस सम्बन्धमें बहुत कुछ वाञ्छनीय सुधार किया जाना चाहिये, विशेषकर पारिवारिक एकान्तता भग करनेकी प्रवृत्तिके सम्बन्धमें।

"रात बीतनेपर भी रिपोर्टर लोग टेलीफोन करनेसे बाज नहीं आते और मिलनेकी अनुमतिके लिए या फोटो देनेके लिए लोगोंको परेशान किया करते हैं, वे उनके उद्यानोंमें या मैदानोंमें घुस जाते हैं और उनसे कोई समाचार झटक लेनेके लिए हर तरहका दबाव डाला जाता है और

यह हमला उस व्यक्तिपर भी किया जाता है जो दैवयोगसे किसी सीधी-सादी घटनामें अन्तर्ग्रस्त हो बशर्ते कि उसमें हो जहाँ कोई सुझाव, कोई सनसनी या कोई लोकनिन्दाकी बात हो।"

एकान्तताका कानून व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके कानूनसे या अपने निजी विचारों, योजनाओं या रचनाओंकी रक्षाके कृति-स्वाम्य सम्बन्धी कानूनमें बहुत कुछ मिलता-जुलता है।

वह व्यक्तिगत अधिकार है जिसे (सीमित रूपसे) न्यायिक मान्यता भी दी गयी है। मनुष्यको यह अधिकार दिया गया है कि उसके व्यक्तित्वपर, शरीरादिपर, कोई आक्रमण न होने पावे। मनुष्यका हमेशासे यह अधिकार रहा है कि जो कुछ उसका अपना है, उसके एकान्तिक उपयोग और उपभोगमें उसकी रक्षा की जाय। लन्दनके पत्र 'डेली मिरर' के फोटोग्राफर श्री लिओका उदाहरण हमारे सामने है। कैप्टन सेसिलके विवाहोत्सवके समय जब उन्होंने वरके रूपमें उनका फोटो लेनेकी चेष्टा की, तब श्री सेसिलको झपटकर उनसे हाथापाई करनी पड़ी।

ब्रिटिश पत्रोंकी जिस रिपोर्टकी चर्चा ऊपर की गयी है, उसमें आशा व्यक्त की गयी है कि समाचारपत्र स्वयं ही जनताकी शिकायत दूर करनेके उपाय करेंगे। फिर भी यदि नागरिकजन इसे सिद्धान्ततः ठीक समझते हों तो विधानमण्डलको केवल इतना ही करना है कि यथा समय इस आशयका एक कानून पारित करा दे।

इस समयकी विधिक स्थिति यह है कि एकान्ततापर आक्रमणकी गणना मानहानिमें की जा सकती है जिससे वादीको हर जाना पानेका हक हासिल हो जाता है या फिर आक्रमणकारीपर दीवानी या फौजदारी अदालतमें अनधिकार-प्रवेशका मामला चलाया जा सकता है।

अश्लील प्रकाशन

जब स्वेच्छाचारिता शुरू हो जाती है, तब उस सीमातक समाचारपत्रोंकी स्वतन्त्रता भी समाप्त हो जाती है, क्योंकि स्वतन्त्रताका अर्थ स्वेच्छाचारिता नहीं। भारतीय दण्ड संहिताकी धाराएँ २९३ तथा २९४ अश्लील

प्रकाशनोंपर लागू होती है। यदि कोई प्रकाशन सार्वजनिक सदाचारके लिए हानिकर हो और जिन लोगोंके हाथमें वह पड़े उनके मनको नीति-भ्रष्ट एवं पतित बनानेके लिए उसका दूषित प्रभाव पड़नेकी आशंका हो तो वह अश्लील प्रकाशन समझा जायगा जिसे कानून दबा देगा। अश्लील विज्ञापनका प्रकाशित किया जाना दण्डनीय है। धार्मिक पुस्तकोंके अवतरण, जो अन्यथा दण्डनीय न हों उस हालतमें दण्डनीय माने जा सकते हैं जब वे पृथक् रूपसे, मूल प्रसंगसे हटाकर, छापे जायँ। अपराधपर विचार करते समय लेखकके उद्देश्यका प्रश्न उठाना असंगत होगा। प्रकाशकके सम्बन्धमें यह बात मान ही ली जायगी कि प्रकाशनके बाद जो स्वाभाविक परिणाम और प्रभाव उत्पन्न होता है, उन्हें उत्पन्न करनेका सचमुच उसका इरादा रहा होगा।

फिर भी ऐसे गम्भीर, विचार पूर्ण प्रकाशन अश्लील नहीं माने गये हैं जिनका अभिप्राय विवाहित युवक-युवतियोंको इस विषयमें सलाह देना है कि जीवनके यौनवासना सम्बन्धी पहलूका नियमन किस तरह किया जाय। (देखिये सम्राट् बनाम हरनामदास, १९४७, लाहौर, ३८३)। चित्रकला या शिल्पकलामें नग्नता मात्र ही अश्लीलता नहीं है। क्या अश्लील है, क्या नहीं, इसका निश्चय करना सामान्य बुद्धि तथा सामाजिक जिम्मेदारीकी समझकी बात है। इस धाराके अन्तर्गत कठोर या सादी, दोनों तरहकी कैदकी सजा जिसकी मीयाद तीन महीनेतक हो, दी जा सकती है या जुरमाना हो सकता है या दोनों सजाएँ एक साथ दी जा सकती हैं।

अन्य प्रकाशन

जब्ती—दण्डविधि संहिताकी धाराएँ ९९ अ से ९९ ग तक प्रेस ला अपील एण्ड अमेण्डमेंट एक्ट, १९२२ [१४ (१४), सन् १९२२] के द्वारा जोड़ी गयी थीं। ये धाराएँ इण्डियन प्रेस ऐक्ट [१९१० का १ (१)], जो अब निरसित कर दिया गया है, की १२, १७, १८, १९, २०, २१ तथा २२, इन धाराओंपर आधारित हैं।

इन नयी धाराओंमें ऐसे प्रकाशनोंकी जब्तीका उपबन्ध रखा गया है जिनका लक्ष्य विभिन्न वर्गोंमें शत्रुता या घृणा फैलाना हो। इन प्रकाशनोंके कारण भारतीय दण्ड-संहिताकी धारा १२४ अ और १५३ अ या २९५ अ के अनुसार प्रकाशकको दण्ड दिया जा सकता है। फिर भी पीड़ित पक्षको यह अधिकार दिया गया है कि वह इस बिनापर उक्त आदेश रद्द करनेके लिए उच्च न्यायालयसे अपील करे कि समाचार-पत्रके अंकमें इस तरहकी कोई सामग्री प्रकाशित नहीं हुई है। ऐसा आवेदनपत्र प्राप्त होने पर उच्च न्यायालय तीन न्यायाधीशोंका एक विशेष न्यायपीठ बना देगा और यदि उसे सन्तोष हो जाय तो वह जब्तीका आदेश रद्द कर दे सकता है। ये उपबन्ध समाचारपत्रोंके लिए बड़े कामके साबित हुए हैं और पिछले कई वर्षोंमें अधिकारियों द्वारा की गयी कई गलतियाँ न्यायिक निर्णयों द्वारा ठीक कर दी गयी हैं।

किशोर-वयस्क अपराधी—कई राज्योंमें ऐसे अधिनियम बना दिये गये हैं जिनके अनुसार ऐसे किसी बालकका नाम, पता या अन्य ब्यौरा प्रकाशित करनेका निषेध कर दिया गया है जो किसी अपराधमें अन्तर्ग्रस्त हुआ हो और जिसपर उन अधिनियमोंके अन्तर्गत मामला चल रहा हो।

भाग्यदा (लॉटरी)—विज्ञापनके रूपमें या अन्य तरहसे किसी भाग्यदा (लॉटरी) की बात प्रकाशित करना, केवल उसको छोड़कर जिसके लिए पहलेसे ही सरकारकी अनुमति ले ली गयी हो, भारतीय दण्ड-संहिताकी धारा २९४ अ के अनुसार दण्डनीय माना गया है। भाग्यदा सम्बन्धी ऐसे किसी प्रस्तावके प्रकाशित करने पर एक हजार रुपयेतकके जुरमानेकी सजा दी जा सकती है।

पञ्जीयन—कोई भी ऐसा आदमी पुस्तकें या समाचारपत्र छापनेके लिए अपने अधिकारमें कोई छापाखाना नहीं रख सकता, जिसने किसी दण्डाधिकारीके सामने, जिसके स्थानीय अधिकारक्षेत्रमें उक्त छापा-

खाना स्थापित किया गया हो, इसके सम्बन्धमें घोषणा न कर दी हो और घोषणापत्रपर हस्ताक्षर न कर दिये हों।

कोई भी समाचारपत्र तबतक न छापा जा सकता है और न प्रकाशित किया जा सकता है, जबतक उसका मुद्रक या प्रकाशक सम्बद्ध दण्डाधिकारी (मजिस्ट्रेट कमॅण्ड) के सामने इस आशयकी घोषणा नहीं कर देता—

"मैं, क, ख, ग घोषित करता हूँ कि मैं नामके समाचारपत्रका मुद्रक (या प्रकाशक, या मुद्रक तथा प्रकाशक) और मुद्रणालयका मुद्रक (या प्रकाशक या मुद्रक तथा प्रकाशक) हूँ।"

मुद्रणरेखा—समाचारपत्रोंके प्राय अन्तिम (या अन्य) पृष्ठ पर, सबसे नीचे, छोटे टाइपमें मुद्रक तथा छापेखानेका नाम छपा रहता है। इसे ही 'मुद्रण-रेखा' कहते हैं। 'मुद्रण-रेखा' उस सन्देहकी सूचक है जो बहुत प्रारम्भकालसे ही छपी हुई सामग्री आदिके सम्बन्धमें किया जाता रहा है। यह इस आशयसे दी जाती है कि मुद्रण सबन्धी अपराध होने पर जो व्यक्ति इसके लिए जिम्मेदार हो उसके खिलाफ अधिकारी काररवाई कर सकें। मुद्रण-रेखा न देनेकी सजा एक हजार रुपयेतक जुर्माना या छ महीनेसे अनधिकको सादी कैद या दोनों है (धारा १२)।

प्रेस (आपत्तिजनक सामग्री) अधिनियम, १९५१—इस अधिनियमने १९३१ के पुराने (आकस्मिक आवश्यकताके अधिकार-सम्बन्धी) प्रेस अधिनियमको निरसित कर दिया है। ससद्में जब यह विधेयकके रूपमें पुर स्थापित किया गया, तब यह कहकर चारों ओरसे इसकी तीव्र आलोचना की गयी कि यह एक प्रतिगामी प्रस्ताव है जिससे विचार प्रकट करनेकी उस स्वतन्त्रतापर आघात होगा जिसकी प्रत्याभूति (गॉरटी) सविधानमें दी गयी है। सरकारने अपना यह मत प्रकट किया कि इसका लक्ष्य हिंसा या विध्वस कार्यके प्रोत्साहनको तथा अन्य गम्भीर अपराधोंको रोकना और पत्रोंमें जघन्यतापूर्ण सामग्री न छपने देना है।

इस अधिनियमने बहुत दिनोंसे चली आनेवाली, प्रकाशित होनेके पहले ही समाचारोंके दोषवेचन (सेंसरशिप) की प्रथा समाप्त कर दी। पूर्वानुमानके आधारपर ही कोई कारखाई न की जायगी वरन् उस समय की जायगी जब साबित हो जायगा कि अधिनियमकी धारा ३ में परिभाषित आपत्तिजनक सामग्रीके प्रकाशन द्वारा समाचारपत्रोंकी स्वतन्त्रताका दुरुपयोग किया गया है। दौरा आदलतमें मामलेपर पूर्ण रूपसे विचार हो लेनेके बाद ही ऐसे प्रकाशनके कारण जमानत (प्रतिभूति, सिक्यूरिटी) माँगी जा सकती है। प्रतिवादी यदि चाहे तो विशेष न्याय सभ्योंकी माँग कर सकता है जिनमे ऐसे लोग हो जिन्हे पत्रकारीका या सार्वजनिक कार्योंका विशेष अनुभव हो।

"आपत्तिजनक सामग्री" की व्याख्या ही इस अधिनियमके लागू होनेका मुख्य आधार है। "आपत्तिजनक सामग्री" का अभिप्राय ऐसे शब्दों संकेतो या दृश्य कारखाईसे है—

(१) जिनसे किसी राज्यमें कानून द्वारा स्थापित सरकारको या किसी क्षेत्रमे उनके अधिकारको उलटने या उसकी जड काटनेके उद्देश्यसे किसी व्यक्तिको हिंसा या अन्तर्ध्वंसके लिए प्रेरणा या प्रोत्साहन मिलनेकी सम्भावना हो, या

(२) जिनसे किसी व्यक्तिको हिंसा, अन्तर्ध्वंस या किसी हिंसात्मक अपराधके लिए प्रेरणा या प्रोत्साहन मिलनेकी सम्भावना हो, या

(३) जिनसे किसी व्यक्तिको अन्न या अन्य आवश्यक पदार्थोंके वितरणमें या (पानी, बिजली आदि सम्बन्धी) परमावश्यक सेवा-कार्योंमे बाधा डालनेके लिए प्रेरणा या प्रोत्साहन मिलना सम्भावित हो, या

(४) जो केन्द्रीय सरकारके सशस्त्र बलोंके या आरक्षक बलोंके किसी सदस्यको निष्ठा या कर्त्तव्यपालनसे बहकानेमें सहायक हो या जिनसे ऐसे (सशस्त्र या आरक्षक) बलोंमें रंगरूटोंकी भरतीके कार्यमें अथवा उनके अनुशासनमें बाधा पडनेकी आशंका हो, या

(५) जिनसे भारतके निवासियोंके विभिन्न समूहोंमें शत्रुता अथवा घृणाका भाव बढनेकी सम्भावना हो, या

(६) जो बहुत ही अशिष्ट, जघन्यतापूर्ण या अश्लील हो या जिनका लक्ष्य धमकी द्वारा पैसा एंठना हो।

स्पष्टीकरण १—ऐसी टीका-टिप्पणी जिसमें किसी कानूनकी या सरकारी नीति या प्रशासकीय कार्यकी प्रतिनिन्दा या आलोचना इस उद्देश्यसे की गयी हो कि उसमें परिवर्त्तन कर दिया जाय या विधिक उपायोंसे क्लेशमुक्ति मिल जाय और ऐसे शब्द भी जिनमें उन बातोंकी ओर सकेत किया गया हो जो भारतवासियोंके विभिन्न समूहोंमें शत्रुता या घृणाका भाव उत्पन्न कर रहे हों या उत्पन्न करनेकी ओर उन्मुख हों,—प्रयोजन यह कि वे निकाल दिये जायँ—इस धाराका जो अर्थ लिया गया है उसके अन्तर्गत आपत्तिजनक न समझे जायँगे।

स्पष्टीकरण २—इस अधिनियमके अनुसार कोई मैटर आपत्तिजनक है या नहीं, इसका निर्णय करते समय शब्दों, सकेतों या इतर कारखाईके परिणामका ही विचार किया जायगा, छापेखानेके चालक या समाचार-पत्रके प्रकाशक, जिसका मामला हो, के उद्देश्यका नहीं।

स्पष्टीकरण ३—'अन्तर्ध्वंस" से अभिप्राय है उस क्षतिसे जो कार-खानोंके यन्त्रसमूहको, मालको, या पुलों, सडकों तथा ऐसी ही अन्य चीजोंको इस इरादेसे पहुँचायी जाय जिससे यन्त्रावली, सचारसाधनों आदिका नाश हो जाय या उनकी उपयोगितापर हानिकारक प्रभाव पडे।

जमानत माँगना—राज्य-सरकारकी ओरसे कोई सक्षम अधिकारी दौरा जजके पास इस आशयका लिखित परिवादपत्र (कम्प्लेण्ट) भेज सकता है कि अमुक छापाखाना ऐसा समाचारपत्र छापने और प्रकाशित करनेके काममें लाया जाता है जिसमें आपत्तिजनक सामग्री रहती है। दौराजज नियमित मामलेकी तरह इसकी जाँच करावेगा और यदि उसे इस बातकी तसल्ली हो जाय कि जमानत माँगनेके लिए पर्याप्त कारण विद्यमान हैं तो वह प्रेस चलानेवालेको जमानत जमा करनेका आदेश

दे सकता है। किन्तु दौराजज चाहे तो केवल चेतावनी भी दे सकता है। इसी तरह यदि किसी सक्षम अधिकारी द्वारा लिखकर उससे फरियाद की जाय तो दौराजज—उसकी तसल्ली हो जाय तो—उस समाचारपत्रके प्रकाशकसे जिसमें आपत्तिजनक सामग्री निकली हो, प्रतिभूति (जमानत) माँग सकता है।

यदि दौराजजके पास नयी फरियाद की जाय और यह साबित हो जाय कि किसी छापाखाने या समाचारपत्रने, जो पहले जमानत जमा कर चुका है, फिरसे वही अपराध किया है तो दौराजज उक्त जमानतके जब्त कर लिये जानेकी घोषणा कर दे सकता है और नयी जमानत जमा करनेका आदेश दे सकता है। जो जमानत माँगी जायगी उसकी कोई उच्च सीमा, निर्धारित नहीं है।

निर्धारित समयके भीतर यदि जमानतकी रकम जमा नहीं कर दी गयी तो प्रेसके चालक या प्रकाशक द्वारा, जो भी हो, दाखिल किया गया घोषणापत्र रद्द कर दिया जायगा और जबतक जमानतकी रकम जमा न कर दी जायगी, तबतक नया घोषणापत्र स्वीकार न किया जायगा।

जब्ती—भारतके महाधिवक्ता (एडवोकेट जनरल) या महान्यायवादी (एटर्नी जनरल) का प्रमाणपत्र प्राप्त होनेपर ऐसे प्रकाशन जिनमें आपत्तिजनक सामग्री प्रकाशित हुई हो, सरकार द्वारा जब्त कर लिये जायँगे।

इस अधिनियमके अधीन अप्राधिकृत समाचारपत्रक (न्यूजशीट्स) या समाचारपत्र अभिगृहीत कर लिये जायँगे और नष्ट कर दिये जायँगे, जिन छापाखानोंके सम्बन्धमें घोषणापत्र दाखिल न किये गये हों वे भी अभिगृहीत कर जब्त कर लिये जायँगे और बाहरसे आये हुए आपत्तिजनक सामग्रीवाले सवेष्टन (पैकेजेज) रोक रखे जायँगे। जमानत जमा किये बगैर छापाखाना चलाने या समाचारपत्र प्रकाशित करने पर दो हजार रुपये तकके जुरमाने या छः महीने तककी कारावासकी सजा या दोनों एक साथ दी जा सकेगी।

कृतिस्वाम्य

कृतिस्वाम्यका अर्थ है किसी ग्रन्थ, रचना आदिको प्रकाशित करने, निकालने, या उसके सम्पूर्ण या प्रधान भागको फिरसे निकालनेका, किसी तात्त्विक रूपमे एकमात्र अधिकार और यदि वह ग्रन्थादि प्रकाशित न हुआ हो तो उसे या उसके महत्त्वपूर्ण अशको प्रकाशित करनेका अधिकार—इसका कोई अनुवाद प्रकाशित करनेका या इस तरहका काम करनेके लिए दूसरोंको प्राधिकार देनेका अधिकार भी इसमे शामिल है।

"मौलिक" काम या रचनामे ही कृतिस्वाम्य निहित रहता है। इसका यह अर्थ नहीं कि रचना मौलिक या उद्भावित विचारकी अभिव्यक्ति होनी चाहिये। कृतिस्वाम्य सम्बन्धी अधिनियमका विचारोकी मौलिकतासे कोई ताल्लुक नहीं, वरन् छपी हुई या लिखी हुई सामग्रीके रूपमें उनकी अभिव्यक्तिसे ही उसका सम्बन्ध है। वाछित मौलिकताका सम्बन्ध विचारकी अभिव्यक्तिसे है और इसकी नकल (अर्थात् अभिव्यक्त करनेके ढगकी नकल) अन्य किसीकी रचनामे न होनी चाहिये, भले ही वह बिलकुल मौलिक या नये रूपमे न हो।

लेखकको अधिकार है कि वह ज्ञानके उस भण्डारसे सहायता ले जो उसके तथा अन्य लोगोके लिए सामान्य रूपसे खुला हो। जो रचनाएँ मौजूद है, उनसे वह सहायता ले सकता है और उनमे अपनी ओरसे वृद्धि या सुधार कर सकता है, फिर भी कृतिस्वाम्य भग करनेका आरोप उसपर तबतक नहीं किया जा सकता जबतक कि वह स्वय उसके सम्बन्धमें ईमानदारीसे परिश्रम करता है और अपनी विवेक-बुद्धि तथा कुशलताका प्रयोग करता है। कृतिस्वाम्य सम्बन्धी कानूनमे केवल इस बातकी मनाही की गयी है कि कोई आदमी किसी दूसरेके परिश्रम, निर्णायक बुद्धि अथवा कुशलताका प्रतिफल स्वय न हडप ले। किसी व्यक्तिको इस बातकी अनुमति नहीं दी गयी है कि वह दूसरेकी मेहनतका फल, अर्थात् उसकी सम्पत्तिका विनियोजन करे।

कृतिस्वाम्यका उल्लंघन—जिस व्यक्तिको कृतिस्वाम्य प्राप्त है,

उसकी स्वीकृतिके विना यदि कोई आदमी ऐसा काम करता है जिसे करनेका एकमात्र अधिकार कृतिस्वाम्य सम्बन्धी अधिनियमके अनुसार कृतिस्वाम्यके अधिकारीको ही है, तो हम कहते है कि इस व्यक्तिने कृति-स्वाम्यका उल्लघन किया है। उल्लघनके कई रूप हो सकते है। किसी रचनाकी शब्दश नकल की जा सकती है या उसके एक हिस्सेकी, या फिर नकल करनेका काम बडी चालाकीसे किया जा सकता है।

समाचारपत्रोंको प्राप्त विशेषाधिकार—समाचारपत्रोंको ये विशेषाधिकार प्राप्त है—

(क) कृतिस्वाम्य सम्बन्धी रचनाका समाचारपत्रमे प्रकाशनार्थ तैयार किया गया साराश रक्षित है (अर्थात् उसपर इसके कारण मुक-दमा न चल सकेगा। [धारा २ (१)]

(ख) सार्वजनिक रूपसे दिये गये व्याख्यानकी रिपोर्ट प्रकाशित करनेका अधिकार समाचारपत्रको है, जबतक कि किसी प्रमुख स्थानमे सूचना टॉगकर या लगाकर इसे प्रकाशित करनेकी मनाही न कर दी गयी हो।

(ग) राजनीतिक भाषण विना किसीकी अनुमति या स्वीकृतिके प्रकाशित किये जा सकते है (कृतिस्वाम्यकी दृष्टिसे)।

(घ) टीका-टिप्पणी करने या साहित्य गुणावधारणके लिए उप-युक्त लेखांशकी नकल करना अनुज्ञेय (परमिसिब्ल) है।

चाकू, कैंची आदिसे काटकर और लेईसे चिपकाकर कोरी कोरी नकल करना, विना किसी तरहका परिश्रम किये, क्षम्य नही है और न वह पैसा कमानेकी दृष्टिसे किसी चीजका साराश या उपसक्षेप करना।

सिद्धान्तत समाचार, जहॉतक उसके समाचारत्वका सम्बन्ध है, कृतिस्वाम्यका विषय नहीं है किन्तु घटनाओंको आवर्त्तनी मात्र या समा-चारके दिये जाने मात्रको छोडकर इस सम्बन्धमे कृतिस्वाम्य तो रहता ही है कि किस तरहकी भाषामें समाचार दिया गया है या समाचारके अन्तर्गत जो सूचना या 'माहिती' है वह किस तरह व्यक्त की गयी है,

फिर यह सूचना या जानकारी चालू घटनाओंके सम्बन्धमें ही क्यों न हो। [देखिये वाल्टर बनाम स्टाइन कॉफ (१८९२), ४८९, इंटरनेशनल न्यूज सर्विस बनाम असोसियेटेड प्रेस, (१९१८) २४८ यू० एस० २१५] समाचारके स्रोतका उल्लेख कर देने मात्रसे इस तरहकी साहित्यिक चोरी न्यायोचित नहीं मानी जा सकती।

विभिन्न पत्रोंमे लेख या उद्धरण लेनेकी रस्म या प्रथा कानून द्वारा अस्वीकृत या मान्य नहीं है।

१५ पत्रकारीकी शिक्षा

भारतमें पत्रकारीकी शिक्षाके सम्बन्धमें अधिकाधिक दिलचस्पी ली जा रही है। कुछ ही वर्षोंकी अवधिके भीतर कितने ही नये पाठ्यक्रम शुरू किये गये या विभागोंकी स्थापना हुई और अन्य कितनोंकी ही योजनाएँ बनीं। पत्रकारोंकी सभाओंमें तथा शिक्षकीय क्षेत्रोंमें इस विषयकी चर्चा बराबर होती रहती है।

इसमें सन्देह नहीं कि इस अभिरुचिका सम्बन्ध इस बातसे भी है कि अब हम देख रहे हैं कि हमें सब तरहकी शिक्षाकी आवश्यकता है। अधिक प्रचलित विषयोंमें शिक्षा-प्राप्तिकी आकांक्षा अब पत्रकारीके अपेक्षाकृत नये क्षेत्रतक भी फैल गयी है।

किन्तु यह दिलचस्पी शायद बिलकुल नयी नहीं है, क्योंकि सन् १९४१ में ही भारतमें विश्वविद्यालयकी शिक्षामें पत्रकारीका विभाग भी रहा है। उच्च शिक्षाकी ओर तीन अन्य प्रस्वीकृत संस्थाओंमें भी १९४७ या १९५० से इसकी शिक्षाका प्रबन्ध रहा है।* और भी कुछ संस्थाओं-ने समय समयपर इसकी शिक्षा देनेका प्रयत्न किया था किन्तु उसमें सफलता न मिल सकी।

भारतमें पत्रकारीकी शिक्षा उस मंजिलसे आगे नहीं बढ़ सकी है जिसमें वह इस विषयमें अग्रणी समझे जानेवाले देशोंमें सन् १९१० के आस-पास थी। उस समय कुछ ही विश्वविद्यालयोंमें इसकी पढ़ाईकी व्यवस्था थी जिसके औचित्यादिके सम्बन्धमें विवाद चलता था और पत्रकार सामान्यतः स्वयं संशयमें थे। इस समय भारतमें भी वैसी ही

---

* इसमें 'हार्निमैन स्कूल ऑफ जर्नलिज्म' की गिनती नहीं की गयी है जो एक गैरसरकारी संस्था थी, तथा संवाद-दाताओंके कतिपय स्कूलोंको भी हमने छोड़ दिया है।

सन्देहकी प्रवृत्ति देख पड रही है किन्तु बहस प्रायः इस विषयको लेकर नहीं होती कि पत्रकारीके प्रशिक्षणका कोई मूल्य है या नहीं, वरन् मत-भेद इस सम्बन्धमें है कि उसका स्वरूप कैसा हो। ब्रिटिश पत्रकारोंसे प्रभावित होकर भारतीय पत्रकार भी इस दुविधामें पड़े हुए हैं कि ऐसी योजना जिसमें पत्रकारीकी शिक्षाका महाविद्यालयोंकी उच्च स्तरकी शिक्षाके साथ एकीकरण कर दिया गया हो, सफल हो सकेगी या नहीं। जब शिक्षा-पद्धतिकी बातें उन्हें समझा दी जाती हैं तब इसके विरोधी पैतरा बदलकर कहने लगते हैं कि इसमें सन्देह नहीं कि जहाँ अमेरिका जैसे देशमें वह प्रभावोत्पादक, और आवश्यक भी हो सकती है, वहाँ भारतमें वह न लाभजनक है और न आवश्यक, क्योंकि यहाँ भाषा सम्बन्धी कठिनाइयाँ हैं, समाचारपत्रोंकी संख्या कम है और सामान्यतः नीचा आर्थिक स्तर है जिससे अमेरिकाकी तुलनामें यहाँ यह पेशा कम वाञ्छनीय समझा जाता है।

शिक्षाक्रमका विकास

भारतमें विश्वविद्यालयीय स्तरपर पत्रकारीकी शिक्षाका प्रथम प्रबन्ध सम्भवतः वह था जो सन् १९३८ में अलीगढ़के मुसलिम विश्वविद्यालयमें किया गया था। इसमें उपाधिपत्र (डिप्लोमा) दिया जाता था। कक्षा का प्रारम्भ उस वर्ष, भारतके सब-न्यायालयके न्यायाधिपति स्वर्गीय सर शाह मुहम्मद सुलेमानने किया था।

कक्षाका प्रभार रहीम अली अलहशमीपर था जिन्हें अंग्रेजी तथा उर्दू, दोनोंकी ही पत्रकारीका अनुभव था। प्राध्यापकके पदपर उनके नियुक्त होनेकी यही पृष्ठभूमि थी। पत्रकारीके विभिन्न अंगोंपर चुने हुए पेशेवर पत्रकारोंके व्याख्यान दिलानेकी व्यवस्था उन्होंने की थी और वे विद्यार्थियोंको समाचारपत्रोंके कार्यालयोंके परिदर्शनार्थ भी ले जाया करते थे। सन् १९४० में सर शाह सुलेमानकी मृत्यु हो जानेके बाद प्रभारी अध्यापकने "प्राधिकारियोंसे कुछ मतभेद हो जानेके कारण" पदत्याग कर दिया और पत्रकारीकी शिक्षण-व्यवस्था समाप्त कर दी गयी।

देशमे पत्रकारीका पेशा इख्तियार करनेवालोंकी शिक्षाकी बराबर चलनेवाली व्यवस्था सन् १९४१ में पजाब विश्वविद्यालय (लाहौर) मे शुरू हुई। अमेरिकाके मिसूरी विश्वविद्यालयके पत्रकार-कला-स्नातक श्री पी पी सिंहने पत्रकारीका एक विभाग खोल दिया। ये अन्तर्राष्ट्रीय समाचार-समितिके लिए तथा 'पायोनियर' एव अन्य भारतीय समाचार-पत्रोमे काम कर चुके थे। यहाँ प्रतिवर्ष लगभग ३० विद्यार्थियोको पत्र-कारीका उपाधिपत्र (डिप्लोमा) मिलता था। यह क्रम १९४७ तक चलता रहा जब देशका विभाजन हो जानेके कारण पजाब विश्वविद्यालय और उसके साथ साथ पत्रकारकला-विभाग भी पाकिस्तानमे चला गया।

विश्वविद्यालयके उन कर्मचारियोंमें जो सीमा पारकर भारत चले आये, प्राध्यापक श्री सिह भी थे, जिन्होंने नयी दिल्लीमे एक नया विभाग खोल दिया। मूल विभाग पाकिस्तानमें जारी रहा और इस समय उसका अधिपति एक स्नातक है। भारतीय सीमाके इधरवाला विश्वविद्यालय भी पजाब विश्वविद्यालय कहलाता है जो मुख्य रूपसे शरणार्थियोंकी सस्था रह गया है। वहाँसे भी प्रतिवर्ष ३० स्नातक तैयार करनेका क्रम जारी रहा किन्तु इस नयी सस्थाको लाहौरके 'सिविल एण्ड मिलिटरी गजट' तथा अन्य समाचारपत्रोंके साथ चलनेवाले उत्तम सम्बन्धसे वञ्चित हो जाना पडा। श्री रुडयर्ड किपलिंग कुछ समयतक 'सिविल एण्ड मिलि-टरी गजट में ही सहायक सम्पादक रह चुके थे। भारतीय विभागको उतनी अच्छी भौतिक सुविधाएँ भी प्राप्त न हो सकीं जितनी लाहोरमे उपलब्ध थी। पहले जहाँ एक हाईस्कूल था, उसी भवनमे अब पत्रकारी कक्षाकी पढाई होती है और अभी हालमें ही विभागके अधिपतिने दिल्ली-के समाचारपत्रों, समाचार-समितियों तथा पत्रकारीके अन्य माध्यमोंसे सहयोगकी करीब करीब वैसी ही व्यवस्था की है जैसी विभाजनके पूर्व उपलब्ध थी।

प्रोफेसर सिंहको ऐसी ही तथा अन्य कठिनाइयोके बीच काम करना पड रहा है, जैसे पाठ्य पुस्तकें प्राप्त करनेमें असमर्थता, पुस्तकालय

सम्बन्धी उचित सुविधाओंका अभाव, तथा राष्ट्रके पत्रोंकी ऐसी स्थिति जिसमें कर्मचारियोंको निर्वाहमात्रका वेतन ही किसी तरह मिल पाता है। उनके विभागमें इन विषयोंकी शिक्षा दी जाती है—रिपोर्टिंग, कापी-सम्पादन आदि, सम्पादकीय लेख-टिप्पणी लिखना, विशेषलेख लिखना, समाचारपत्रका पृष्ठ बाँधना तथा मुद्रणसौन्दर्य, समाचारपत्र सम्बन्धी कानून, खेल-कूद तथा विज्ञापन। उनकी सहायताके लिए थोडा समय देनेवाले ऐसे व्याख्यातागण भी है, जिनमे कुछ तो समाचारपत्रोंमे काम किये हुए काफी प्रसिद्ध आदमी हे जिनमे 'टाइम्ज ऑफ इण्डिया' का एक भूतपूर्व सम्पादक तथा कितने ही अन्य पत्रकार तथा मासिक पत्रोंके सम्पादक आदि भी शामिल है। कोई पजाबीमे पढाता है तो कोई हिन्दीमे—यद्यपि बहुत सी क्लासोंकी पढाई अंग्रेजीमें होती है। यह पाठ्यक्रम, जिसमे उपाधिपत्र भी दिया जाता है, सिर्फ महाविद्यालयो के स्नातकोंके लिए खुला है। प्रयोगशाला, विवाद तथा व्याख्यानो द्वारा शिक्षा प्रदान करनेके साधनोंका प्रयोग किया जाता है।

मद्रासमे शिक्षाकी व्यवस्था

मद्रास विश्वविद्यालयने सन् १९४७ मे पत्रकारीकी पढाई शुरू की और वह डाक्टर आर बालकृष्णन्की देखरेखमें आज भी जारी है। वे अर्थशास्त्रके सुख्यात अध्यापक है जो पत्रकार-कलाके ज्ञानका दावा नही करते। वे मद्रासके प्रमुख पत्रकारो, सम्पादकोंकी व्याख्यानमालाकी व्यवस्था करते है जिनमें भारतके दो बडे दैनिक पत्रो 'दि मैडास मेल तथा 'दि हिन्दू' के सर्वोच्च सम्पादक भी शामिल हे। वे स्वय केवल विज्ञापन सम्बन्धी शिक्षा देते हैं। वे सब मिलकर विषय-बहुल पत्रकार-कलाकी परीक्षाके लिए कई विषयोंकी शिक्षा प्रदान करते है जिनमे रिपोर्टिंग, कापीका सम्पादन, मासिक पत्रोंके लिए फीचर (रूपक-)लेख और सम्पादकीय पद्धति तथा कला शामिल है। इसके सिवा अलग अलग कक्षाओंमें इन विषयोंकी भी पढाई होती है—समाचारपत्रोंकी स्वतन्त्रताका इतिहास, पत्रकारोंका नीतिशास्त्र, लेखादि लिखना, प्रेसी राइटिंग और

प्रूफ संशोधन। रेडियोके लिए समाचारपत्रोंका सम्पादन तथा ध्वनि-प्रसारण, यह विषय भी सिखाया जाता है पर इसमें परीक्षा नहीं ली जाती। शीघ्रलिपि तथा मुद्रलेखनपर भी विशेष व्याख्यान कराये जाते है। व्याख्यान-पद्धति तथा स्थानीय पत्रोंसे आबद्ध होकर काम सीखना ही शिक्षाके मुख्य साधन है। (उत्तीर्ण होनेपर) उपाधिपत्र दिया जाता है। प्रतिवर्ष १२ लडके लिये जा रहे ह और इनमेसे ३ या ४ प्रतिवर्ष पूरी शिक्षा प्राप्त कर लेते है।

कलकत्तेमें भी शिक्षण-व्यवस्था

सन् १९५० मे कल्कत्ता विश्वविद्यालयने दो वर्षकी शिक्षण-व्यवस्था, जो अभीतक देशमे अन्यत्र नही थी, आरम्भ की। उपाधि-पत्र पानेके लिए जो पाठ्य क्रम रखा गया उसमे व्यावहारिक पत्रकार-कलाकी शिक्षा ही नहीं, वरन् उसकी पृष्ठभूमि बनानेवाले ऐसे विषयो, जैसे सांविधानिक विधि (कानून) तथा राजनीतिक, सामाजिक एव आर्थिक घटनाचक्र। वैकल्पिक विषयके रूपमें रखा गया है साहित्य और कलाका अध्ययन तथा वैज्ञानिक एव सास्कृतिक प्रवृत्तियाँ। पत्रकारीके ठेठ विषय ये है—पत्रकारकलाके सिद्धान्त और इतिहास, सामयिक पत्र तैयार करना, व्यवसाय और पत्रकारकला, व्यापारिक पत्रकारी, खेल-कूद, मञ्च और परदा, विज्ञापन और अभिन्यास (ले-आउट) की कला, मासिको तथा सामयिक पत्रोका सम्पादन, छापाखाना तथा पत्रका उत्पादन और स्थानबद्ध होकर काम सीखना जिसमे कल्कत्तेके महत्त्वपूर्ण समाचारपत्र सहयोग करते है। मद्रास तथा नयी दिल्लीकी ही तरह स्थानीय पत्रकार विभिन्न विषयोंका शिक्षण प्रदान करते हैं जिनकी व्यवस्था एक स्थायी समिति करती है। प्रथम कक्षामे ५५ विद्यार्थी थे किन्तु पहली पूरी शिक्षा समाप्त होते होते लगभग २५ विद्यार्थी ही रह गये।

सन १९४८ मे बम्बई विश्वविद्यालयने इस बातकी जाँच करनेके लिए एक समिति नियुक्त की कि क्या पत्रकारकलाके लिए एक अलग

अध्ययन-शाखा स्थापित कर उसके जरिये शिक्षा प्रदान करनेकी व्यवस्था की जा सकती है। पत्रकारीके लिए ऐसी स्वतन्त्र अध्ययन-शाखा भारतमें पहले कभी न थी और आज भी उसकी सम्भावना स्पष्ट नहीं दिखाई दे रही है। धन और स्थानकी कमीके कारण यह मूल योजना उपाधि-पत्र दिलानेवाली शिक्षा-योजनाके रूपमें ही, जो कमोवेश कलकत्तेकी योजनासे मिलती-जुलती थी, रखी जा सकी। अभीतक इसका प्रारम्भ नहीं किया जा सका है, अंशत तो अनुभवी शिक्षकोंकी कमीके कारण और अंशत अन्य लोगों द्वारा अधिक महत्त्वपूर्ण समझे जानेवाले विषयोंकी शिक्षाके लिए जनताका दबाव पडनेके कारण।

कलकत्तेकी शिक्षण-व्यवस्थामें पत्रकारीके बाहरके कतिपय विशिष्ट विषयोंकी शिक्षापर, पृष्ठभूमिके रूपमें, अधिक जोर दिया गया है, इसलिए इस एक दृष्टिसे वह सबसे सुस्थित (स्वस्थ,'साउंड') है। पत्रकारकलाकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए भारतके विभिन्न विश्वविद्यालयोंसे शिक्षार्थी आते हैं, जिनका इन विषयोंका अध्ययन विभिन्न स्तरों या मात्राओंका होता है—सांविधानिक कानून, समाज शास्त्र राजनीति विज्ञान, साहित्य और कला। कलकत्तेके शिक्षाक्रमका प्रभार जिनके ऊपर है और जिनमें अतीत कालके तथा आजके प्रमुख सम्पादक शामिल है, उन्होंने इस बातकी प्रत्यपेक्षा पहले ही कर ली थी कि भूमिका रूपमें पत्रकारोंके लिए आवश्यक इन विषयोंका अध्ययन सबका समान न होकर किसीका कम और किसीका ज्यादा होगा ही, इसलिए उपाधि-पत्र प्राप्त करनेके लिए उन्होंने दो वर्षकी पढाई रखी, जिसमें जहाँ जितनी कमी या त्रुटि हो, दूर कर दी जाय। यह नीति यह अच्छी तरह जानते हुए भी अंगीकार की गयी कि ऐसा करनेमें भरती होनेवाले विद्यार्थियोंमेंसे कई धीरे-धीरे हट जायँगे, और अन्तमें हुआ भी ऐसा ही।

एक ओर तरहसे कलकत्तेकी योजना अन्य योजनाओंसे बढकर है—उसमें इस बातका आग्रह है कि प्रत्येक ऐसे व्यक्तिको जो उपाधि-पत्र प्राप्त करे, पहलेसे ही पत्रकारोद्योगमें स्थान मिलनेका आश्वासन मिल जाना

चाहिये। इसे यदि इस तरह कार्यान्वित करनेका प्रयत्न न हो तो कितनोंकी ही शिक्षा बेकार जायगी, इसीसे परित्राण पानेके लिए योजना-मे यह शर्त रखी गयी है। मद्रासकी तरह कलकत्तेके शिक्षाक्रममे भी किसी पत्रके साथ सम्बद्ध होकर कुछ दिन काम करनेपर जोर दिया गया है और इसका प्रबन्ध विद्यार्थियोको स्वय ही कर लेना चाहिये।

भरती होनेके विनियम (रेगुलेशन्स), उससे अधिक उदार है जितने उनके होनेकी अन्य आवश्यकताओंको देखते हुए, आशा की जा सकती थी। विवरण पत्रिकामे कहा गया है—"कलकत्ता विश्वविद्यालय या किसी अन्य मान्य विश्वविद्यालयके स्नातक तथा वे लोग भी जिन्होने कलकत्ता विश्वविद्यालय या किसी अन्य मान्य विश्वविद्यालयसे इण्टर मीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है और जिन्हें कमसे कम एक वर्ष किसी दैनिक या सामयिक पत्रमे या किसी समाचार-समितिके कार्यालयमे काम करनेका अनुभव है, इस शिक्षाक्रममें भरती किये जा सकगे।'

सन् १९५१ में मैसूर विश्वविद्यालयने मैसूर सिटीके महाराजा कालेजके जरिये पत्रकारीके ये तीन विषय बी० ए० की पढाईमे शामिल कर लिये—पत्रकारकलाका इतिहास तथा पर्यालोकन, सम्पादकीय कार्य तथा समाचारपत्रोका प्रशासन। जब इस शिक्षा-क्रमपर पुनर्विचार हो रहा था तब विश्वविद्यालयके कुलपति डाक्टर बी० एल० मजुनाथने कहा था कि "हमारा उद्देश्य बी० ए० की परीक्षाके लिए रखे गये तीन विषयोंके अन्तर्गत अध्ययनके सामान्य विषयके रूपमे पत्रकारीकी शिक्षा देना है। पेशेवर पत्रकारके रूपमें प्रशिक्षण देनेके बजाय विद्यार्थियो को पत्रकारीका प्रारम्भिक ज्ञान करा देना ही हमारा ध्येय रहा है।"*

इसकी पढाईका प्रभार अस्थायीरूपसे अंग्रेजीके अध्यापक प्रोफेसर ओ के नम्बियरके ऊपर रखा गया जिन्होंने विद्यार्थियोंमें इस कामके प्रति प्रबल अभिरुचि उत्पन्न कर दी। उनकी सहायताके लिए इतिहासके एक प्राध्यापक तथा पेशेवर पत्रकार थे। किन्तु उन्हे कई तरहकी

* लेखकको लिखे गये पत्रमे, २९-८-१९५२

बाधाओंका सामना करना पड़ा। सन १९५३ में शिक्षाका काम पेशेवर पत्रकार प्रोफेसर एन कृष्णामूर्त्तिको सौंप दिया गया, जिन्होंने पंजाबके प्रोफेसर सिंहके ही समान, मिसूरी विश्वविद्यालय (अमेरिका) से पत्रकारकलाकी शिक्षा प्राप्त की थी। सन् १९५१ में भरती हुए विद्यार्थियोंकी संख्या २४ थी, १९५२ में १८ रह गयी। पत्रकारकला सम्बन्धी पुस्तकोंका अच्छा समूह इकट्ठा कर लिया गया और अभ्यासके लिए एक पत्र भी निकाला जाने लगा।

मैसूरका शिक्षाक्रम इस मानेमें बिलकुल निराला है कि केवल वही ऐसा है जो बी ए की उपाधि प्राप्त करनेके पहले ही सीखा जा सकता है, जब कि अन्य सब स्थानोंके शिक्षाक्रम पाँचवें वर्षमें ही शुरू किये जा सकते है।

सन् १९५२ के शुरूमें आगरा, गुजरात तथा उसमानिया विश्वविद्यालयोंमें भी इसके शिक्षणकी व्यवस्था करनेपर विचार किया जा रहा था। पत्रकारीसे सम्बन्ध रखनेवाला थोड़ासा विशिष्ट काम, फरवरी १९५२ में इलाहाबाद एग्रीकल्चरल इन्सटीट्यूटमें भी शुरू किया गया था।

सबसे नया बड़ा शिक्षणक्रम हिस्लॉप कालेजमें शुरू किया गया है, जो नागपुर विश्वविद्यालय (मध्यप्रदेश) से सम्बद्ध है।

हिस्लॉप कालेजका शिक्षाक्रम

नागपुर विश्वविद्यालयसे सम्बद्ध एक हजार विद्यार्थियोंवाले हिस्लाप कालेजमें पत्रकारकलाका शिक्षाक्रम शुरू करनेका आवेदन सन् १९४६ में विश्वविद्यालयकी एक समितिने किया था किन्तु सन् १९५२ तक वह कार्यान्वित न किया जा सका। अन्य विश्वविद्यालयोंके शिक्षाक्रमोंसे यह भिन्न है। फिलहाल इसमें उपाधिपत्र पानेके लिए एक वर्षका पाठ्यक्रम रखा गया है और यह अनुभवी पत्रकारोंको बिना कालेजमें शिक्षा प्राप्त किये ही प्रमाणपत्र दे सकता है। जो लोग उपाधिपत्र लेना चाहते हों उनके लिए आवश्यक है कि उन्होंने बी ए के नीचेकी पढ़ाई सम्मानपूर्वक समाप्त की हो।

भरती करनेमें नम्रताका रुख, यह एक भिन्नता हुई। दूसरी है कि स्थानीयपत्रोंके साथ सम्बद्ध होकर काम करने या व्याख्यानों और प्रयोग-शाला पर ही निर्भर न रहना वरन् योजना-पद्धतियोंपर तथा कक्षाओंमें अधिक उपस्थित रहनेपर भी जोर देना। तीसरी भिन्नता यह है कि यहाँ बँधे हुए सामान्य विषयोंकी शिक्षाके साथ—समाचार लिखना तथा रिपोर्ट लेना, सम्पादन, लेख और फीचर लिखना, स्थानीय पत्रोंमें काम करना, पत्रकारीका प्रारंभिक ज्ञान, सर्जनात्मक लेख लिखना तथा पत्रकारीका व्यवसाय एवं कानून, तथा चालू समयकी घटनाएँ, शीघ्रलिपि एवं मुद्र-लेखन (और अतिरिक्त विषयोंके रूपमें)—एक तीसरी बात भी सिखायी जाती है जिसकी शिक्षा पहले भारतमें ही क्या, सम्भवत अन्य किसी भी स्थानमें उपलब्ध नहीं थी। यह है सामाजिक शिक्षणकार्यमें प्रयोगके लिए लिखित सामग्रीका अध्ययन करना तथा स्वयं भी उसे तैयार करनेका अभ्यास करना।

यह कक्षा पादरी लोगोंके तथा सामाजिक शिक्षाका काम, जिसका एक पहलू निरक्षरता दूर करनेका प्रयत्न करना है, करनेवाली सरकारी संस्थाओंके आग्रहसे जोडी गयी थी। देशमें लॉवाक तथा अन्य तरीकोंसे नये साक्षरोंकी तेजीसे उत्पत्ति हो रही है। किन्तु उपयुक्त कोटिकी बहुत थोडीसी ही पाठ्य-सामग्री छपने पा रही है। हिस्लॉप कालेजका शिक्षा-क्रम विभिन्न तरहकी पाण्डुलिपियोंके उत्पादनका भी अध्ययन कर रहा है और पत्रकारकला सम्बन्धी उन परीक्षणोंको आगे बढा रहा है जो सन् १९५०–५१ में सिराक्यूज विश्वविद्यालयकी पत्रकारकला सम्बन्धी अध्य-यनशाखामें धार्मिक पत्रकारकला-विभाग द्वारा शुरू किये गये थे। नये पाठ्यक्रमके चलानेमें ४॥ लाख आबादीवाले नागपुर शहरके समाचार-पत्रों, मासिक पत्रों, रेडियो स्टेशन, छापेखानों तथा समाचार-समितियोंने कॉलेजके साथ पूरा सहयोग किया है।

इरादा यह है कि जितनी जल्दी सम्भव हो, उतनी जल्दी इसके विभागीय अध्यापकवर्गकी (जिसमें १९५२–५३ में दो पूरा समय देने-

वाले तथा दो आधे समय काम करनेवाले व्यक्ति थे) संख्या बढ़ा दी जाय और कक्षाएँ भी दूनी कर दी जायँ जिससे स्नातक-पूर्व उपाधिपत्र भी दिया जा सके और स्नातक तथा स्नातक-पूर्व दोनों स्तरोंपर कामका उपबन्ध किया जा सके। इस तरह स्नातकोंकी वास्तविक शिक्षा पाँचवें वर्षमें होगी।

नियन्त्रित भरती द्वारा केवल ४२ विद्यार्थी ही इस कक्षामें रखे जा सकते हैं। उनमेंसे अधिकतर तो कालेजोंके ग्रेजुएट और पेशेवर पत्रकारी-में करीब-करीब आधे व्यक्ति अनुभवी मनुष्य हैं। इस शिक्षाक्रमने कमसे-कम कुछ विद्यार्थियोंको परीक्षाओंके कठिन चंगुलसे बचाये रखा है। नागपुर विश्वविद्यालयके अधिकारियोंने परीक्षामें प्राप्त होनेवाले अंकोंकी विभाजन-व्यवस्था इस तरह की है जिससे छात्रके उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण होनेका प्रश्न अन्तमें अध्यापकोंके ही हाथमें रह जाता है, परीक्षकोंके हाथमें नहीं।

हिस्लॉप कालेजके इस विभागका (जो नागपुर विश्वविद्यालयका भी विभाग है) निदेशन विश्वविद्यालयके निकाय, पत्रकारी शिक्षाके बोर्ड-के हाथमें है। इस समितिके सदस्य साधारणतः विभागीय प्राध्यापक वर्ग (फैकल्टी) से चुने जाते हैं किन्तु नागपुरमें पत्रकारी एक छोटी-सी इकाईके रूपमें है, अतः इस समूहमें विभागीय प्राध्यापक वर्गके तीन, नागपुरके पत्रकार तीन तथा कलकत्ता विश्वविद्यालयके विभागीय प्राध्यापक वर्गका एक आदमी रहता है।

शिक्षण-संस्थाओं सम्बन्धी बाधाएँ

भारतके कुछ हिस्सोंमें थोड़ी-सी बाधाएँ तो (निषेधात्मक ढंगकी) काम करनेवाले पत्रकारों द्वारा, विशेष कर उनके द्वारा जो महाविद्यालय-में शिक्षा प्राप्त किये बिना ही महत्त्वपूर्ण स्थितियोंमें पहुँच गये हैं, उप-स्थित की जाती हैं, जैसे अभ्यासके लिए विद्यार्थियोंको अपने कार्यालयोंमें आने देनेकी अनुमति न देना किन्तु इसके साथ ही शिक्षण-संस्थाओंने भी कुछ बाधाएँ खड़ी कर रखी हैं।

उपर्युक्त रुखके दो कारण है। एक तो वह अविश्वास है जो विश्वविद्यालयीय स्तरपर दिये जानेवाले पत्रकारकला सम्बन्धी प्रशिक्षणके प्रति कुछ भारतीय शिक्षण-सस्थाओमे आम तौरसे पाया जाता है। दूसरा यह आग्रह है कि पत्रकार-कला, अशैक्षिक विषयोकी तरह, निर्धारित पाठ्य-पुस्तकोको रट मारनेसे तथा चन्द-व्याख्यान सुन लेनेसे बहुत कुछ सीखी जा सकती है। अमेरिकामे शुरु-शुरुमे जो अनुभव हुआ प्रायः उसीकी रहस्यमय आवृत्ति हम शिक्षण-सस्थाओके इस मतमे पाते है कि पत्रकारीके लिए बहुत ही कम तैयारी या सज्जाकी आवश्यकता है। इसलिए जो थोडेसे शिक्षाक्रम निश्चित किये गये है उनमे अल्पतम विषयोकी व्यवस्था की गयी है। न तो मुद्रलेखन यन्त्र (टाइपराइटर) रहते है, न टाइपोका सग्रह और न अन्य आवश्यक सामान, अध्यापकोको स्थानीय पत्रोसे काम चलाना पडता है और विद्यार्थियोको समझानेका प्रयत्न किया जाता है कि यदि सम्भव हो तो वे अपने लिए स्वय ही टाइपराइटर प्राप्त कर ले।

विश्वविद्यालय किसी धनी व्यवसायीको भैषजिक विद्यालय या वैज्ञानिक विद्यालयके लिए तो लाखों रुपयेकी व्यवस्था करनेके लिए फुसला सकता है किन्तु किसी समाचारपत्रके मालिकको इस बातके लिए राजी करनेकी कोइ चेष्टा नहीं कर सकता कि वह रुपया लगाकर पत्रकारकला सिखानेके लिए प्रथम श्रेणीका सुसज्जित विद्यालय स्थापित कर दे। इसीसे स्पष्ट हो जाता है कि समाचारपत्रोंकी आवश्यकताओंके सम्बन्धमें उच्च शिक्षा-परिषदोंके सचालकों आदिके क्या विचार है। पत्रकारीका कोई अच्छा काम करनेके लिए कितनी बुद्धि और कुशलताकी आवश्यकता है, इसे बहुत कम लोग समझते है, क्योंकि अच्छा काम किसी न किसी तरह बहुधा लोग कर ही लेते है।

पाठ्य पुस्तकें

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे पाठ्यपुस्तकोंकी भी स्थितिकी कल्पना की जा सकती है। भारतीय पत्रकारकलाके सम्बन्धमे इनी-गिनी

आधे दर्जन पुस्तकें ही प्रकाशित हुई है। वे विभिन्न भाषाओमे लिखी गयी है और प्राय दुष्प्राप्य-सी है। वस्तुत भारतीय समाचारपत्रोके सम्बन्धमे भी लिखी गयी कुल पुस्तकोकी सख्या ५० से अधिक नही। इनमे या तो पत्रोका इतिहास दिया गया है, या पुराने सस्मरण लिखे गये है या फिर समाचारपत्रोकी स्वतन्त्रता, समाचारपत्र और राजनीतिक प्रश्न इत्यादि या ऐसे ही अन्य विषयोकी चर्चा की गयी है। (ग्रन्थ-सूची, परिशिष्ट १ देखिये)।

प्राय· ब्रिटेन तथा अमेरिकामे छपी पुस्तकोका ही आदर किया जाता है और जहाँ सम्भव होता है उन्हीमे काम चलाया जाता है किन्तु बहुतसे विद्यार्थी तो अक्सर अपने लिए इन्हे खरीद ही नही सकते क्योकि इनके दाम अधिक होते है। हर एक शिक्षाक्रमके लिए एक या दो पुस्तक निर्धारित कर दी जाती है और अन्य पुस्तके अनुशसित कर दी जाती हैं जिन्हे विद्यार्थी पुस्तकालयोसे लेकर पढ लेते है। अमेरिकाके पत्रकारकला विद्यालयोंमे साधारणत जिस तरहकी पाठ्यपुस्तक प्रयुक्त होती है, उसका दाम प्राय तीन-चार महीनोके शिक्षणशुल्कके बराबर होता है। ऐसी पाठ्य-पुस्तके पेशेवर पत्रकारोके समाचार-कक्षमे पहुँच नही पाती, जिस तरह वे अन्य देशोमे देख पडती है। समाचारपत्रो आदिमे काम करने-वाले बहुतसे पत्रकारोंको तो भारतीय पत्रकारकला सम्बन्धी उन दो चार पुस्तकोका भी ज्ञान नहीं जो यहाँ उपलब्ध है और अन्य देशोमे इसका जो साहित्य उपलब्ध है उसकी भी केवल थोडी-सी जानकारी उन्हे रहती है।

फिर विश्वविद्यालयोके अपने पुस्तकालयो तथा सार्वजनिक पुस्त-कालयोमे भी पत्रकारकला सम्बन्धी शायद ही एक दो पुस्तक मौजूद रहती है। समाचारपत्रोके थोडेसे मालिको तथा सम्पादकोके निजी सग्रहोमें पत्रकारकला सम्बन्धी पुस्तके पायी जा सकती है पर उनमे मुख्यरूपसे अमेरिका तथा ब्रिटेनकी दृष्टिसे समाचारपत्रो सम्बन्धी कानून तथा व्यवस्था आदिका वर्णन रहता है। नागपुर विश्वविद्यालय तथा हिस्लॉप

कालेजके ग्रन्थालयोंमे अवश्य पत्रकारकला सम्बन्धी सबसे आधुनिक पुस्तकोंका सग्रह है—भले ही वह सबसे बडा सग्रह न हो। उन दोनोंके बीचमे अमेरिका, ब्रिटेन तथा भारतकी छपी लगभग दो सौ पुस्तके हैं जिनमेंसे अधिकतर नयी और हालकी छपी हैं।

पत्र-सम्पादकोंका रुख

जैसा कि हम लिख चुके हैं, जो पत्रकार और सम्पादक इस पेशेमे लगे हुए हैं, पत्रकार-कलाकी शिक्षा-व्यवस्थाके सम्बन्धमें उनके करीब-करीब वैसे ही विचार हैं जैसे इस शताब्दीके प्रारम्भमें सयुक्त-राज्य अमेरिकामे देख पडते थे, अपवाद केवल इतना ही है कि यहाँके सशयवादी अमेरिकामे अब उसके सफल हो जानेसे कुछ उद्विग्न और हैरानसे हैं। थोडेमे उन्हे हम तीन श्रेणियोंमे रख सकते है—वे जो (विश्वविद्यालयीय स्तरपर) पत्रकारीकी शिक्षाके कट्टर विरोधी हैं (अल्पमत), वे जो इस सम्बन्धमे उदासीन-से हैं (बहुमत), तथा वे जो उत्साहपूर्वक इसका समर्थन करते हैं (अल्प सख्यक)। एक विरोधी तो ऐसे पेशेवर पत्रकार है जिन्होंने 'पत्रकार-कला' पर छोटी-सी पुस्तक* भी लिखी है। उसमें उन्होंने एक छोटेसे अध्यायमे विश्वविद्यालयमें पत्रकारीकी शिक्षा देनेके विचारकी तीव्र आलोचना की है। उनका कथन है कि अमेरिकामे पत्रकार विद्यालयोंका चलाया जाना इसी कारण सम्भव हो सका कि वहाँके करोडपति उनकी आधिक सहायता करते हैं। फिर भी जब उन्होंने सुना कि नागपुरमे इसका एक नया विभाग स्थापित होनेवाला है, तब उन्होंने तीन अधिकारियोंके पास इस सुझावके साथ अपनी पुस्तककी प्रतियाँ भेजी कि वह पाठ्य पुस्तकके रूपमें प्रस्वीकृत कर ली जाय।

जो लोग उदासीन से हैं, उन्हे यदि सब बाते समझा दी जायँ तो वे अपनी राय बदल सकते हैं। उत्साहपूर्वक समर्थन करनेवालोंमे राष्ट्रकी इन पत्र सस्थाओंके पदाधिकारी तथा सदस्य हैं—अखिल भारतीय

* के० डी० उमरीगर कृत "लेस्ट आई फारगेट" (कहीं मैं भूल न जाऊँ), बम्बई १९४९

पत्र-सम्पादक सम्मेलन, भारतीय श्रमिक-पत्रकार-सघ तथा 'दक्षिण भारतीय पत्रकार सघ' जैसी क्षेत्रीय सस्थाएँ भी। अ० भा० पत्र-सम्पादक सम्मेलनने, जिसके लगभग २०० सदस्य है, सन् १९४९ मे नागपुरके तीन पत्रकारोकी एक कमेटी नियुक्त कर दी। इसे 'पत्रकारोको उच्च स्तरका प्रशिक्षण देनेके उद्देश्यसे एक अखिल भारतीय पत्रकार-कला विद्यालय स्थापित करनेके लिए योजना बनाने" का काम सौपा गया और आदेश दिया गया कि "तीन महीनोके भीतर अपनी रिपोर्ट स्थायी समितिके पास भेज दे।"

प्रस्तावित विद्यालय भारत सरकारके शिक्षा मन्त्रालयके प्रतिनिधियो तथा अ० भा० पत्र सम्पादक-सम्मेलन और अन्य स्वीकृत पत्रकार सस्थाओ द्वारा नियन्त्रित होगा। भरती किये जानेवालोके लिए पाँच वर्षका व्यावहारिक अनुभव तथा दो वर्षतककी महाविद्यालयकी शिक्षा प्राप्त किये रहना आवश्यक होगा। केन्द्रीय तथा राज्य-सरकारे इसके लिए धनकी व्यवस्था करेगी और अ भा पत्रसम्पादक सम्मेलन भी इसकी कुछ सहायता करेगा। हिन्दी तथा अग्रेजी ही शिक्षाका माध्यम होगी।

प्रस्तावित पाठ्यक्रममें ये विषय रखे गये--समाचारोकी रिपोर्ट लेना और लिखना, समाचारोंका सम्पादन, अग्रलेख-टिप्पणी लिखना, जनमत तथा प्रचारकार्य, सचित्र पत्रकारी, पत्रकारोकी नीति-सहिता, पत्रकारी सम्बन्धी कानून, चित्र बनाना, फोटो लेख आदि, शीघ्रलिपि तथा मुद्रलेखन और अर्थशास्त्र, राजनीतिविज्ञान, नागरिकशास्त्र एव इतिहासमे पूर्वपीठिकाके रूपमे किया गया कुछ काम।

अ भा पत्रसम्पादक सम्मेलनके सदस्योसे आशा की जायगी कि वे स्थानीय पत्रोंसे सम्बद्ध होकर व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त करनेकी योजनाको कार्यान्वित करनेमे सहयोग करगे। कुछ विषयोके प्रशिक्षणके लिए प्रयोगशालाएँ भी स्थापित की जायँगी।

स्थायी समितिकी रिपोर्टपर अभी कोई कारवाई नहीं की गयी किन्तु

यदि समाचारपत्र आयोगने सुझाव रखा तो पुनः उसकी समीक्षा की जानेकी सम्भावना है। रिपोर्ट या प्रतिवेदनकी समाप्ति ऐसे आशामय वाक्यसे होती है जो प्रायः भारतीय पत्रकारी सम्बन्धी लेखों आदिमें नहीं देख पडता—"लोकतन्त्र तथा वयस्क मताधिकारका प्रचलन एवं साक्षरताकी अधिकाधिक वृद्धि होनेसे समाचारपत्रोंके विकासके लिए भारी क्षेत्र है और इस कामके लिए प्रशिक्षित पत्रकारोंकी बढती हुई संख्याकी आवश्यकता होगी।"*

यदि वे थोडेसे विभाग तथा शिक्षाक्रम जो इस समय विद्यमान हैं, अधिक उत्साहपूर्वक काम करें तो उनके प्रति उदासीनता या विरोधका भाव बहुत घट जायगा। भारतके पत्रकार यह बहुत कम जानते हैं कि उनके देशमें पत्रकारकलाकी शिक्षाका कितना प्रसार हुआ है। जानकारी न होनेका परिणाम कितना हानिकर हो सकता है, इसका एक उदाहरण अप्रैल १९५२ मे दिल्लीके 'हिन्दुस्तान टाइम्ज' पत्रमें प्रकाशित लेख है जिसमें कहा गया था कि पंजाब विश्वविद्यालयके पत्रकारकला विभागको सफलता न मिलनेका कारण यह है कि उससे जिन लोगोंने उपाधिपत्र प्राप्त किये उनमेंसे किसीको भी समाचारपत्रोंने अपने यहाँ स्थान नहीं दिया।

प्रोफेसर सिंह इस सम्बन्धके तथ्य पहले ही अपने सूचीपत्रमें प्रकाशित कर चुके थे, फिर भी उन्होंने तुरन्त ऐसे पत्रकारोंकी एक सूची तैयार कर दी जो उनके यहाँके स्नातक हैं और जो विभिन्न समाचारपत्रोंमें काम कर रहे हैं, यहाँतक कि स्वयं 'हिन्दुस्तान टाइम्ज' के भी सम्पादकीय विभागमें मौजूद हैं।

संशयवादियोंको जवाब

उन संशयवादियोंको क्या जवाब दिया जाय जो कहते हैं कि किसी

---

* अ. भा. पत्रकारकला विद्यालयकी स्थापनाके लिए बनायी गयी उपसमितिकी रिपोर्ट, अ. भा. पत्र सम्पादक सम्मेलन, १९४०

विश्वविद्यालयमे दी जानेवाली पत्रकारीकी शिक्षा अमेरिका तथा अन्य देशोमे भले ही टिकानेसे चलायी जा सके किन्तु भारतमे वह चल नही सकती ?

पहला उत्तर तो यही है कि जो भारतीय पत्रकार तथा शिक्षा विशेषज्ञ इस मतके माननेवाले है, उनके सम्बन्धमे प्राय पता चलता है कि उन्हे इस बातका करीब-करीब कुछ भी ज्ञान नही है कि भारतमें अध्ययनके इस क्षेत्रमें कितना काम हो चुका है और दुनियाके अन्य भागोमे जो कुछ हुआ है उसकी भी उन्हे बहुत थोडी जानकारी है। अधिकसे अधिक वे यही सोच सकते हैं कि पत्रकार-कला-विद्यालय एक तरहके व्यापारिक विद्यालयके सिवा और कुछ भी नहीं है। उन्हे बिल्कुल नहीं मालूम कि ऐसे विद्यालयोंमे गवेषणा सम्बन्धी कार्य भी होता है, आत्माभिव्यक्तिके अवसर मिलते है तथा जिम्मेदारीकी तथा सचार साधनोके उचित प्रयोगकी शिक्षा दी जाती है। वे नही जानते कि यहॉ शिक्षासम्बन्धी समस्त अनुभवको विद्यार्थियोंके लिए अधिक सार्थक एव अधिक मनोरजक बनानेका प्रयत्न किया जाता है।

फिर भी विरोधियोंके सब तर्क सारहीन नहीं है। उनमे सबसे प्रबल है भाषा सम्बन्धी कठिनाइयोकी विद्यमानता। शिक्षा, शासन तथा व्यापारादिमें हिन्दी क्रमश अग्रेजीका स्थान ग्रहण करती जा रही है। फिर भी वह स्थिति आनेमें अभी बहुत वर्ष लगगे जब भारतके अधिकतर लोग अपनी स्थानीय भाषाके सिवा उसका भी प्रयोग कर सकगे। फिर भी 'टाइम्ज ऑफ इण्डिया' के दिल्ली सस्करणके सम्पादक और पत्रकार-कला शिक्षणके समर्थक श्री डी० आर० मनकेकरको पजाबपत्रकारकला-विद्यालयके विद्यार्थियोंमे साफ-साफ कहना पडा कि " जब कोई भारतीय पत्रकारीके भविष्यकी बात करता है तो उसका मतलब अग्रेजीकी पत्रकारीसे नहीं रहता। अग्रेजी पत्रकारीने बहुत अच्छा और सुन्दर काम किया है, इसमे सन्देह नहीं, किन्तु अब उसके दिन लद गये। भविष्य अब भारतीय भाषाओंकी, विशेष कर हिन्दीकी, पत्रकारीके

लिए ही अधिक उज्ज्वल है । सम्भवत पचास वर्षोंके बाद जब हिन्दी सारे देशकी राष्ट्रभाषाके रूपमें विकसित हो जायगी, तब भारतीय समाचारपत्रोंकी छ अकोतक जानेवाली प्रचार सख्याका हमारा स्वप्न अन्ततोगत्वा सत्य हो सकेगा।"*

यह सत्य है कि वह विद्यार्थी जिसे महाविद्यालयमे पत्रकारकलाकी आधारभूत विशिष्ट बाते सिखा दी जायँ, उन्हे बहुत तत्परतासे सीख सकता है यदि सब प्रान्तोंके या भाषावार क्षेत्रोंके विश्वविद्यालय ऐसा काम उन्हे सिखानेका उपक्रम कर । जो शिक्षाक्रम केवल अग्रेजीमे या फिलहाल एक और अन्य भाषामे चलाया जाता है, उसकी सफलतामे एक बाधा यह पडती है कि उसमे ऐसे तेज विद्यार्थी रखे नहीं जा सकते जिन्हे अग्रेजी भाषापर या मातृभाषाके सिवा अन्य एक भाषापर यथेष्ट अधिकार न हो । दूसरी कठिनाई यह है कि वह स्नातकोंको पत्रकारी सम्बन्धी ऐसे कामोंपर नहीं नियुक्त करा सकता जिनमें किसी ऐसी क्षेत्रीय भाष पर पूर्ण अधिकारकी आवश्यकता हो जो उन्हे बिल्कुल ही न आती हो । उदाहरणके लिए एक मलायली विद्यार्थी नागपुर या नयी दिल्लीमें किसी पत्रके साथ सम्बद्ध होकर पत्रकारीका व्यावहारिक ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता, क्योंकि इन शहरोंसे उसकी भाषाके कोई पत्र प्रकाशित नहीं होते । यह वास्तविक कठिनाई है पर वह अजेय नहीं है, क्योंकि कमसे कम प्रधान देशी भाषाओंमें ऐसे क्षेत्रीय विभाग खोल जा सकते हैं जो अनुभवी पत्रकारों द्वारा सचालित होते हो ।

भारतमें 'स्टेट्समेन' नामक गोरोंका जो एकमात्र महत्त्वपूर्ण दैनिकपत्र रह गया है (कलकत्ता तथा नयी दिल्ली), उसके सम्पादक श्री ई बी ब्रुकने एक और आपत्तिकी चर्चा करते हुए कहा था "मुझे भय है

---

* श्री डी० आर० मनकेकर कृत "पास्ट इण्डिपेंडेंस टेण्टज इन इण्डियन जर्नलिज्म" पजाब विश्वविद्यालयके पत्रकारकला विभागमे चतुर्थ पत्रकारकला दिवस सम्मेलनके अध्यक्ष पदसे किया गया भाषण, १८ जुलाई, १९५०

कि जिन लोगोंको पत्रकारकलाकी शिक्षा प्राप्त होगी, उनके सामने मुख्य समस्या समुचित काम प्राप्त करनेकी होगी।"*

उनके इस कथनका कारण उनका यह ज्ञान है कि भारतमें सब तरह और सब भाषाओंके कुल ८००० ही दैनिक, मासिक तथा अन्य पत्र हैं और इनमेंसे बहुत-से ऐसे हैं जिनमें अक्सर एक ही आदमी काम करता है। जो हो, उन्होंने आल इण्डिया रेडियोका खयाल नहीं किया, जिसके प्रसारण-केन्द्रोंकी संख्या दो दर्जनतक पहुँच चुकी है और जिसके द्वारा प्रसारित समाचारोंका क्षेत्र तथा परिमाण बराबर बढ़ता जा रहा है। फिर व्यापारिक पत्रों तथा विशेष प्रकारके अन्य पत्रोंकी भी संख्यामें वृद्धि हो रही है, जनसम्पर्क तथा जन-संवेदन (पब्लिसिटी) सम्बन्धी कार्योंका भी विस्तार हो रहा है समाचार-समितियोंका जाल फैलता जा रहा है, किशोरोंके लिए लेख, कविता आदि तैयार करानेका नया क्षेत्र सामने आ रहा है तथा पत्रकारीके बाहरके कितने ही क्षेत्र ऐसे हैं जिनमें भी पत्रकारोंकी कुशलताकी आवश्यकता पड़ने लगी है।

तीसरी आपत्तिका निराकरण उतना सरल नहीं है। अल्पवेतन श्रम, काम करनेकी असुविधाजनक स्थिति, और आशामय भविष्यकी अनिश्चितता—आजकी अखबारी दुनियामें काम करनेवाले यहाँके पत्रकारोंकी यही वास्तविक स्थिति है। 'इण्डियन एक्सप्रेस' दिल्लीके सम्पादक श्री यू० भास्करराावने पंजाबके विद्यार्थियोंको सम्बोधन करते हुए साफ-साफ कह दिया था कि आप लोग "आराम और ऐशकी जिन्दगीकी आशा न करें। काम कड़ा है, आध्यात्मिक प्रतिफल तो सन्तोषजनक है किन्तु खेद है कि इस पेशेमें धनके रूपमें अच्छा पारितोषिक नहीं मिलता। आपका जीवन संघर्षका जीवन होगा, तपस्याका जीवन होगा और कुछ मामलोंमें तो वह घोर दरिद्रताका भी जीवन हो सकता है।'

किन्तु कितने ही बुद्धिसम्पन्न एवं महत्त्वाकांक्षी लोगोंके लिए ये परिस्थितियाँ दुर्धर्ष बाधाएँ नहीं मानी जा सकतीं। ये लोग अपने चुने

* लेखकको लिखा गया पत्र, १८ अप्रैल, १९५२

हुए पत्रकारीके क्षेत्रमे बने रहनेके लिए प्राय हर तरहकी कठिनाई झेलने-को तैयार रहेगे। फिर, लक्षण ऐसे प्रतीत होते है कि कुछ ही वर्षोंके भीतर स्थिति सुधर जायगी। सर्वसाधारण पत्रकारोंने आपसमे एकता बढ़ाकर अपनी स्थिति कुछ दृढ बना ली है और 'श्रमजीवी पत्रकारोंका भारतीय सघ' की स्थापना कर ली है। परिणाम-स्वरूप विभिन्न क्षेत्रीय सस्थाऍ या सघ भी सघटित हो गये है। ये सघटन प्रशिक्षणकी मॉग कर रहे हैं। इसके सिवा ऑख मीचकर काग्रेस दलकी नीति और कार्यों-को मान लेनेकी प्रवृत्ति, जिससे भारत स्वतन्त्रताके मार्गपर अग्रसर हो सका, समाप्त हो गयी है और इस दलपर जो अब सत्तारूढ है, चारो ओरसे अधिक बडे सामाजिक सुधारोके लिए दबाव डाला जा रहा है जिनमेसे कुछके सम्पन्न हो जानेपर भारतीय पत्रकारोंको भी लाभ पहुँचेगा।

भविष्य

जैसा कि 'हिन्दुस्तान टाइम्ज' के प्रबन्ध-सम्पादक श्रीदेवदास गाधी-ने अपने अनेक भाषणों तथा लेखोंमे कहा है, जब निरक्षर लोगोंकी सख्यामे काफी कमी हो जायगी और जब अखबारी कागज फिर पर्याप्त परिमाणमें उपलब्ध होने लगेगा, तब भारतमे प्रकाशित पत्रों आदिकी मॉग भी बढ़ने लगेगी। दैनिक तथा साप्ताहिक-मासिक पत्रोंकी सख्या तेजीसे बढ़ेगी और उनका प्रचार भी। उनका कथन है कि जब पत्रोंकी इस तरहकी बाढ आयगी, तब हमें समय आने पर अनेक सुचालित, सुसम्पा-दित पत्र-पत्रिकाओंसे उसका सामना करनेको तैयार रहना चाहिये।

भारतमें पत्रकारीकी शिक्षाके लिए जो चार-पॉच विभाग या शिक्षा-क्रम चल रहे है, स्पष्ट है कि वे उस स्थितिका सामना करनेके लिए बिल-कुल अपर्याप्त होंगे। उनके अपर्याप्त होनेका कारण केवल यही नहीं है कि भविष्यमें पत्रोंमें काम करनेके लिए अधिक सम्पादकों, उपसम्पादकों आदिकी आवश्यकता होगी वरन् यह भी है कि हिन्दीका प्रचार बढ जाने तथा बहुतसे पत्रकारोंके लिए कमसे कम दो भाषाओंके ज्ञानकी आवश्यकताके कारण समस्या और भी जटिल हो जायगी।

र्थियोके लिए भी जो सन् १९५२–५३ मे आठ राज्योसे वहाँ पढने आये थे। पजाब, कलकत्ता तथा मद्रासमे तो पत्रकारीकी शिक्षा पानेवाले विद्यार्थियोके लिए इसका प्रयोग करनेमे और भी अधिक कठिनाइयाँ हैं।

जिन २५ विद्यालयो तथा विश्वविद्यालयीय विभागोका प्रस्ताव किया गया है, उनका सघटन विश्वविद्यालयो, महाविद्यालयो, सरकारो (केन्द्रीय तथा राज्योकी) और पत्रकार-सघोके पारस्परिक सहयोगसे किया जाना चाहिये। वे आवश्यक है और साध्य भी, क्योकि देशमे साक्षरता बढती जा रही है, अखबारी कागजकी स्थितिमें क्रमश और भी अधिक सुधार होनेकी सम्भावना है, भारतीय पत्रकार-सघोकी स्थिति अधिक सुदृढ एव उनका स्वरूप अधिक राष्ट्रीय होता जा रहा है और शिक्षक तथा अध्यापक भी (यथेष्ट सख्यामे) उपलब्ध है।

जैसा कि मेरे अपने देश अमेरिकामे हुआ है, सुचारु रूपसे चलनेवाले पत्रकारकला-विद्यालयों तथा पत्रकार विभागोके अस्तित्वसे समाचारपत्रोका स्तर ऊँचा उठानेमे सहायता मिलेगी, पत्रकारोकी काम करनेकी सुविधाओंमे सुधार होगा और विद्यार्थियो, पेशेवर पत्रकारो तथा पाठकोंकी शैक्षणिक पृष्ठ-भूमिमें यथेष्ट उन्नति होगी।

इन विद्यालयों तथा विभागोंमें किन विषयोंकी पढाई होनी चाहिये? इस सम्बन्धमें पत्रकारकलाके शिक्षकोमें तथा पत्रोमें काम करनेवाले पत्रकारोंमें जो विश्वविद्यालयीय स्तरपर इसकी शिक्षाके विरोधी है, युक्तियुक्त मतभेद है। अभीतक भारतमे जो शिक्षाक्रम प्रचलित है, वे दो तरहके है। एकमें तो ऐसी प्राविधिक शिक्षापर जोर दिया जाता है जिसे प्राप्त करना सबके लिए सुलभ हो (पजाब तथा नागपुर)। ऐसा स्नातकीय शिक्षाक्रम विद्यार्थीकी पृष्ठ-भूमिके अनुसार कई तरहसे सचालित किया जा सकता है। दूसरेमे पत्रकारीके साथ साथ ऐसे सामान्य महत्त्वके विषयोंकी शिक्षापर भी जोर डाला जाता है, जैसे कानून (विधि), इतिहास और अर्थशास्त्र (मद्रास तथा कलकत्ता)। दोमेंसे कोई भी शिक्षाक्रम भारतकी वर्त्तमान अथवा भावी आवश्यकताओके लिए पर्याप्त

नहीं है, क्योंकि दोनों ही योजनाओंके अनुसार विद्यार्थीको अपर्याप्त प्राविधिक प्रशिक्षण प्राप्त होता है और अक्सर उन सामान्य विषयोंपर उसका पूर्णाधिकार नहीं होने पाता जिनकी आवश्यकता पत्रकारको पड़ती है।

भारतीय विद्यार्थियोंके लिए राजनीति विज्ञान, मनोविज्ञान अथवा समाज विज्ञानका अध्ययन किये बिना ही बी० ए० की उपाधि प्राप्त कर लेना सम्भव है किन्तु ये विषय ऐसे हैं जिनका ज्ञान वर्त्तमान पत्रकारोंकी समुचित तैयारीके लिए आवश्यक है, विशेषकर इस देशमें जहाँ सामाजिक विकासका कार्य गतिशील अवस्थामें है। पत्रकारीकी शिक्षामें वे पत्रकारकलाके व्यावसायिक अंगका अध्ययन किये बिना ही, या उसका उड़ता उड़ता ज्ञान हासिलकर ही, उपाधिपत्र प्राप्त कर सकते हैं।

छपाई और मुद्रणसौन्दर्य, समाचारपत्रोंके लिए फोटो लेना, आकाशवाणी सम्बन्धी पत्रकारी, विशिष्ट पत्रकारी तथा पत्रकारकला-सम्बन्धी एवं संचारसाधन सम्बन्धी अनुसन्धान आदिकी बहुत ही कम व्यावहारिक शिक्षा दी जाती है। इस समय सभी शिक्षाक्रम स्नातकोत्तरीय स्तरपर चलाये जा रहे हैं किन्तु इनमें एक भी ऐसा नहीं है जिसकी पढ़ाई वास्तवमें स्नातक कोटिकी हो। इस आधारपर भारतमें पत्रकारकलाकी शिक्षा अधिक गहराईतक नहीं पहुँच सकती।

पत्रकारीकी शिक्षा, अपने सर्वोत्तम रूपमें, महाविद्यालयोंके स्नातक-पूर्व वर्गोंमें, प्रथम या द्वितीय वर्षमें ही आरम्भ हो जानी चाहिये। इसमें अधिक देर करना ठीक नहीं। इसका यह आशय नहीं कि विद्यार्थियोंको चार वर्षतक पत्रकार-कक्षाओंके सिवा अन्य किसी कक्षामें नहीं जाना चाहिये। इसका मतलब केवल इतना ही है कि उन्हें सामान्य ढंगसे ही बी ए की पढ़ाई जारी रखनी चाहिये किन्तु उनका बी ए का पाठ्य-क्रम इस तरहसे बनाया जाना चाहिये कि जीवनके सभी क्षेत्रोंके लिए आवश्यक सामान्य शिक्षा उन्हें मिल सके और इसके साथ ही पत्रकारीके कुछ चुने हुए विषय, एक या दो प्रतिवर्षके हिसाबसे, चार वर्षतक

सिखाये जा सकें। विद्यार्थीके समयका विभाजन इस तरह किया जा सकता है—

प्रथम वर्ष—भाषा, प्राकृतिक विज्ञान, गणितशास्त्र, सामाजिक-विज्ञान, और पत्रकारीका प्रारम्भिक पाठ्यक्रम (सप्ताहमें एक या दो बार पत्रकार कक्षामें सम्मिलित होना)।

द्वितीय वर्ष—सामान्य विषयोंका अध्ययन जारी रहे, जिनमें अर्थशास्त्र, इतिहास, तथा अन्य सामाजिक विषयोंका अध्ययन शामिल हो, भाषा, कला, विज्ञान इत्यादिकी और पढाई, तथा समाचारोंकी रिपोर्ट लेना और लिखना (जैसा समाचारपत्रोंमें होता है, केवल वैसा ही नहीं) और एक विषय हो पत्रकारके लिए छपाई एवं मुद्रणसौन्दर्यका आवश्यक ज्ञान।

तृतीय वर्ष—सामान्य विषयोंकी आगेकी पढाई जिसमें नगर पालिकाओंका संघटन, शासन, संविधान सम्बन्धी आवश्यक कानून, तथा सम्पादनका प्राविधिक एवं सामान्य पाठ्यक्रम, लेख लिखना, तथा पत्रकारकलाका इतिहास, नीति-संहिता एवं समस्याएँ। पत्रोंके लिए फोटो लेना, रेडियो सम्बन्धी पत्रकारी और एक दो बिलकुल स्वेच्छासे चुने गये विषय।

चतुर्थ वर्ष—सामान्यविषयोंकी शिक्षाकी समाप्ति, जिसके सिवा ये विषय भी हों, समाचारपत्रों सम्बन्धी कानून, विशिष्ट ढंगकी पत्रकारी, पत्रकारकलाके व्यावसायिक पहलू तथा समसामयिक घटनाओंका ज्ञान।

पाठ्यक्रममें पत्रकारकला सम्बन्धी विषय २५ प्रतिशतसे अधिक नहीं रहने चाहिये, जिससे विद्यार्थियोंको प्रायः सभी सामान्य शिक्षा-सम्बन्धी आधारभूत विषय पढनेका अवसर निश्चित रूपसे मिल सके। त्वरा-लेखन तथा मुद्रलेखन (टाइपिंग) की विशेष योग्यता प्राप्त करना भी आवश्यक है, जो निजी तौरसे अभ्यास द्वारा प्राप्त की जा सकती है। व्यावहारिक अनुभवके लिए निर्धारित समय भी इसमें शामिल रहेगा।

इस शिक्षाक्रमके अध्ययनपर भारतमें विद्यार्थियोंको एक नयी उपाधि

दी जा सकेगी जो 'पत्रकारकलामें बी० ए०' कहलायेगी, या मामूली बी० ए० जिसमें पत्रकारकला तथा कतिपय सामाजिक विषयोंके अध्ययनपर मुख्य रूपसे ध्यान दिया गया हो।

वे विद्यार्थी जिन्होंने दोमेंसे कोई भी एक उपाधि प्राप्त कर ली हो या कॉलेजकी डिग्री प्राप्त वे पेशेवर पत्रकार जो और आगेका प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहते हों, तब वास्तविक स्नातकीय शिक्षाके लिए चुने जा सकगे। यह शिक्षा उन २५ विश्वविद्यालयोंमेंसे, जो पत्रकारीकी स्नातक-पूर्वकी शिक्षा प्रदान करते हैं, कुछ चुने हुए विश्वविद्यालयोंमें ही दी जा सकेगी। इन विद्यालयोंका देशमें इस तरह समान वितरण होना चाहिये जिससे सभी स्थानोंके लोगोंके लिए वे आसानीसे उपलब्ध हो सकें। स्नातक-शिक्षाका यह क्रम ठिकानेसे चलाया जा सकता है पर यह विविध रूपसे विद्यार्थीकी पृष्ठ-भूमिपर अवलम्बित रहेगा।

पत्रकारकलाके विद्यालयों या विश्वविद्यालयीय विभागोंके स्नातक एक या दो वर्षतक पत्रकारीके उन विविध अंगोंका उच्चाध्ययन करेंगे जिनका आरंभ उन्होंने स्नातक-पूर्वकालमें किया था। वे इनमेंसे किसी एकपर विशेष ध्यान दे सकते हैं—मासिक पत्रके सम्पादनका कार्य, दैनिकपत्र सम्बन्धी कार्य, विज्ञापन, प्रचारादि सम्बन्धी काम, या फिर गवेषणविषयक कार्य। जो लोग अपने कार्यके एक हिस्सेके रूपमें कोई गवेषणा ग्रन्थ लिखना चाहें, उन्हें दो वर्ष लगेंगे और उन्हें उस विषयकी ओर संकेत करनेवाली एम० ए० की उपाधि मिलेगी। सामान्य अध्ययन करनेपर जिसमें गवेषणा-कार्य न किया गया हो, पत्रकारकलामें एम०ए० की उपाधि मिलेगी और जिन्होंने गवेषणा कार्य किया हो, उन्हें पत्रकारीमें एम० एस सी० की उपाधि दी जायगी।

अस्वीकृत विश्वविद्यालयोंके ऐसे स्नातकोंको, जिन्होंने कालेजमें रहते हुए पत्रकारीकी शिक्षा नहीं प्राप्त की, इस विषयकी उच्च शिक्षा प्राप्त करनेमें दो या तीन वर्ष लगेंगे। यदि उन्हें शासन, कानून इतिहास, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र या अन्य विषयोंकी जिनकी चर्चा पहले की जा

चुकी है, उपयुक्त शिक्षा न मिल सकी हो, तो उन्हे दो या तीन वर्षमे एम० ए० की उपाधि मिल सकेगी। कितना समय लगेगा, यह इसपर निर्भर होगा कि वे गवेषणा ग्रन्थ प्रस्तुत कर रहे है या नही।

मान्य विश्वविद्यालयोके ऐसे स्नातकोको जिन्होने पत्रकारीका अध्ययन तो नही किया है किन्तु जिन्होंने स्वीकृत पत्रों आदिमे या पत्रकारीसे सम्बद्ध क्षेत्रोमे कमसे कम पॉच वर्षतक काम कर इस पेशेका अनुभव प्राप्त कर लिया है, एक या दो वर्षमे एम ए की उपाधि मिल सकेगी। यह अवधि इस बातपर निर्भर होगी कि उनका सामान्य अध्ययन कितना है तथा नियमित कक्षाओंके बदले किस सीमातक उनका अखबारी काम स्वीकार किया जा सकता है। (इसका निश्चय व्यावहारिक ढगकी परीक्षाओं द्वारा किया जायगा)।

यह बात मान ली गयी है कि जबतक इस कार्यक्रमका विकास होगा, तबतक हिन्दी बहुत हदतक भारतकी राष्ट्रभाषा हो चुकी रहेगी और उसके माध्यमसे उच्च शिक्षा प्रदान करना साध्य हो सकेगा। साथ ही यह भी मान लिया गया है कि पढानेवालोंकी सख्या यथेष्ट रहेगी, साज-सामान तथा साधन भी पर्याप्त होगे। इसलिए आवश्यक है कि विश्वविद्यालयोसे सम्बद्ध ये विद्यालय बडेसे बड़े शहरोंमें तथा ऐसे शहरोमे स्थित हों जहॉ पत्रकारीके, मुद्रणकलाके तथा रेडियोके क्षेत्रोकी अच्छी उन्नति हो चुकी हो, जिससे ये जीती-जागती प्रयोगशालाओंका काम दे सके।

पत्रकारीके स्नातकपूर्व स्तरका विद्यालय चलानेका वार्षिक व्यय अनुमानत एक लाख रुपये होगा। इसमें ४ या ५ पूरा समय देनेवाले अध्यापक, तथा पत्रकारी-क्षेत्रके कई थोडा समय देनेवाले व्याख्याता रखे जा सकेंगे और पत्रकारोके कामकी पुस्तकोका छोटा सा पुस्तकालय रखने, जरूरी सामान खरीदने आदिका खर्च भी चल जायगा।

क्या यह कोरा स्वप्न है? स्वप्न तो यह था ही दुनियाके अन्य बहुतसे देशोंमें भी पर आज नहीं है। भारतके लिए भी इसका स्वप्न बना रहना आवश्यक नहीं।

---

१६. भारतीय पत्रकारीका भविष्य

भारतमें आज पत्रकारीकी स्थिति, जैसा कि श्री वी एस. श्रीनिवास शास्त्रीने कहा था, "एक वृद्धिशील शिशु' के सदृश है। उन्हें इस बातकी बडी चिन्ता थी कि यदि इसके पालन-पोषण या निगरानीकी उचित व्यवस्था न हुई और मनमाने तौर पर इसका विकास होने दिया गया तो कहीं ऐसा न हो कि यह एक "विकलाग एव दुर्दान्त दैत्य" का रूप ग्रहण कर ले।

यह "वृद्धिशील शिशु" बहुत ही निष्प्रभ और दुर्बल, रक्त विहीन सा, है। भारतमें समाचारपत्रोंका वास्तविक रोग है उनकी कम सख्या, उनका कम प्रचार और उनके अपर्याप्त वित्तीय साधन। देशमें थोडे ही तो समाचारपत्र है। इनमे भी उनकी सख्या बहुत कम है जो किसी तरह अपना खर्च चला लेते हो और दो चार-दस पत्र ही ऐसे है जो मजेमें चल रहे हो। इस अप्रिय स्थितिका ही यह परिणाम है कि पत्रकारोंमें स्थायी बेकारी या अर्द्धबेकारी फैली रहती है, इतना कम वेतन उन्हें मिलता है जो लज्जास्पद ही कहा जा सकता है और फरिश्तोंके आगमनकी तरह उन्हें सुख-सुविधाएँ भी बहुत ही कम प्राप्त है।

आइये, हम ब्रिटेन तथा भारतके समाचारपत्रोंकी प्रचार सख्याओंकी तुलना करे। ब्रिटेनमें जहॉ प्रौढोंकी सख्या ३ ६ करोड है, समाचारपत्रोंकी ३ करोड प्रतियॉ प्रति दिन बिक जाती है, जैसा कि श्री गबर्ट सिनक्लेयरने ब्रिटिश रेडियोपर भाषण करते हुए बतलाया था। इसमे १५०० समाचारपत्र तथा ३५०० मासिक पत्रादि शामिल है। इसके विपरीत भारतमे, जिसके प्रौढोंकी सख्या ३० करोड है, कुल ३००० पत्र-पत्रिकाएँ है जिनकी प्रचार-सख्या ३० लाख ही है, जैसा कि दक्षिण भारतीय पत्रकार सघके अध्यक्ष श्री एन. रघुनाथ ऐयरने एक वार्षिक अवि-

वेगनमें कहा था। इसका आशय यह हुआ कि यहाँके सब समाचारपत्रों व पत्रिकाओंकी समवेत प्रचार-संख्या भी ब्रिटेनके अकेले एक पत्र—उदाहरणके लिए 'डेली एक्सप्रेस'—की प्रचार-संख्यासे भी बहुत कम है। यहाँ और वहाँकी स्थितिका यह आकाश-पातालका अन्तर जरा देखिये।

इससे यह बात तो स्पष्ट हो जाती है कि हम इस क्षेत्रमें बहुत ही ज्यादा पिछड़े हुए हैं, किन्तु साथ ही इससे यह भी प्रकट हो जाता है कि उन्नति करनेके लिए हमारे सामने विशाल मैदान पड़ा हुआ है। ज्यों ज्यों लोकतन्त्रका विकास होता जायगा, आर्थिक स्थिति सुधरती जायगी और साक्षरताकी वृद्धि होती चलेगी, त्यों-त्यों भारतमें समाचार-पत्रोंकी संख्या और शक्तिमें तेजीसे उन्नति होना निश्चित है।

प्रक्रियाका धीरे-धीरे होना अनिवार्य है। आज भी बहुतसे लोगोंका यही कहना है कि जिस हिसाबसे देशमें राजनीतिक चेतना फैलती गयी है आर्थिक स्थितिमें सुधार हुआ है और साक्षरता बढ़ी है, उस हिसाबसे समाचारपत्रोंकी प्रचार-संख्यामें कोई अधिक वृद्धि नहीं हुई है। यह एक ऐसी महत्त्वपूर्ण बात है जिसके सम्बन्धमें पूरी-पूरी छानबीनकी आवश्यकता है। स्पष्ट है कि साक्षरता जितनी तेजीसे बढ़ सकती है, उतनी तेजीसे पत्रोंकी ग्राहक-संख्या नहीं बढ़ सकती। इसके विपरीत वे अक्सर बहुत पीछे पड़े रह जाते हैं। फिर भी यह आशा की जा सकती थी कि साक्षरताकी वृद्धिमें तथा समाचारपत्रोंके प्रचारमें एक उचित अनुपात कायम रखा जा सकेगा। भारतमें यह अनुपात कायम नहीं रखा जा सका।

एक भारतीय विज्ञापन एजंसीने समाचारपत्रोंकी प्रचार-संख्याके सम्बन्धमें एक ज्ञापन (मेमोरैण्डम) तैयार किया है जिसमें यह बात मान ली गयी है कि देशमें १५ प्रतिशत व्यक्ति साक्षर हैं और प्रति वर्ष साक्षरतामें कोई ५-६ प्रतिशत वृद्धिकी सम्भावना है। इसका मतलब यह हुआ कि देशमें इस समय ५ करोड़से अधिक व्यक्ति साक्षर हैं, जिनमें अगले सालतक कमसे कम २५ लाख व्यक्ति और बढ़ जायेंगे

और फिर हर साल इसी अनुपातमे उनकी सख्या बढती चलेगी। इन पाँच करोड साक्षरोके लिए इस समय समाचारपत्रोंकी वास्तविक प्रचार-सख्या केवल ३० लाख है। यह सत्य है कि प्रत्येक साक्षर व्यक्ति इस स्थितिमे नही है कि वह समाचारपत्र खरीद सके। किन्तु विज्ञापन एजेंसी-के ज्ञापनमे बताया गया है कि "इस देशमे जिन लोगोंकी आमदनी अपेक्षाकृत बहुत कम है, उनमे भी ऐसी वस्तुओकी आश्चर्यजनक बिक्री होती है जिन्हे हम वास्तवमे विलासकी सामग्री ही कह सकते है।" इसके बाद उसमे यह भी कहा गया है कि "सिनेमा तथा ऐसी ही अन्य विलासकी या आरामकी वस्तुएँ और अशत. समझी जानेवाली विलास वस्तुएँ इतनी लोकप्रिय हैं कि उनके आधारपर यह सुझाव नही दिया जा सकता कि जितने मनुष्योकी कल्पना कोई व्यक्ति कर सकता है, उनमेसे आधे लोगोकी भी हैसियत इतनी गिरी हुई है कि वे एक दैनिक-का या कमसे कम साप्ताहिक पत्रका खर्च भी बरदाश्त न कर सकते हो।"

इसका क्या कारण है कि भारतमे समाचारपत्र उस सीमातक भी उन्नति नही कर सके, जिसतक उन्नति करना यहाँकी परिस्थितियोंमे पूर्णत सम्भव था ? इसका पता लगानेसे बडा लाभ होगा। यदि प्रेस कमीशनकी रिपोर्टमें इस प्रश्नका ऐसा उत्तर मिल सके जिसपर बहुत कुछ भरोसा किया जा सके तो उससे बडी सहायता मिलेगी। भारतमे समस्या यह नही है कि जंगलमे बेतहाशा बढती हुई वनस्पतियोको काट छाँटकर किस तरह ठिकानेका रूप दिया जाय वरन् समस्या इस बातका कारण जाननेकी है कि छोटा पौधा विकसित होकर विशाल-वृक्षका रूप क्यों नहीं ग्रहण करने पाता ?

देशी भाषाओंकी पत्रकारी

वह विशाल वृक्ष बन जा सकता है, इसमे तो सन्देहकी कोई गुंजा-इश ही नहीं। देशी भाषाओंके पत्रोंका भविष्य विशेष रूपसे उत्साहजनक है। साक्षरताकी वृद्धि, जिसकी चर्चा मैं ऊपर कर चुका हूँ, मुख्य रूपसे प्रान्त देशी भाषाओंमें ही हो रही है। साक्षरताकी वृद्धिके आधारपर समा-

नहीं हो पाया है। विदेशी विज्ञापनदाता, जो बहुत सी देशी भाषाओंसे भलीभाँति परिचित नहीं हैं बहुत धीरे-धीरे ही देशी भाषाओंके पत्रोंमें विज्ञापन छपवानेको तैयार हो रहे हैं। भारतीय व्यवसायियोंमें ता विज्ञापन छपवानेकी इच्छाका विकास और भी मन्दगतिसे हो रहा है। इसके सिवा जो लोग देशी भाषाओंके पत्रमें काम करते हैं उनमेंसे अधिकतर साधन-विहीन या अल्प-साधन सम्पन्न ही होते हैं। और वर्तमान विचार-धारा प्रकट करनेके सर्व सम साधनके रूपमें भाषाका पूर्ण विकास होना भी अभी शेष है। इन तथा ऐसी ही अन्य कमियों या त्रुटियोंका वर्णन श्री आर आर भटनागरने अपनी पुस्तक 'दि राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ हिन्दी जर्नलिज्म' में बड़े व्यौरेके साथ किया है।

इन कठिनाइयोंपर धीरे धीरे विजय प्राप्त की जा रही है और हिन्दीकी पत्रकारकला अन्य भाषाओंकी पत्रकारकलाकी तुलनामें भविष्य-का सामना अधिक प्रसन्नताके साथ कर सकती है। राज्यका संरक्षण स्वयं ही उसकी उन्नतिके लिए एक प्रबल सहायक है। इसके कई रूप हैं जिनमें एक है मुद्रलेखन (टाइपिंग) तथा कम्पोजिंगके सुधारके लिए यान्त्रिक सहायता। सरकारी तारघरमें हिन्दीके तार स्वीकार हो किये जाने लगे हैं। सम्भव है कि कुछ ही वर्षोंके भीतर हिन्दीमें समाचारोंका प्रेषण नियमित व्यवस्थाकी वस्तु हो जाय। सारे भारतमें हिन्दीके पत्रों व पुस्तकोंकी बिक्री होती है और अन्य भाषाभाषी क्षेत्रोंमें भी हिन्दीके बड़े केन्द्र विद्यमान हैं, जैसे बम्बई, कलकत्ता और नागपुर। मध्यप्रदेशका उदाहरण लीजिये, वहाँ दो भाषाएँ प्रचलित हैं किन्तु मराठीके केवल दो ही दैनिक निकलते हैं जब कि हिन्दीके चार दैनिक प्रकाशित होते हैं। जैसा कि श्री भटनागर कहते हैं "अन्य सभी देशी भाषाओंकी अपेक्षा हिन्दीकी पत्रकारकलाका भविष्य सबसे अधिक उज्ज्वल है।"

भाग्य देशी भाषाओंके पत्रोंके साथ है। देशी भाषाओंके क्रमशः उन्नतिशील समाचारपत्र जन-जाग्रतिके अनिवार्य एवं अन्यतम भाग हैं, जब धनिकवर्गके पाठकोंकी तलाश न कर समाचारपत्र सामान्य वर्गके

लोगोको सन्तुष्ट करनेका प्रयत्न करेगे। उनकी इस उन्नतिमे नागरिक उड्डयनके एव अन्य सचार-साधनोके विकाससे सहायता मिलेगी। भविष्य देशी भाषाओके पत्रोका है, जो उचित ही है।

फिर भी मै आनेवाले घटनाक्रममे अग्रेजीके पत्रोकी स्थितिके सम्बन्धमे किञ्चिन्मात्र भी निराश नही हूँ। यह ठीक है कि स्वातन्त्र्य-प्राप्तिके साथ-साथ देशी भाषाओके लिए बहुत अधिक उत्साह और अनुराग प्रकट किया गया है। हिन्दीके समर्थक, बहुत अधिक उत्साहसे—एक तरहकी अन्ध-भक्तिसे—प्रेरित होकर जबरन उसकी गति बढाना चाहते हैं और उसके लिए मानों बेमतलबकी उतावली प्रकट कर रहे है किन्तु उन्हे संस्कृतकी यह कहावत बराबर याद रखनी चाहिये, मातृ-भाषाके प्रति प्रेम प्रकट करते समय भी—'अति सर्वत्र वर्जयेत्।'

हिन्दीके विकासका यह अर्थ नही कि अग्रेजी अपने आसनसे नीचे गिरा दी जाय और केवल अग्रेजीको निकाल बाहर करनेसे ही किसी तरह हिन्दीकी उन्नतिमें तेजी नही आ जायगी। इसके सिवा, अग्रेजीको निकाल फेकनेका अर्थ होगा एक प्यारी बहुमूल्य निधिको निष्ठुरता-पूर्वक खो देना। सौभाग्यसे ऐसे लक्षण देख पड रहे है कि देशी भाषाओंके कट्टर उपासकोंको इतनी अधिक छूट न दे दी जायगी कि वे अग्रेजी के साथ मनमाना खेलवाड कर सकें।

कुछ विख्यात शिक्षाविशेषज्ञों तथा वैज्ञानिकोने हालमे ही केन्द्रीय शिक्षामन्त्री मौलाना अबुल कलाम आजादके पास एक पत्र भेजकर अग्रेजीको अपदस्थ करनेकी चेष्टाके सम्बन्धमें अपनी चिन्ता प्रकट की थी और अनुरोध किया था कि उत्तराधिकारमें प्राप्त इस बहुमूल्य सम्पत्तिको सुरक्षित बनाये रखनेके लिए प्रभावकारी उपायोंसे काम लिया जाय। भारतमें अग्रेजीको काफी ऊँचा स्थान प्राप्त है और आगे भी प्राप्त रहेगा। सन् १९५२ में अग्रेजीके दो काफी अच्छे साप्ताहिक पत्र निकाले गये है, एक मद्राससे तथा दूसरा बम्बईसे। उसी वर्ष कलकत्तेके एक अग्रेजी दैनिकने दिल्लीसे भी अपना एक संस्करण प्रकाशित करना-

दिया। १९६३ मे बम्बईके एक अंग्रेजी दैनिकने, जिसका दिल्लीमे संस्करण भी निकलता था, कलकत्तेमे भी एक संस्करण प्रकाशित करना शुरू कर दिया।* ऐसा समझा जाता है कि मद्रासमे भी एक संस्करण निकालनेका उसका इरादा है। ये सब लक्षण अंग्रेजीके घटते हुए प्रभावके द्योतक नहीं माने जा सकते। अंग्रेजी और अंग्रेजीके पत्रोंके भविष्यके सम्बन्धमे मे बिल्कुल ही निराशावादी नहीं हूँ।

भविष्यके समाचारपत्र

भारतमे समाचारपत्रोंका भविष्य उज्ज्वल है। जब प्रश्न यह उठता है कि भविष्यमे हमारे समाचारपत्रोंका स्वरूप क्या होगा। सामान्य रूपमे इसका यही उत्तर दिया जा सकता है कि समाचारपत्रोंका वही रूप होगा जो जनता उन्हे देना चाहेगी। जैसा कि समाचारपत्रोंके पाठकोंके सम्बन्धमे अनुसन्धान करनेवाले श्री मार्क एब्रम्सने ब्रिटिश रेडियोपर भाषण करते हुए कहा है, प्रत्येक समाचारपत्र मुख्य रूपमे अपने पाठकोंके विचारों और रुचियोंके अनुसार ही रूप ग्रहण करता रहा है, कर रहा है और आगे भी हमेशा करता रहेगा। या फिर प्रसिद्ध पत्रकार श्री ए. जे. कमिग्जके शब्दोंमे हम कह सकते हैं कि "भविष्यके समाचारपत्र वैसे ही होंगे जैसे जनता चाहे कि वे हों। लोकतन्त्रात्मक राष्ट्रको वैसे ही समाचारपत्र मिलते हैं और वैसी ही सरकार भी जैसे पत्र और जैसी सरकार पानेके योग्य वह हो।" यह अक्सर कही सुनी-सी बात जान पड़ती है। ठीक है, पर यह ऐसी सत्य बात है जो अटल है। समाचारपत्रोंका स्तर प्राय राष्ट्रके सार्वजनिक जीवनके स्तरसे भिन्न नहीं हो सकता। कुछ आदमी बड़े अच्छे और उदारमना होते हैं। दूसरे इतने सज्जन और उदार नहीं होते। कुछ ऐसे भी होते हैं जो अपराध करते हैं और मंत्रियों-पर अनुचित प्रभाव डालनेका प्रयत्न करते हैं। इसी तरह समाचारपत्रोंमे भी सामान्य रूपमे ऊँचा स्तर सर्वत्र और सर्वदा नहीं पाया जा सकता।

* 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' की ओर संकेत है। हालमे कलकत्तेमे इसका प्रकाशन बन्द कर दिया गया है।

कुछ पत्र ऐसे होते ही हैं जो अत्यन्त घृण्य मनोवृत्ति या रुचि प्रकट करते हैं।

यदि जनताको वैसे ही अखबार मिलते हैं जैसेके योग्य वह होती है, तब उसकी यह भारी जिम्मेदारी होती है कि वह स्वतन्त्र, स्वाधीन और उन्नतिशील समाचारपत्रोंके निर्माणमें सहयोग करे। स्वतन्त्र और समुन्नत समाचारपत्र जनताके अधिकारोंके सर्वोत्तम संरक्षक और प्रत्याभू (गारंटर) होते हैं। टामस जेफरसनने एक बार कहा था—"यदि मुझसे इस बातका अभिनिश्चय करनेके लिए कहा जाय कि हम लोगोंको बिना समाचारपत्रोंकी सरकार पसन्द करनी चाहिये या बिना सरकारके समाचारपत्र, तो मैं एक मिनटके लिए भी असमञ्जसमें पड़े बिना दूसरी बातको ही पसन्द करूँगा।" यह बात एक राष्ट्रनेताने कही, पत्रकारने नहीं, इसीसे इसका विशेष महत्त्व है। बहुतोंकी ओरसे कहा जा सकता है कि यह अत्युक्ति है। यदि हाँ, तो यह एक सत्य बातकी ही अत्युक्ति है।

समाचारपत्र वास्तवमें स्वतन्त्र और स्वाधीन नहीं रह सकते, यदि भिखारियोंकी तरह हर बड़े आदमीकी फरमाइशपर उन्हें नाचते रहना पड़े। यदि ऐसा हो तो एक दिन उन्हें गुलाम बन जाना पड़ेगा और गुलाम समाचारपत्र भारी विपत्ति बुलानेके सबसे बड़े साधन हो सकते हैं। स्वतन्त्र राष्ट्र स्वतन्त्र समाचारपत्रोंके बिना अधिक समयतक अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा नहीं कर सकता। इसका आशय स्पष्ट है। समाचारपत्रोंको जनताका अधिकाधिक समर्थन प्राप्त होते रहना चाहिये, आर्थिक सहायता या कृत्रिम पोषणके रूपमें नहीं, वरन् स्थिर रूपमें बढ़नेवाली ग्राहकसंख्या (अर्थात् पैसा देकर अखबार पढ़नेवालोंकी संख्या) के रूपमें।

समाचारपत्र प्रायः अकेले ही लड़ाई लड़ते हैं किन्तु यह संघर्ष केवल अपने लिए ही नहीं होता। सब तरहका आघात सहते हुए समाचारपत्र जनताकी लड़ाई लड़ते हैं, अतः जनताका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह यह बात समझे, और समझनेका सबूत भी दे, कि समाचारपत्र सच-मुच ही जनताके अधिकारोंके संरक्षक हैं। यह बात किसी ८

अबतक जनता अभी समझ नहीं सकी है। हालमें ही जब (अपराधोंको उभाडनेवाले) समाचारपत्रो सम्बन्धी विधेयकको लेकर आलोचकोंसे अकेले ही सरकारने लोहा लेना पडा, तब यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जनताने बहुत ही कम उसका साथ दिया। समाचारपत्रोंका मुँह बन्द करनेवाले इस भद्दे कानूनके विरोधमें जनताने छोटी उँगली भी नहीं उठायी। उसने अदबके साथ किन्तु गलत रूपमें यह समझ लिया कि यह तो समाचारपत्रो और सरकारका आपसका मुष्टियुद्ध है जिसमें हिस्सा ग्रहण करना उसके लिए अनावश्यक है। भारतके स्वतन्त्र हो जानेके बाद भी ऐसा हुआ, यह बडे दुःखकी बात है। जनताको स्वयं इस बातकी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये और उसे भलीभाँति सिखा भी दिया जाना चाहिये कि वह उदासीनताको अपना यह भाव छोडकर स्वतन्त्रताके प्रहरीके रूपमें स्वाधीन एवं सुदृढ समाचारपत्रोंकी स्थापनामें सहायता करे।

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारीने गृहमन्त्रीकी हैसियतसे इस विधेयकको प्रस्थापित करते हुए कहा था कि यह फसलको नुकसान पहुँचानेवाले पक्षियोंको डरानेके लिए एक तरहका धोखा मात्र है जिससे फसल तैयार करनेवाले किसानोंकी खुद अपनी कोई क्षति न होगी। किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि जो समाचारपत्रवाले बेचारे अधिक साहसी नहीं हैं वे भयभीत होकर जनताके प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करनेमें वंचित हो जायँगे। स्वतन्त्र भारतकी लोकतन्त्रात्मक सरकारको ही यह श्रेय प्राप्त है कि उसने यह आपत्तिजनक विधान सर्विधान संहिता (स्टेटयूट बुक) में सन्निहित कराया। इसका मतलब यह हुआ कि स्वतन्त्र देशमें भी समाचारपत्रोंकी स्वतन्त्रताके लिए भय या खतरा रत्ती भर कम नहीं है। प्रेमकी तरह समाचारपत्रोंकी स्वतन्त्रता भी हर बार नये सिरेसे प्रयत्न कर प्राप्त करनी पडती है।

फिर भी यह स्पष्ट है कि लोकतन्त्र प्रणालीमें सरकारको यह बात समझ लेनी चाहिये कि स्वयं लोकतन्त्रके ही हितमें उसका यह कर्त्तव्य

हो जाता है कि वह स्वतन्त्र और स्वाधीन समाचारपत्रोकी स्थापनामे सहायता करे। सरकार यह बात समझ रही हो, इसका कोई प्रमाण हमे दिखाई नहीं दे रहा है। हमारे कानोमे यह बात जोर जोरसे सुनाकर कही जा रही है कि समाचारपत्रोको भी सामान्य नागरिकसे अधिक अधिकार प्राप्त नहीं हो सकते। इसलिए समाचारपत्रोकी भलाईके लिए कानून बनानेकी आवश्यकतापर क्यों जोर दिया जाय? ठीक है, समाचारपत्र भी इस बातके लिए खुशीसे तैयार है कि देशका सामान्य कानून ही उनपर भी लागू हो। वे अपने लिए कोई विशेष अधिकार और सुविधाएँ नहीं माँगते। वे केवल कुछ विशेष दण्डोसे ही मुक्ति चाहते है। समाचारपत्रो सम्बन्धी कानून उडा दिये जाने चाहिये। यदि वे कानून नहीं रह जाते, तो उनके साथ ही समाचारपत्रों सम्बन्धी परामर्श समितियोंकी भी आवश्यकता नहीं रह जाती। सरकारने प्रेस-कमीशन (समाचारपत्रों सम्बन्धी आयोग) के विचारणीय विषयोमे 'समाचारपत्रो तथा सरकारके बीच सम्पर्क-स्थापन' और 'समाचारपत्रो सम्बन्धी परामर्श समितियों तथा सम्पादक-सम्मेलनों या पत्रकार सघोका कार्य-सचालन' भी रखा है। अब विचार करनेकी बात यह है कि किसी भी लोकतन्त्रात्मक देशके स्वतन्त्र समाचारपत्र, शान्तिकालमे, सरकारसे सम्पर्क-स्थापनकी बात नहीं सोचते और न समाचारपत्रो सम्बन्धी परामर्श समितियोंकी बात हो उनके दिमागमें आती। और जैसा कि प्रेस कमीशनपर टीका-टिप्पणी करते हुए 'साउथ इण्डियन जर्नलिस्ट' ने लिखा था—'पत्रकारोंकी समितियों, सघटनोके सम्बन्धमें सरकार अपनी नाक घुसेडनेकी जितनी कम चेष्टा करे, उतना ही इनके हकमे अच्छा हो।'

समाचारपत्रोंका उत्तरदायित्व

यह तो हुई स्वतन्त्र और स्वाधीन समाचारपत्रोके विकासमे जनता तथा सरकारकी जिम्मेदारीकी बात। अब प्रश्न यह है कि स्वय समाचारपत्रोंकी भी कोई जिम्मेदारी है या नहीं? समाचारपत्रोको, जिन्हें वर्त्तमान इतिहासका विवरण छापना पडता है, कुछ निश्चित आदर्शोंका निर्वाह

करना पड़ता है। जनता यह बात चाहती है, इस आधारपर उन्हें उसकी अशिष्ट और अशोभन इच्छाओंकी पूर्ति न करते जाना चाहिये। लार्ड रोजबरी कहा करते थे—'मुझे समाचारपत्रोंकी ताकतमें विश्वास है पर उससे भी अधिक मुझे उनके उत्तरदायित्वपर विश्वास है।' वह बड़ा अशुभ दिन होगा जब समाचारपत्र अपनी जिम्मेदारीका भाव खो बैठें, क्योंकि यदि नमक ही अपना स्वाद खो बैठे, तब और कौन-सी ऐसी चीज है जिससे उसकी लवणता वापस लायी जा सके?

पत्रकार यदि चाहे तो उलटकर अपने आलोचकोंको यह जवाब दे सकता है, पर ऐसा करना उसके लिए उचित न होगा, कि यदि आप ईमानदार हों तो आपको पाठकोंकी भी भर्त्सना करनी चाहिये, क्योंकि समाचारपत्र तो वही देते हैं जो वे (पाठक) चाहते हैं। वस्तुतः समाचारपत्रका उद्देश्य वही होना चाहिये जो लन्दनका 'टाइम्ज' अपना आजका और युगोंसे चला आनेवाला पुराना उद्देश्य बतलाता है—"सबसे पहले समाचार प्रकाशित करना किन्तु सबसे उतावलीमें नहीं, जो कुछ कहना उसमें गम्भीरता तो हो किन्तु मनहूसियत न हो, लोगोंको फुसलानेका प्रयत्न करना किन्तु बेमतलब अपने ही सिद्धान्तोंपर जोर न देते रहना, अपने मतका दृढ़तासे समर्थन करना किन्तु आपेसे बाहर न हो जाना, ठीक ठीक चित्रण करना पर केवल सनसनीखेज बनानेके लिए नहीं, कथानक तो देना पर उसका झूठा या बनावटी अंश उड़ा देना, कोई भी मनोरंजक बात छूटने न देना और छोटी छोटी बात भी उचित अनुपातमें रहने देना, ईमानदारीसे और पूरा पूरा समाचार देना किन्तु मानव-स्वभावके निकृष्टतम पहलुओंको प्राधान्य न देना।" यही 'टाइम्ज' का लक्ष्य है और यही प्रत्येक अच्छे समाचारपत्रका लक्ष्य होना चाहिये।

आज हम इस सुनहले आदर्शसे बहुत दूर हैं। इस पेशेकी पुरानी परम्परा बड़ी गौरवमयी रही है जिसके निर्माणमें सुख्यात पत्रकारोंके सुदृढ़ हाथ रहा है। अखबारी दुनियामें काम करनेवाले आजके नेताओंको भी चाहिये जैसा कि श्री वी एस श्री निवास शास्त्रीने एक

वार सुझाया था, कि वे समाचारपत्रोको 'दुर्दमनीय दैत्य' का रूप ग्रहण करनेसे वचानेका उपाय करें और ऐसा प्रयत्न करें जिससे सार्वजनिक मतका यह स्रोत स्वच्छ एव निर्मल बना रहे और आवश्यकता होने पर समय समयपर अपने आपको परिष्कृत कर लेनेमे समर्थ हो।

यह प्रश्न प्रेस कमीशनके विचारणीय विषयोमे सम्मिलित कर लिया गया है जिसे "उच्चस्तर बनाये रखनेकी व्यवस्था या साधन" पर भी विचार करना है। पत्रकारोके आचार-व्यवहारका नियन्त्रण करनेके लिए पत्रकारोकी एक नीति-सहितापर इधर कई वर्षोंसे विचार होता रहा है। अखिल भारतीय सम्पादक-सम्मेलनने इस दिशामे कुछ महत्त्वपूर्ण प्रारम्भिक काम किया है। जैसा कि सम्मेलनके एक पुराने सभापति श्री सी आर श्रीनिवासन कहते हैं, वाइविलमे दिये गये दस समादेश कदाचित् इस सहिताके अप्रत्यक्ष आधार वनाये जा सकते हे और हमारे अपने धर्मग्रन्थामे आचारके इन दो नियमोको सामने रखकर उसके प्रत्यक्ष आधारपर जोर डाला गया है, 'सत्य वद, धर्म चर' (सच्ची वात कहो, और अपने कर्त्तव्यका पालन करो)।

कुछ लोगोने यह सुझाव रखा है कि पेशेवर लोगोके आचार-व्यवहारका नियन्त्रण करनेके लिए, मेडिकल कौन्सिल और वार कौन्सिलकी ही तरह प्रेस कौन्सिल भी कानूनन स्थापित की जानी चाहिये। कुछका सुझाव है कि समाचारपत्रोंकी यह परिषद् स्वेच्छया स्थापित की जानी चाहिये। ब्रिटेनमें ससदके एक सदस्यने कानूनन प्रेस कौन्सिलकी स्थापनाके लिए विधेयक उपस्थापित किया था किन्तु वातचीतमें ही उसका अन्त हो गया। ब्रिटिश प्रेस कमीशनका सुझाव है कि परिषद्की स्थापना स्वेच्छासे की जानी चाहिये और इस सम्बन्धमे वहाँ ऐकमत्य सा जान पडता है। यह सच है कि स्वेच्छासे स्थापित परिषद्मे दण्ड देनेकी क्षमता न होगी, फिर भी ऐसी प्राधिकृत सस्था द्वारा उसका अपना निर्णय प्रकाशित किये जानेकी सम्भावनासे ही उन पत्रोंको काठ-सा मार जायगा जो पत्रकारकलाके नीतिशास्त्रकी उपेक्षा करनेका प्रयत्न करते हे।

स्वीडनमे एक स्वेच्छा स्थापित 'सम्मानका न्यायालय' है, जो सन् १९१६ से विद्यमान है। यह संस्था, जिसे सरकारी तौरसे 'समाचारपत्रोंके समुचित आचारों-व्यवहारोंका आयोग' का नाम दिया गया है, पत्रकारों, प्रकाशकों और देशकी सबसे पुरानी समाचारपत्रोंकी संस्थाके सम्मिलित सहयोगसे स्थापित की गयी थी, जैसा कि 'इण्टरनेशनल प्रेस इन्स्टिट्यूट' की सन् १९५२ की एक आधिकारिक विज्ञप्तिमे कहा गया है। फिर भी सरकारकी ओरसे उसे मान्यता दी गयी है और उसे सीमित क्षेत्रमें कुछ कानूनी अधिकार भी प्राप्त है। उसके निर्णयका प्रकाशन ही उसकी दण्ड देनेकी क्षमता है। दण्ड देनेकी उसकी इस शक्तिका समर्थन करते हुए एक आलोचकने लिखा है "यदि यह बात सत्य है कि अनाचार, अत्याचार आदिका भण्डाफोड़ करनेसे ही समाचारपत्र जीवित रहते है तो यह बात भी कम सत्य नही है कि वे उसी तरह शैतानों तथा भेड़ियोंसे (प्रलोभनों तथा धमकियोंसे) भी अपनी रक्षा कर सकते है।"

इतना आशावादी होना आसान नहीं। कितने ही लोगोंका खयाल है कि जब पत्र और पत्रकार आपसमें ही एक दूसरेकी आलोचना करना और दोष देना शुरू कर देंगे तो इससे पत्रोंकी प्रतिष्ठाको ठेस लगे बिना न रहेगी। कुछ लोग पूछते है कि क्या ऐसा नही हो सकता कि एक कुत्ता दूसरे कुत्तेको काटनेसे ही इनकार कर दे? ब्रिटिश प्रेस-कमीशनकी रिपोर्ट प्रकाशित हुए तीन वर्ष हो गये, फिर भी वहाँ प्रेस-कौंसिल स्थापित करना अभीतक सम्भव नहीं हो सका है। कौंसिल स्थापित करना तो आसान हो सकता है पर उसे प्रभावोत्पादक बनाना कठिन है। उसकी प्रभावकारिता मुख्य रूपसे उन लोगोंके व्यवहार और उसे सफल बनानेके उनके सकल्पपर ही अवलम्बित है जिनकी ओरसे या जिनके लिए वह काम करेगी।

आदर्शोंकी बात छोड़ दें तो भी भविष्यके पत्रोंको बेहतर और अधिक सुन्दर, नेत्रोंके लिए अधिक आकर्षक और मनके लिए अधिक आसान,

बनना पड़ेगा। समाचारों और घटनाओंके सरल ढंगसे दिये गये विव-रणोंके सिवा, जो ठिकानेसे सजाये गये और प्रदर्शित किये गये हों तथा जो सचित्र भी हों, समाचारपत्रोंको जीवनके सब अंगोंकी तरफ समुचित ध्यान देना चाहिये, क्योंकि जीवन—विविध क्रियाकलापोंसे युक्त सम्पूर्ण जीवन— ही तो वह कच्चा माल है जिसे लेकर पत्रकार अपना काम करता है। समाचारपत्रोंको देशके निवासियोंकी सामान्य मानसिक एवं नैतिक आवश्यकताओंका अविभाज्य अंग बनना होगा।

समाचारपत्रको सामान्य मनुष्यकी सेवा करते हुए बीच बाजारमें उतर आना पड़ेगा। इसका मतलब यह हुआ कि जिस भाषाका प्रयोग किया जाय वह सीधी-सादी, घुमाव-फिरावसे रहित और आसानीसे समझमें आजाने योग्य होनी चाहिये। मार्क एब्रम्सने अपने एक हालके परीक्षणके परिणामकी चर्चा करते हुए कहा है कि ग्यारह वर्षकी स्कूली लड़कियोंके एक समूहने जब व्यापक प्रचारवाले प्रौढ़ोंके समाचारपत्रोंमें सम्पादकीय लेख तथा टिप्पणियाँ पढ़ीं तो केवल दो प्रतिशत शब्द ही ऐसे निकले जो उनकी समझमें नहीं आये। एक सुप्रसिद्ध सम्पादकने मुझसे एक बार कहा था कि भारतवर्षमें हमारा लक्ष्य ऐसी सरल अंग्रेजीका प्रयोग होना चाहिये जिसे मैट्रिक पास औसत व्यक्ति समझ ले। अन्य तरहसे भी समाचारपत्रोंको बदली हुई स्थितिके अनुसार अपने रूप रंग और वर्ण्य विषयों आदिमें सुधार कर लेना चाहिये। राजनीतिक वार्तापर बहुत अधिक जोर देना, जो भूतकालमें सकारण और उपयुक्त था, अब बन्द हो जाना चाहिये। आप यदि अपने पाठकोंको अन्तराष्ट्रीय घटनाओंके या संसदीय वाद-विवादके समाचार और राजनीतिक टीका-टिप्पणी-की बात ही सुनाते रहें, समाजमें जो बहुमुखी क्रान्ति हो रही है उसकी कोई खबर उन्हें न बताव, तो इससे उनका सन्तोष नहीं हो सकता।

वह प्रक्रम, जब बहुतसे समाचारपत्र समाचार समितियों द्वारा प्रेषित समाचारोंकी आधिकारिक विज्ञप्तियोंसे कुछ ही अधिक महत्वके होते थे, अब धीरे-धीरे तिरोभूत होता जा रहा है, यह हर्षका विषय है। अधिक

सम्पन्न और प्रयत्नशील पत्रोने ससारकी प्रमुख राजधानियोमे अपने निजी सवाददाता रख छोडे है। इस दिशाकी ओर और अधिक प्रगति होना, जिसके लिए धनकी आवश्यकता है, स्वस्थ विकासका लक्षण होगा। जब तक यह उन्नति हो, तब एक एशियाई देशोसे प्राप्त समाचारो और पश्चिमी देशोके समाचारोमे सन्तुलन बनाये रखनेका प्रयत्न करते रहना चाहिये। आज हमारे पत्रोमें जाग्रत एशियाके बहुत कम समाचार प्रकाशित होते है। यह एकागीपन शीघ्र दूर हो जाना चाहिये।

यह सुझाव बडी राजधानियोमे निकलनेवाले या राष्ट्रीय पत्रोपर विशेष रूपसे लागू होता है। ऐसे समाचारपत्र, अपने राष्ट्रीय स्वरूपके ही कारण, स्वभावत सख्यामे कम होगे। अधिक बडी सख्या तो ऐसे पत्रोकी होगी जो या तो प्रान्तीय होगे या जिलो और छोटे शहरोके पत्र होगे। जैसा कि मैने नागपुरमे जून १९५२ मे हुए मध्य प्रदेशके श्रमजीवी पत्रकारोके प्रथम वार्षिक समारोहमें अध्यक्षपीठसे भाषण करते हुए कहा था, मेरा यह पक्का विश्वास है कि भविष्य छोटे समाचारपत्रोके साथ है। 'हिन्दू' के मुख्य सहायक सम्पादक, स्वर्गीय श्री के० पी० विश्वनाथ ऐयर मुझसे कहा करते थे कि जिलेके समाचारपत्रोमे, जिसका लक्ष्य सीमित क्षेत्रके और स्थानीय पाठकोतक पहुँचना ही होता है, समाजकी निकटतम सेवा करनेके लिए विशाल क्षेत्र और अगणित अवसर उपलब्ध हो सकते है। अमेरिकामे भी, जहाँ समाचारपत्रोकी शृंखलाएँ मोटी और लम्बी है, छोटे नगरोके समाचारपत्र, अमेरिकन समाचारपत्रोकी सस्थाके भूतपूर्व सभापति श्री ई० एम० फ्रेडलीके शब्दोमे "पत्रकारकलाकी वे बुनियादी जड है जिनसे समाचारपत्रोके समस्त कार्यको शक्ति और बल प्राप्त होता है।" एक प्रसिद्ध विज्ञापन-समितिके उपसभापतिने हालमे ही कहा था कि मै 'बडे जोरोसे छोटे नगरोमे प्रकाशित होनेवाले समाचारपत्रोके पक्षमें हूँ।" अमेरिकामे जो १७७२ दैनिक पत्र निकलते है, उनमेसे लगभग १५०० ऐसे है जो ५० हजारसे भी कम आबादीवाले नगरोमे प्रकाशित होते है। गाँवोमे प्रकाशित होनेवाले ८॥

अन्य स्थानोंपर भी अखबारी कागज तैयार करनेके कारखाने खोलनेकी सम्भावनाका पता लगानेकी चेष्टा हमें करनी चाहिये। इस आशयके सुझाव दिये गये हैं कि एक या दो विशाल कारखाने खोलनेके बजाय विविध स्थानोंपर छोटे-छोटे कई कारखाने खोल देना ज्यादा अच्छा होगा।

पत्रकारीकी शिक्षा

अब मैं दूसरे प्रश्नकी ओर बढ़ता हूँ जो भारतमें समाचारपत्रोंकी भावी उन्नतिके प्रसंगमें विशेष महत्त्वका है। वह प्रश्न है पत्रकारी सम्बन्धी प्रशिक्षणका। भारतके कितने ही समाचारपत्रोंपर नवसिखुए कार्यकर्त्ताओंकी अयोग्यताकी जो छाप लगी रहती है, और जिसका हमें बड़ा दुःखद अनुभव है, उसके लिए मुख्य रूपसे जिम्मेदार वह आधुनिक तरीका है जिसके जरिये हम पत्रके सम्पादकीय विभागमें कर्मचारियोंकी भरती करते हैं और यह नहीं देखते कि उन्हें पत्रकारीकी कोई शिक्षा मिली है या नहीं। यह गलती अब हम धीरे-धीरे महसूस करने लगे हैं। पाँच विश्वविद्यालयोंमें आज पत्रकारकलाकी पढ़ाई आरंभ कर दी गयी है। सबसे अच्छी और सबसे वैज्ञानिक तरीकेपर संचालित कक्षा वह है जो नागपुरके हिस्लॉप कालेजमें आरम्भ की गयी है। हिस्लॉप कालेजकी योजना स्वयं ही उस बीजका अंकुरित रूप है जो कई वर्ष पहले उस समय बोया गया था जब नागपुर विश्वविद्यालयने पत्रकारीका शिक्षाक्रम आरंभ करनेका विचार किया और विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त कमेटीके संयोजक रूपमें मैंने इसकी एक योजना उपस्थित की। बादमें अखिल भारतीय सम्पादक-सम्मेलनके बंगलोरवाले अधिवेशन (१९४९)में मैंने पत्रकारकला-विद्यालयकी स्थापनाके सम्बन्धमें एक प्रस्ताव उपस्थित किया। प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और रिपोर्ट तैयार करनेके लिए मेरे संयोजकत्वमें एक उपसमिति बना दी गयी। रिपोर्ट तैयार हुई और यथासमय पेश भी कर दी गयी। दुर्भाग्यवश कितने ही कारणोंसे, जिनकी समीक्षा करना यहाँ अनावश्यक है, उस रिपोर्टका कोई भी प्रतिफल अभीतक

करते है कि इस तरहकी आशंका करनेके लिए कोई कारण नहीं है कि समाचारपत्रोंकी ये शृंखलाएँ सारे देशमें फैल जायँगी और समस्त छोटे-छोटे पत्रोंको उसी तरह निगल जायँगी जिस तरह बडी मछलियाँ छोटी मछलियोंको निगल जाती है। कुछ ऐसे लोग भी है जो मेघमालामें विद्युत्की रेखा देखते हुए कहते है कि समाचारपत्रोंके ये बडे-बडे मालिक पत्रकारोंको अधिक अच्छा वेतन देते है जिसका अनिवार्य परिणाम यह होता है कि अन्य छोटे-छोटे मालिकोंपर भी इसका प्रभाव पडता है और उन्हें भी पारिश्रमिकमें किञ्चित् वृद्धि करनी पड़ती है। जो भी हो, समाचारपत्रोंकी शृंखलाओंके सम्बन्धमें, जो इस समय विद्यमान हैं, हमें इस तरह भयभीत न हो जाना चाहिये कि हमारा ध्यान भारतीय समाचारपत्रोंकी वास्तविक समस्याओंकी तरफसे हट जाय।

देशमें चारों तरफ फैले हुए छोटे-छोटे समाचारपत्रोंकी स्थापनाके सम्बन्धमें मैंने जो कल्पना की है, उसके पूर्ण होनेमें सस्ते अखबारी कागजकी अधिक उपलब्धि होनेसे विशेष सुविधा होगी। आज हमें प्रति वर्ष कोई ९० हजार टन अखबारी कागजकी आवश्यकता पडती है, जो सबका सब हमें बाहरसे मँगाना पडता है। समाचारपत्रोंकी वृद्धिके साथ-साथ अखबारी कागजकी खपत भी बढती जायगी, यह उसी तरह निश्चित है जिस तरह दिनके बाद रातका होना। कुछ लोगोंने अखबारी कागजको लोकतन्त्रका 'कच्चा माल' माना है और यह ठीक ही है। इस बातकी चेष्टा करना सरकारका तथा उद्योगपतियोंका कर्त्तव्य होना चाहिये कि यह कच्चा माल पर्याप्त परिमाणमें समाचारपत्रोंको प्राप्य हो सके।

यहाँ मै मध्यप्रदेशीय सरकारकी सहायतासे खोले जानेवाले उस कारखानेकी थोडी-सी चर्चा कर देना चाहता हूँ जिसमें प्रतिदिन १०० टन (२७२५ मन) अखबारी कागज तैयार किया जायगा। इसमें लगभग ६ करोड रुपये खर्च बैठेगा। इस नेपा मिल्ससे हमारी वर्त्तमान आवश्यकताके लगभग तृतीयांशकी पूर्त्ति हो सकेगी। सन् १९५४ के उत्तरार्द्धमें इसका उत्पादन शुरू हो जानेकी आशा है। मेरा आग्रह है कि

सामने नहीं आया है। मै केवल यही आशा कर सकता हूँ कि रिपोर्टपर शीघ्र ही विचार किया जायगा।

पत्रकारकलाकी शिक्षामे मेरा पक्का विश्वास है। वे लोग भी जो यह दलील दिया करते है कि समाचारपत्र-कार्यालयमे ही पत्रकारोको सबसे अच्छी शिक्षा प्राप्त की जा सकती है, इस बातमे सहमत होगे कि हिस्लॉप कालेजकी योजनामे जो शिक्षाक्रम रखा गया है उससे कार्यकर्त्ताओकी दक्षतामे काफी वृद्धि हो जायगी। श्री एन रघुनाथ ऐयरने तो, जिन्होने हिस्लॉप कालेजके शिक्षाक्रमका उदघाटन किया था, यहॉतक कहा था कि पत्रकारोकी शिक्षा उन आधारभूत सास्कृतिक क्रियाकलापोमे गिनी जानी चाहिये जिनसे नये समाजका निर्माण होता है। ऐसे सुयोग्य और कार्यक्षम कार्यकर्त्ताओका दल तैयार करना जो लोकतन्त्र शासनप्रणालीके अन्तर्गत स्वतन्त्र समाचारपत्रोकी भारी जिम्मेदारियॉ अच्छी तरहसे और सचाईके साथ पूरी कर सके, बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य है।

अभिपदो (सिण्डिकेट्स) की स्थापना

लघु कथाएँ, विशेपलेख, व्यग्यचित्र तथा विनोद चित्रावली (कॉमिक स्ट्रिप) उपलब्ध करनेके लिए अभिपदोके विकासकी ओर भी ध्यान दिया गया है। क्षेत्रीय समाचारपत्रोकी उन्नति होने पर, जिनके महान भविष्यकी आशा मै कर रहा हूँ, इन अभिपदोकी सेवाकी आवश्यकता होगी और इनके निर्माणमे उन्हे भी अच्छी सहायता मिलेगी। क्षेत्रीय समाचारपत्रोके पास इतना पैसा तो हो नहीं सकता कि वे दिनभर काम करनेवाले कर्मचारी रखकर कथा-कहानी, प्रासगिक लेख आदि तैयार कराये। ये चीजे उन्हे किसी केन्द्रीय सस्था या ऐसी सस्थाओसे प्राप्त हो सकती है जो इस तरहकी सामग्री तैयार करनेके लिए विशेपज्ञोसे काम ले सकती है। व्यग्यचित्र तथा विनोद चित्रावलीके सामने भाषा सम्बन्धी बाधाऍ टिक नहीं सकतीं, अत उनके ग्राहक सारे देशमे मिल सकते है। किसी विशेप भाषाके क्षेत्रके लिए अभिपदको उक्त क्षेत्रकी भाषामे ही सामग्री जिसमे

समाचारपत्र "अभी कई युगोंतक अधिक शक्तिशाली बना रहेगा, क्योंकि वह दोनोंमे ज्येष्ठ है।"

इसके साथ मै यह भी जोड देना चाहता हूँ कि समाचारपत्र केवल इसीलिए अधिक शक्तिशाली न बना रहेगा कि वह दोनोंमे ज्येष्ठ है, वरन् इसलिए भी कि वह पाठकोंको विशेष सुविधाएँ और विशेष लाभ प्रदान करता है। रेडियो सुननेवालेको प्रसारणके समय और सुननेके स्थानके अनुसार अपना प्रबन्ध करना पडता है, किन्तु पाठक जहाँ चाहे वहाँ अपना अखबार ले जा सकता है, जब अवकाश हो तब उसे पढ सकता है और जो हिस्सा उसे अधिक पसन्द हो उसे दुबारा भी पढ सकता है। 'रेडियो समाचारपत्र' नामक चीजके चल पडने और उसके सम्भावित विकाससे भी स्थितिमे परिवर्त्तन नहीं होता, क्योंकि समाचार-पत्र अधिक सामग्री और अधिक प्रकारकी सामग्री दे सकता है।

फिर भी यह सच है कि इस युगमे जब समाचारोंका शीघ्रसे शीघ्र पहुँचाना अधिक महत्त्वकी चीज है तब इस काममे रेडियो कभी कभी समाचारपत्रसे बाजी मार ले जाता है। परन्तु इस तरह कभी कभी रेडियोसे पिछड जानेका भी यह उलटा परिणाम होता है कि पाठककी भूख बढ जाती है और वह किसी महत्त्वपूर्ण घटनाके घटित होनेपर उसका अधिकाधिक ब्यौरा फुरसतके समय अपने प्रिय पत्रमे पढना चाहता है। यह भ्रम कि रेडियो तथा समाचारपत्र दो प्रतिद्वन्द्वी वस्तुएँ है, बहुत पहले ही दूर किया जा चुका है।

सबसे हालके सरकारी आँकडोंके अनुसार भारतमें इस समय कुल ६,५८,५०८ अनुज्ञाप्राप्त रेडियो यन्त्र है और १९५१ की जनगणनाके अनुसार देशकी कुल आबादी ३५६ करोड है। तात्पर्य यह कि प्रत्येक ५०० व्यक्तियोंके पीछे एक रेडियो सेट यहाँ है, जब कि अमेरिकामे ९८ प्रतिशतमे भी अधिक परिवारोंके पास अपने-अपने रेडियो है।

यहाँ भी बडी-बडी सम्भावनाओंका क्षेत्र सामने आता है। निरक्षरता जो हमारे रास्तेमे एक बडी दरार है, रेडियोके प्रयोगमे बाधक नहीं,

जैसी कि वह समाचारपत्रोंके प्रसारमें है। देहातोंके बड़े-बड़े क्षेत्रोंमें समाजके प्रयोगके लिए रेडियो यन्त्र स्थापित किये जा सकते हैं और वहाँ शैक्षणिक प्रभाव फैलाया जा सकता है। आकाशवाणीके क्षेत्रीय केन्द्रोंको देहाती कार्यक्रमपर अधिक जोर देना चाहिये। आज भी देहातोंकी ओर कुछ झुकाव तो है किन्तु उसे और अधिक स्पष्ट तथा सुगठित होना चाहिये। और भी अधिक पंचायती रेडियो सेट बैठाये जाने चाहिये और ऐसा एक भी गाँव न रहने देना चाहिये जिसका सम्पर्क रेडियोसे न हो। केन्द्रीय सरकार, राज्योंकी सरकारों और स्थानीय प्राधिकारियोंको इस विषयकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिये।

रेडियो खरीद सकनेकी सामर्थ्यके अनुसार ही रेडियो रखने और उसका प्रयोग करनेकी प्रवृत्ति सीमित होती है। आज रेडियो यन्त्र बड़े महँगे मिलते हैं। सस्ते रेडियो यन्त्र उपलब्ध कर दिये जानेका प्रश्न, ताकि सामान्य स्थितिके लोग भी उन्हें खरीद सकें, ऐसा प्रश्न है जिस-पर गम्भीरतापूर्वक विचार होना चाहिये। स्थानीय वार्त्ता सुन सकने योग्य छोटे-छोटे यन्त्रोंसे हमारी आवश्यकताओंका बड़ा भाग पूरा किया जा सकता है। इस दिशामें अभीतक जो प्रयत्न किये गये हैं, वे जारी रहने चाहिये और जितना जल्दी सम्भव हो सके, उतनी जल्दी सस्ते रेडियो यन्त्र बाजारमें विक्रयार्थ रख दिये जाने चाहिये। आल इण्डिया रेडियोके प्रसारणकेन्द्रोंके जालसे पूरा पूरा लाभ तभी उठाया जा सकता है जब सस्ते रेडियो यन्त्र उपलब्ध हो सकें।

और इन सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि आल इण्डिया रेडियो एक सार्वजनिक निगम बना दिया जाय। आज वह एक सरकारी विभाग है जिसने बहुतसे परेशान करनेवाले प्रतिबन्ध लगे हुए हैं, एक बँधे हुए ढर्रेपर जिसका काम होता है, जिसमें औपचारिकताका अधिक ध्यान रखा जाता है और जिसमें बहुत ही तंग दायरेके भीतर कोई पहल किया जाता है। सरकारी नियन्त्रणके कारण प्रभावकारी सेवा करनेकी उसकी क्षमता घट जाती है। वह एक तरहका देवर है जो पर्देके भीतर बन्द कर

दिया गया हो। भारतमें लोकमत साधारण' इस पक्षमें है कि उसे ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन जैसा रूप दे दिया जाय। अमेरिकाकी तरह उसे निजी व्यापारिक उद्यम बना देनेकी ओर यहाँ बहुत कम उत्साह है। सार्वजनिक निकायके रूपमें बीचका रास्ता ही यहाँ ज्यादा पसन्द किया जाता है।

सरकारी मत इस आदर्श एव अन्तिम लक्ष्यको मान लेनेके पक्षमें है किन्तु सरकारका खयाल है कि आल इण्डिया रेडियोको सार्वजनिक निगमके हाथ सौंप देनेका उचित समय अभी नहीं आया है। धारणा यह है कि हस्तान्तरण होनेके पहले उसका और अधिक स्थिर आर्थिक आधारपर प्रतिष्ठित हो जाना आवश्यक है। इस दृष्टिकोणमें आवश्यकतासे अधिक सावधानता देख पडती है। जो हो, अखिल भारतीय रेडियोपरसे सरकारी नियन्त्रणका उठा लिया जाना अब अधिक समयतक रोका नहीं जा सकता।

भारतके समाचारपत्रोंने बहुत उन्नति तो नहीं की है किन्तु उनका इतिहास महान् है। उस महान् इतिहासके पक्षमें एक प्रमाण उस व्यक्ति-का कथन है जो समाचारपत्रोंकी तीव्र आलोचनाका निरन्तर लक्ष्य बना रहा। वाइसराय लार्ड लिनलिथगोने केन्द्रीय व्यवस्थापक सभाके सामने विदाईका भाषण करते हुए इस महती संस्थाकी—समाचारपत्रोंकी—प्रशसा की, उसकी पक्षपात-हीनताके लिए, जनताकी सेवा करनेकी उसकी उत्सुकताके लिए और पत्रकारकलाकी सर्वोच्च परम्पराका अनु-सरण करने एव सम्भव हो तो उसमें सुधार करनेकी उसकी चिन्ताके लिए। उन्होंने कहा कि 'मै सार्वजनिक रूपसे भारतीय पत्रोंकी और उन बुद्धिमान्, परिश्रमी एव सुयोग्य आदमियोंकी प्रशसा किये बिना भारत छोडना पसन्द न करूँगा, जो समाचारपत्रोंमें काम करते हुए भारतकी इतनी अच्छी सेवा करते रहे हैं।''

विदेशी सरकार, जिसकी सत्ता मुख्य रूपसे देशी सेनाके सहारे कायम हो, समाचारपत्रोंको स्वतन्त्र नहीं रहने दे सकती। मद्रासके गवर्नर सर-

टामस मुनरोने सन् १८८२ मे ही एक उल्लेखनीय टिप्पणीमे यह बात लिख दी थी और इस प्रकार भारतीय समाचारपत्रोका मुँह बन्द कर देने तथा भारतीय सार्वजनिक मतकी दुबली पतली आवाजको, जो सुनी जानेके लिए संघर्ष कर रही थी, गला दबाकर बन्द कर देनेके लिए उपायोकी शृंखला रची जाने लगी। समाचारपत्रो सम्बन्धी कानूनोमे भारतीय स्वातन्त्र्य-आन्दोलनके गौरवमय इतिहासका ठीक ठीक अध्ययन करनेमे सहायता मिल सकती है। प्रारम्भिक कालके समाचार नियन्त्रणमे लेकर लार्ड लिटनके 'वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट' (देशी भाषाओके पत्रोका कानून) तक समाचारपत्रोके गला घोटनेका काम उसी हिसाबमे चलता रहा जिस हिसाबसे राष्ट्रीयताकी हिलोर जोर पकडती गयी। बग-भग और अपराध करनेके लिए भडकानेवाले समाचारपत्रोका कानून, स्वदेशी आन्दोलन और प्रेस ऐक्ट (समाचारपत्रो सम्बन्धी अधिनियम), सविनय अवज्ञा आन्दोलन और 'प्रेस इमर्जेसी पावर्स ऐक्ट', द्वितीय महायुद्धमे हिस्सा न लेना और भारत रक्षा सम्बन्धी नियम—इस प्रकार दमनकारी कानून एकके बाद दूसरा निकलता ही आता था जैसे पतझड़मे पेडोके पत्ते बराबर टूट टूटकर गिरते रहते है। भारतीय समाचारपत्रोने अनेक तूफानोका सामना किया है। उन्हे कई लडाइयाँ लडनी पडी और हमेशा उनकी जीत होती रही। इस सघर्षका इतिहास सार्वजनिक हित करनेकी सच्ची लगनका और विपत्तिमे अदम्य साहसका सुवर्णमय इतिहास है। यही वे अपूर्व गुण है जो भारतीय समाचारपत्रोमे अद्वितीयरूपमे प्रदर्शित होते रहे है और इन्हीके बलपर वे भविष्यका सामना करने जा रहे है।

इस तरह भविष्यका सामना करते समय भारतीय पत्रोको मित्रभावसे आलोचना करनेवालोके कथनकी ओर भी ध्यान देना चाहिये। इनकी सख्या कम नही है। अक्सर हम लोग यह सुना करते है कि समाचारपत्रोका राजनीतिक प्रभाव घट गया है। सन् १९५० मे सम्पादक सघके सम्मुख भाषण करते हुए श्री जवाहरलाल नेहरूने कहा था "इस

इस बारेमें सन्देह ही है कि राजनीतिक विचारोंपर किसी भी पत्रका कोई भारी प्रभाव हो।" इसके प्रमाणमें अमेरिकाके तथा भारतके चुनावोंके परिणामोंकी बात कही जाती है और इस आधारपर यह निष्पत्ति निकाली जाती है कि समाचारपत्रोंकी लोकप्रियता घट रही है।

अब, इसका उत्तर तो यही हो सकता है कि समाचारपत्रका काम 'समाचारपत्र छापना ही है, चुनाव जीतना नहीं—जैसा कि कनस सिटी 'स्टार' पत्रके श्री रॉय राबर्ट्सने बड़े अच्छे ढंगसे कहा था। पुलिजर प्राइज (पारितोषिक) के जीतनेवाले श्री फ्रैंक एल मॉटने 'दि रोटेरियन' के हालके एक अंकमें इस प्रश्नकी चर्चा करते हुए कहा है कि समाचार-पत्र चुनावके परिणामोंका नियन्त्रण नहीं करते, इस आधारपर यह निष्पत्ति निकालना हास्यास्पद होगा कि उन्होंने जनताका विश्वास खो दिया है। समाचारपत्रोंकी प्रचार संख्यामें स्थिर भावसे वृद्धि होते चलना ही प्रभाव घटनेकी बातपर जोर देनेवाली आलोचनाका प्रभावकारी जवाब है।

पत्रोंके अधिक प्रचारकी भी यह कहकर आलोचना की गयी है कि यह एक तरहका व्यापारवाद है, जो शुद्ध और पवित्र पत्रकारोंको दूषित बना देता है। कहा जाता है कि लन्दनके 'डेलीमेल' के श्री केनेडी जोन्सने यह बात कही थी कि पत्रकारी पहले तो एक पेशा थी किन्तु अब वह व्यापारका एक अंग है। डाक्टर बी आर अम्बेडकरने एक बार कहा था कि समाचारपत्रके कार्यालय और साबुनके कारखानेमें कोई अन्तर नहीं। अन्य लोगोंका कहना है कि वह इससे भी बुरी चीज है, क्योंकि वह मनुष्यको बहकाकर कुमार्गपर ले जाता और उसके मनको विषाक्त बना देता है, जब कि यह ऐसी कोई बात नहीं करता।

जो हो, व्यापारवादका आना तो अनिवार्य है। और यदि व्यापारिक लक्ष्यसे खतरा नहीं बढ़ने पाता तो इसका कारण यह है कि ईमानदारी ही सबसे अच्छी नीति है। जैसा कि समाचारपत्रों सम्बन्धी आयोगके सदस्य डाक्टर सी० पी० रामस्वामी ऐयरने त्रावणकोर विश्वविद्यालयकी समा-

चारपत्रों सम्बन्धी एक पुस्तककी भूमिकामें कहा था, इसका उपयुक्त प्रतिकार तब होगा जब पत्रकार अपनी वास्तविक शक्तिसे काम लेगा और जब वह "अपनी स्थिति किरायेके तुच्छ लेखकसे बढ़ाकर एक महान् पेशेके स्वाभिमानी तथा स्पष्टवादी सदस्यकी बना लेगा।"

यह एक शुभ लक्षण है कि पत्रकार अपने आपको सघटित कर रहे हैं जिससे वे उचित रूपसे अपने कर्त्तव्यका पालन कर सकें। उपयुक्त प्रशिक्षण और काम करनेकी अधिक अच्छी सुविधाएँ मिलनेपर, जब वे किसी भोजके सम्मानित अतिथि जैसे न रह जायँगे, तब वे समाचार-पत्रोंको नीचे गिरानेसे बचानेके लिए अधिक दृढतापूर्वक प्रयत्न कर सकेंगे। वे छोटे-छोटे पत्र, जिनके विकासकी भविष्यवाणी मैंने की है, इस प्रक्रियामें विशेष सहायक होंगे। जैसा कि सन् १९५२में समस्त हैदराबाद राज्यके पत्रकार-सम्मेलनमें श्री रघुनाथ ऐयरने कहा था 'इंग्लैण्डमें और अमेरिकामें भी राष्ट्रीय समाचारपत्रोंके स्वलित हो जानेके बावजूद देहातके पत्र सुदृढ और नैतिक दृष्टिसे उच्च बनाये जा सके। इनका उनसे कहीं अधिक प्रभाव है और ये राष्ट्रके अधिक सच्चे पथ-प्रदर्शक हैं।"

इण्टर नैशनल प्रेस इंस्टिट्यूट द्वारा कराये गये हालके एक पर्यालोकनके अनुसार संसारके समाचारपत्रोंके सामने एक नया युग भासमान हो रहा है और उसके साथ ही नये काम 'तथा पत्रकारके पेशेसे सम्बद्ध नयी माँगे और नये नैतिक कर्त्तव्य" आविर्भूत हो गये हैं "जिससे आजकी जटिल और तेजीसे बढ़ती जानेवाली दुनियामें रहनेवाले लोगोंकी आवश्यकताएँ पूरी की जा सकें।'

मेरा दृढ विश्वास है कि भारतीय समाचारपत्र नये युगकी चुनौतीका अच्छी तरह सामना कर सकेंगे। जैसा कि कई वर्षोतक 'हिन्दू' के सम्पादककी हैसियतसे काम करनेवाले श्री रंगस्वामी ऐयंगरने मैसूर विश्वविद्यालयके अपने एक भाषणमें कहा था, नये युगमें समाचारपत्रोंको राष्ट्रकी व्यवस्थामें एक निश्चित लक्ष्य पूरा करनेका प्रयत्न करते रहना होगा। विश्वविद्यालयोंके साथ साथ समाचारपत्रोंका भी यह काम होगा कि व

यहाँके नागरिकोंको लोकतन्त्रके पथपर अग्रसर होनेवाले स्वतन्त्र भारतके अधिक विस्तृत जीवन और क्रियाकलापोंमें अपना उचित हिस्सा ग्रहण करनेके लिए सज्जित करनेमें सहायता करें।

सन् १९५० में अखिल भारतीय सम्पादक सम्मेलनका जो वार्षिक अधिवेशन दिल्लीमें हुआ था, उसमें भाषण करते हुए प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरूने समाचारपत्रोंसे अनुरोध किया था कि वे "जीवनमें जो कुछ निकृष्ट है उसका क्रमशः बढ़ते जाना रोकनेमें सहायता करना अपना कर्त्तव्य समझें और अधिक ऊँचे दरजेकी तथा अधिक उज्ज्वल सामाजिक चेतनाके निर्माणमें ही सहायता न करें वरन् जीवनकी छोटी-छोटी बातोंमें सामाजिक व्यवहार करना सिखानेमें भी।"

जिस महान् कर्त्तव्यका भार प्रधान मन्त्रीने भारतीय समाचारपत्रोंपर डाला है, उसे पूरा करनेकी शक्ति, क्षमता और इच्छा उनमें मौजूद है और मुझे इस बातका निश्चय है कि यहाँके समाचारपत्र वह सुखद स्थिति प्राप्त करनेमें भारतकी सहायता करेंगे जिसकी कामना स्वर्गीय श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुरने की थी—

जहाँ मनमें कोई भय नहीं रहता और मस्तक ऊँचा उठा रहता है
जहाँ विद्या या ज्ञान निःशुल्क प्राप्त किया जा सकता है

.. .

जहाँ मनको तुम अधिकाधिक विस्तीर्ण होते जानेवाले विचार और क्रियाकी ओर ले जाते हो,

स्वतन्त्रताके उस स्वर्गमें, मेरे पिता, मेरा यह देश जागरित हो।

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

भारतीय पत्रकारकला सम्बन्धी पुस्तकोंकी सूची

जीवनचरित्र तथा संस्मरण*

श्री गोविन्दराव हार्डीकर—'प० माधवराव सप्रे', जबलपुर, म० प्र०, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, १९५०, पृ० २१२ (मराठीमें ?)

IYENGAR, A S *All Through the Gandhian Era* Bombay Hind Kitabs, 1950 327 pp

KIPLING RUDYARD *Something of Myself* London Macmillan, 1937 207 pp

RAO, K SUBBA *Revived Memories* Madras Ganesh, 1933 518 pp

सामान्य विषयक

श्री विष्णुदत्त शुक्ल—'पत्रकार कला', उन्नाव, शुक्लसदन, १९३०, पृ० ३७२

श्री कमलापति त्रिपाठी तथा श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन—'पत्र और पत्रकार', बनारस ज्ञानमण्डल, संशोधित संस्करण १९५०, पृ० ४२५

श्री रा० र० खाडिलकर—'आधुनिक पत्रकारकला', काशी, ज्ञानमण्डल, १९५३, पृ० २८६

---

* अंग्रेजी टाइपमें दी हुई जिन पुस्तकोंके सामने भाषाका उल्लेख न हो, वे अंग्रेजीकी ही हैं।

ALI-UL-HASHMI, CHOUDRI RAHM *Art of Writing* Delhi Anjuman Taraqui i Urdu, (Hind) 1943 22- pp (In Urdu)

ARPUTHASWAMY *Principles of Journalism* Trichur Mangalodayam Press, 1941 85 pp (In Malayalam)

BANNERJEE, RAJINI *Romance of Journalism* Calcutta Industry, 1947 165 pp

BOSE MRINAI KANTI *The Press and Its Problems* Calcutta Sarkar, 1945 162 pp

DHARA, R *Journalism* Calcutta Industry, 1925 156 pp

GUNDAPPA, D V *The Press in Mysore* Bangalore City Karnataka, circa 1940 56 pp

IYENGAR, A RANGASWAMI *Newspaper Press in India* Bangalore City Bangalore Press, 1933 50 pp

LOVETT, PAT *Journalism in India* Calcutta Banna, circa 1928 96 pp

MYERS, ADOLPH *How to be a Journalist* Bombay The Times of India Press, circa 1936 162 pp

PILLAI, K RAMAKRISHNA *Journalism* Trichur Mangalodayam Press, 1926 Second Edition 336 pp (In Malayalam)

RAO, P G *Famous Indian Journalists and Journalism* Part I Bombay V R Prabhu Kanara Books and News Agency Undated 57 pp

SASTRI, C L R *Journalism* Bombay Thacker 1944 285 pp

SRINIVASAN C R *Press and Public* Trivandrum University of Travancore, 1944 78 pp

इतिहास सम्बन्धी

१ श्री राधाकृष्णदास—हिन्दी समाचारपत्रोका इतिहास, काशी, १८९४

२ श्री बालमुकुन्द गुप्त—हिन्दी सवादपत्रोका इतिहास, बालमुकुन्द गुप्त ग्रन्थावली, कलकत्ता ।

३ पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी—'समाचारपत्रोका इतिहास', काशी, ज्ञानमण्डल, १९५४, पृ० ३९६

४ श्री विनायककृष्ण जोशी तथा श्री रामचन्द्र केशव लेले—सवादपत्रोंका इतिहास, बम्बई, युगवाणी पब्लिकेशन्स, १९५१, जिल्द १, पृ० ५६२ (मराठीमे)।

५ श्री रामचन्द्र गोविन्द कनाडे—मराठीपत्रोंचा इतिहास, (१८३२-१०३७) बम्बई, करनाटक, १९३८, पृ० २८६ (मराठीमें)।

६ श्री बकटलाल ओझा—हिन्दी समाचारपत्रोंकी सूची, द० हैदराबाद, हिन्दी समाचारपत्र संग्रहालय, १९५०

BARNS MARGARITA *The Indian Press* London Allen & Unwin 1940 491 pp

BHATNAGAR RAM RATAN *The Rise and Growth of Hindi Journalism*, 1826-1945 Allahabad Kitab Mahal circa 1948 768 pp

BOSE P N and MORENO H W B *A Hundred Years of the Bengali Press* Calcutta Moreno 1920 120 pp

Brief History of The Statesman A Calcutta Statesman Printing Press, 1947 52 pp

GHOSE HEMENDRA PRASAD *The Newspaper in India* Calcutta University of Calcutta 1952 89 pp

IYER VISWANATH *The Indian Press* [illegible] 1945 71 pp

Report of the Tilak Trial Poona *The Mahratta* 1908 [illegible] pp

STOREY GRAHAM *Reuters* New York Crown 1951 [illegible] pp

NATESAN B *In the Service of the Nation* Madras [illegible] circa 1947 73 pp

समाचारपत्रों सम्बन्धी कानून तथा पत्रोंकी स्वतन्त्रता सम्बन्धी

रिपोर्टिंग

श्री श्रीपद रामचन्द्र टिकैकर—बातमीदार, बम्बई, न्यू भारत १९३४, पृ० २७९ (मराठी मे)

पत्रकारोंकी वृत्ति या पेशे सम्बन्धी

Journalism as a Career New Delhi Careers Institute, 1951. 4› pp

RAU, ABDUL-MAJID *Journalism as a Career* Lahore Commercial Book, circa 1933 138 pp

Report of the Newspaper Industry Enquiry Committee Central Provinces and Berar Nagpur Government of the Central Provinces and Berar circa 1948, 52 pp

UMRIGAR K D *Lest I Forget* Bombay Popular Book Depot, 1949 148 pp

विविध विषयक

NARASIMHAN V K and PHILIP, POTHE , Editors *The Indian Press Year Book* Madras Indian Press Publications Annually since 1948

परिशिष्ट २

पत्रकारकला सम्बन्धी सामान्य (जेनरल) पुस्तकोंकी सूची

(*Note* Thousands of books dealing with journalism have been published in the countries of the world but few are readily available in India The following list is not a list of the best titles anywhere but of books in English that may be found in India Topics not sufficiently treated in the Bibliography on Indian Journalism just preceding may be handled more satisfactorily therefore in some of the following books Readers are advised to consult the university college and public libraries and the special libraries of the United States Information Service the British Information Service and other such groups in the major Indian cities The offices of large newspapers news agencies and magazines also may possess a few of the titles)

GENERAL WORKS ON JOURNALISM

Kemsley Manual of Journalism London Cassell 1950

CARR, C E and STEVENS F E *Modern Journalism* London Pitman 1931

MANSFIELD F J *The Complete Journalist* London Pitman 1936

MOTT, GEORGE FOX and Associated Authors *New Survey of Journalism* New York Barnes & Noble [illegible]

WOLSELEY ROLAND E and CAMPBELL LAURENCE R *Exploring Journalism* New York Prentice Hall 1949

EDITORIAL WRITING

MAGAZINE JOURNALISM

BIRD, GEORGE L *Article Writing and Marketing* New York Rinehart 1948

PATTERSON, HELEN *Writing and Selling Feature Articles* New York Prentice Hall, 1949

WOLSELEY POLAND E *The Magazine World* New York Prentice Hall, 1951

NEWS REPORTING AND WRITING

CAMPBELL, LAURENCE R and WOLSELEY, ROLAND E *Newsmen at Work* Boston Houghton Mifflin, 1949

MACDOUGALL, CURTIS D *Interpretative Reporting* New York Macmillan, 1948

WARREN, CARL *Modern News Reporting* New York Harper, 1951

SUB-EDITING

BASTIAN GEORGE C and CASE LELAND D *Editing the Day's News* New York Macmillan, 1943

MANSFIELD, F J *Sub Editing* London Pitman 1946

NEAL, ROBERT *Editing the Small City Daily* New York Prentice Hall 1946

SUTTON, ALBERT A *Design and Makeup of the Newspaper* New York Prentice Hall, 1948

MISCELLANEOUS

FLESCH RUDOLF *The Art of Plain Talk* New York Harper, 1946

FLESCH RUDOLF *The Art of Readable Writing* New York Harper 1949

WARREN, CARL *Radio News Writing and Editing* New York Harper 1947

Willing's Press Guide London, Willing's Press Service, Ltd Annually

Writers and Artists Year Book London Adam and Charles Black Annually

---

परिशिष्ट ३

लेखकोंका संक्षिप्त परिचय

श्री ए ई चार्लटन 'स्टेट्समैन' पत्रके दिल्ली-स्थित कार्यालयके प्रभारी अधिकारी हैं। लन्दनके उपनगरीय क्षेत्रमें निकलनेवाले साप्ताहिकोंमें काम करनेके बाद सन् १९३६ में वे 'स्टेट्समैन' में उपसम्पादकके पदपर नियुक्त हुए। वे दिल्ली संस्करणके प्रधान उपसम्पादक तथा दिल्ली और कलकत्ता, दोनों ही संस्करणोंके समाचार-सम्पादक रह चुके हैं। वे लन्दन 'टाइम्ज' के दिल्लीस्थित प्रतिनिधि और लन्दनके 'आब्जर्वर' पत्रके संवाददाता हैं। वे केन्द्रीय पत्र-सलाहकार-समितिके सदस्य हैं। उन्होंने अपने लेखमें जो विचार प्रकट किये हैं, उनके सम्बन्धमें लिखा है कि "ये मेरे अपने निजी विचार हैं, 'स्टेट्समैन' पत्रके नहीं।'

× × ×

श्री केदारनाथ चट्टोपाध्याय 'माडर्नरिव्यू' तथा 'प्रवासी' (बंगला) के सम्पादक हैं पर आपका परिचय बहुधा 'माडर्नरिव्यू' के ही सम्पादक रूपमें दिया जाता है जिसे आपके पिताके कारण इतनी प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

× × ×

श्री नार्मन ए एलिस भारतके समाचारपत्रों तथा छापेखानोंकी दुनियामें दो महत्त्वपूर्ण पदोंपर काम कर रहे हैं। वे भारतके अत्यन्त सुन्दर मासिकपत्रोंमें से एक 'इण्डियन प्रिंट एण्ड पेपर' के सम्पादक तथा कलकत्तेके 'ट्रिस्ट मिशन प्रेस' के अधीक्षक हैं। यह प्रेस भी भारतके बड़े मुद्रणालयोंमेंसे एक है। श्री एलिसका इस देशके छपाईके उद्योगमें बहुत दिनोंसे सम्बन्ध चला आ रहा है। वे छपाई और मुद्रण सौन्दर्यपर

विभिन्न पत्रोंमे लेख लिखते रहते है और इस उद्योगके ऊँचे प्रतिमानोंके वे प्रतिरक्षक है।

श्री टाम फर्नैण्डीज दो दशाब्दोंसे भी अधिक समयसे भारतीय समाचारपत्र-जगत्मे काम करते रहे है। सन् १९३१ मे उन्होंने 'असोशियेटेड प्रेस ऑफ इण्डिया के रिपोर्टरकी हैसियतसे काम शुरू किया—सयुक्त प्रदेशकी सरकारकी राजधानी लखनऊ तथा नैनीतालमे स्थित उसके सवाददाताके रूपमे। चार वर्ष बाद उन्हे कानपुरमे रायटरकी शाखाके सघटनका कार्य सौपा गया। सन् १९३९ मे उनका स्थानान्तरण हैदराबादको हो गया, जहाँ वे निजाम सरकारकी राजधानीमे रहनेवाले रायटरके एजेण्ट नियुक्त हुए। १९४४ मे वे असोशियेटेड प्रेसके प्रभारी सम्पादकके रूपमे बम्बईके प्रधान कार्यालयमें चले गये। १९४७ मे उनका तबादला दिल्लीको हो गया जहाँ उन्हे सर उषानाथ सेनकी अधीनतामे, भारत सरकारकी राजधानीमें, स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद बदली हुई स्थितिके अनुरूप शाखा-कार्यालयका सघटन करना पडा। सन् १९५० मे सर उषानाथके अवसर ग्रहण कर लेने पर श्री फर्नैण्डीज दिल्ली-कार्यालयके प्रधान बन गये। इस समय वे इसी पदपर काम कर रहे है। श्रमजीवी पत्रकारोंके सघटनोंमे वे सक्रिय रूपसे हिस्सा लेते रहे है। दिल्लीमे वे अखिल-भारतीय पत्रकार सम्मेलनके प्रथम अधिवेशनके सघटनकर्त्ताओंमेसे एक थे। श्रमजीवी पत्रकारोंके भारतीय सघकी स्थापनाके बादसे वे उसके कोषाध्यक्ष रहे है।

श्री पी०एन० मेहता बेनेट कोलमेन एण्ड कम्पनी लिमिटेडके डाइरेक्टर (सचालक) है। 'टाइम्ज ऑफ इण्डिया', 'दि इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया' तथा अन्य प्रकाशनोंका स्वामित्व इसी कम्पनीके हाथमे है। वे प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया तथा यूनाइटेड प्रेस ऑफ इण्डियाके भी डाइरेक्टर है। पत्रकारी सम्बन्धी कानूनोंमे विशेष अभिरुचि होनेके कारण उन्होंने 'प्रेस लॉज इन इण्डिया' नामक पुस्तक भी लिखी है। कम्पनी कानूनका भी अच्छा अध्ययन होनेके कारण उन्होंने इस विषयपर भी कई जिल्दोंमें पुस्तक लिखी है और एक पुस्तक 'पार्लिमेण्ट एण्ड

स्टेट लेजिस्लेचर्स' (संसद तथा राज्योंके विधान मण्डल) नामकी भी लिखी है।

नाडिग कृष्णमूर्त्तिने मिसूरी विश्वविद्यालयके पत्रकारकला विद्यालयमें शिक्षा प्राप्त कर उस विषयमें एम ए की डिग्री प्राप्त की। जब वे अमेरिकामें थे, तब उन्होंने आठ कन्नड पत्रोंके विशेष संवाददाताकी हैसियतसे काम किया। जब नयी दिल्लीसे 'अमेरिकन रिपोर्टर' का प्रकाशन शुरू किया गया, तब वे उसमें फीचर लिखने लगे। फिर वे मद्रासमें स्थित अमेरिकन सूचना-कार्यालयमें कन्नडके प्रधान सम्पादक बनाकर भेज दिये गये, जहाँ वे १९५३ तक रहे। उन्होंने १५ पुस्तकें लिखी हैं। उनकी लिखी एक अंग्रेजी पुस्तक 'महात्मा गांधी एण्ड अदर मार्टर्स ऑफ इण्डिया' अमेरिकामें प्रकाशित हुई है। वे इन पत्रोंमें लेख लिखते रहे हैं—सेंट लुई पोस्ट-डिस्पैच, न्यूयार्क, दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, न्यूज क्रानिकल फ्री प्रेस जर्नल, इण्डियन एक्सप्रेस, डेकन हेराल्ड और फोरम। १९५३ में वे मैसूर विश्वविद्यालयमें पत्रकारकलाके सहायक प्राध्यापक नियुक्त किये गये हैं।

जब उन्होंने इस पुस्तकका १६ वाँ परिच्छेद लिखा था, तब वे भारतीय सम्पादक सम्मेलनकी मध्यप्रदेशीय शाखाके सभापति थे। उन्होंने पत्रकारीका काम सन् १९३३ में लाहौरके पत्र 'इम्पीरियल रीव्यू' के सहायक सम्पादककी हैसियतसे शुरू किया। दो वर्ष बाद वे नागपुर 'डेलीन्यूज' के सहायक सम्पादक बने। जब वह नागपुरका (पहलेका) 'टाइम्स' बन गया, तब वे उसके सम्पादक घोषित हुए। सन् १९४२ में जब पत्रका प्रकाशन स्थगित हो गया, तब उन्होंने अंग्रेजीके दैनिक 'हिन्दुस्तान हेरल्ड' की स्थापना की। सन् १९४८ में वे नये नागपुर 'टाइम्स' के सम्पादक नियुक्त हुए। नागपुरमें वे १९४६ से ही 'हिन्दू' के विशेष सवाददाता रहे है। सन् १९४६ मे नागपुर विश्वविद्यालयने पत्रकारकलामे उपाधिपत्र देनेके लिए शिक्षाक्रम आदिकी योजना तैयार करनेके लिए जो कमेटी नियुक्त की थी, उसके आप सयोजक बनाये गये और उस कमेटीके भी, जो १९४९ मे भारतीय सम्पादक-सम्मेलनने पत्रकारकला-विद्यालयके सम्बन्धमे रिपोर्ट तैयार करनेके लिए बनायी थी। उन्होंने फ्री प्रेस जर्नल, हिन्दुस्तान टाइम्स, नैशनल हेरल्ड, साउथ इण्डियन जर्नलिस्ट आदि पत्रोंमे कितने ही लेख लिखे है।

श्री स्वामिनाथ नटराजन् 'बाम्बे क्रानिकल' के सम्पादक है। वे 'इण्डियन सोशल रिफार्मर' के सम्पादककी हैसियतसे भी प्रसिद्धि-लाभ कर चुके है, जो उनके पत्रकार पिता श्री कामाक्षी नटराजन् द्वारा स्थापित किया गया था। यह पत्र उस समय बन्द हो गया था जब उन्होंने इस पुस्तकके लिए आठवाँ परिच्छेद लिखा। एक वर्षसे भी अधिक समयतक वे 'फ्री प्रेस जर्नल' के सम्पादक रहे और सन १९४९ से 'बाम्बे क्रानिकल' का सम्पादन करते रहे हैं। उन्होंने कई पुस्तकें तथा भारतीय प्रश्नोंपर कई आक्सफोर्ड पुस्तिकाएँ भी लिखी है। वे अमेरिका भी हो आये है।

श्री हेनरी मैस्यूल इस समय 'टाइम्स ऑफ इण्डिया न्यूज सर्विस' के दिल्ली-कार्यालयके प्रधान है किन्तु कई वर्षोंतक वे रेडियो सम्बन्धी

सम्पादनकार्य भी कर चुके हैं। उन्होंने सन १९३२ में हैदराबादमें क्रिकेट रिपोर्टरकी हैसियतसे पत्रकारी शुरू की। कुछ समयतक वे पटनेके एक दैनिक पत्रमें रहे, फिर १९३७ से १९४४ तक कलकत्तेके 'स्टेट्समैन' पत्रके सम्पादकीय विभागमें काम करते रहे। १९४४–४५ में वे आल इण्डिया रेडियोके समाचार सम्पादक रहे, १९४५–४६ में असोशिएटेड प्रेस ऑफ अमेरिकाके भारतस्थित कार्यालयके प्रधान और १९४६–४७ में 'फ्री प्रेस ऑफ इण्डिया' कलकत्ताके मैनेजर तथा विशेष संवाददाता रहे। सन् १९४७–५२ में फिर आल इण्डिया रेडियो नयी दिल्लीमें, उसके (समाचार विभागके) विशेष प्रतिनिधिकी तरह काम करते रहे।

श्री कृष्णलाल श्रीधरानी सन १९४५ से 'अमृतबाजार पत्रिका' (कलकत्ता) के विशेष प्रतिनिधि रहे हैं। उसकी ओरसे उन्होंने सन-फ्रान्सिस्कोके संयुक्त राष्ट्र सम्मेलनमें जाकर सम्पूर्ण कार्रवाईके समाचार भेजे। १९४६ में पेरिस शान्ति सम्मेलनके तथा १९४८ में संयुक्त राष्ट्रसंघकी महासभा (पेरिस) के भी समाचार उन्होंने भेजे। वे अमेरिकन लिबरल पत्र 'न्यू रिपब्लिक' के भी विशेष प्रतिनिधि हैं। वे कांग्रेस प्रेस सलाहकार समितिके सदस्य हैं और 'न्यूयार्क टाइम्स', 'लोग' [illegible] हिन्दू, 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' आदिमें बराबर लेख लिखते रहते हैं। वे कोलम्बिया विश्वविद्यालयके स्नातक हैं और जब महात्माजीने नमक सत्याग्रहके लिए प्रथम यात्रा की थी तब वे भी उस मण्डलीके एक सदस्य थे। बादमें उन्हें साबरमती तथा नासिकके कारागारोंमें सजा काटनी पड़ी। उनकी लिखी कई पुस्तकें प्रसिद्ध हो चुकी हैं जैसे 'वार विदाउट वायोलेन्स' 'माई इण्डिया' 'माइ अमेरिका' इत्यादि। गुजरातीमें भी उन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं।

लयसे इस विषयमें एम ए की उपाधि प्राप्त की थी और लन्दन विश्व-विद्यालयसे भी इस विषयका उपाधिपत्र प्राप्त किया था। देशका विभाजन हो जानेके बाद उन्होंने नयी दिल्लीमें पंजाब विश्वविद्यालयके अन्तर्गत पत्रकारकला विभागकी स्थापना की और अभीतक उसके प्रधान तथा प्राध्यापककी हैसियतमें काम कर रहे हैं। सक्रिय पत्रकारके रूपमें काम करते समय प्रोफेसर मित्र अन्तर्राष्ट्रीय समाचार समितिके विशेष संवाददाता और 'पायोनियर'के उपसम्पादक रहे हैं। कुछ समयतक आप उत्तरप्रदेशीय सरकारके सूचना विभागकी अंग्रेजी शाखाके प्रधान तथा सम्पादक-मण्डलके अध्यक्ष थे। आपने 'नेशनल हेरल्ड', 'दि ट्रिब्यून', 'इण्डियन न्यूज क्रानिकल' तथा 'भारत', 'प्रताप', 'विश्वबन्धु', 'सुधा', 'माधुरी', 'चॉद', और 'भविष्य'में कितने ही लेख लिखे हैं।

श्री एन एन शिवरमण मद्रासमें निकलनेवाले तामिल भाषाके दैनिकपत्र 'दिनमणि' के सम्पादक हैं, अत अपने लेखमें आपने स्वभावत तामिल पत्रोंकी स्थितिका विशेष रूपसे वर्णन किया है। भारतीय पत्रकार-कलाकी इस महत्त्वपूर्ण शाखाके विकासकी अपनी अलग विशेषता है। वे इस क्षेत्रमें सन १९२९ में प्रविष्ट हुए, 'तामिल नाडु' नामक दैनिक-पत्रके उप-सम्पादक बनकर। शीघ्र ही उन्होंने वहाँसे पदत्याग कर दिया और नमक सत्याग्रहमें सम्मिलित हुए जिसमें उन्हें कारावासकी सजा हुई। सन् १९३२ में वे द्विदैनिकपत्र 'गान्धी' के व्यवस्थापक तथा सहायक सम्पादक नियुक्त हुए। सन् १९३४ में वे 'दिनमणि'में प्रथम श्रेणीके उप-सम्पादक बने और फिर सहायक सम्पादक, कार्यकारी सम्पादक तथा सम्पादक भी बने। बीचमें केवल दो वर्षके लिए उन्होंने मद्रासके 'इण्डियन एक्सप्रेस' में प्रधान सहायक सम्पादककी तरह काम किया। सन १९४५ में उन्होंने भारतीय सम्पादकोंके एक दलके साथ 'मध्यपूर्व' तथा मध्य भूमध्य सागरीय युद्धक्षेत्रका दौरा किया। उन्होंने सेनफ्रान्सिस्कोमें हुए संयुक्त राष्ट्र सम्मेलनके समय 'एक्सप्रेस' समूहके पत्रोंके विशेष संवाद दाताकी हैसियतमें काम किया और सन् १९४६ में फिर विभिन्न स्थानों

का निरीक्षण कर जानकारी प्राप्त करनेके उद्देश्यसे अमेरिका लौट गये। उन्होंने चार पुस्तकें लिखी हैं जिनमेंसे एक तामिल भाषामें है—'प्रान्तीय स्वराज्य'।

श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन लखनऊके 'नेशनल हेरल्ड' के विशेष संवाददाता तथा कितने ही पत्र पत्रिकाओंमें लेख लिखते रहनेवाले स्वतंत्र पत्रकार हैं। अपने पत्रकार-जीवनमें वे अभीतक बीस पत्रों—अंग्रेजी तथा हिन्दी—का प्रतिनिधित्व कर चुके हैं। सन् १९४२ के विद्रोह-कालमें ब्रिटिश सरकार विरोधी कार्यों तथा अपने राजनीतिक सम्पर्कोंके कारण उन्हें सोलह महीने कारावासमें बिताने पड़े। जेलसे छूटनेके बाद वे स्वतन्त्र पत्रकारकी तरह काम करने लगे, क्योंकि उनका पत्र (नेशनल हेरल्ड) दमन-नीतिके प्रहारस्वरूप बन्द कर दिया गया था। उस समयका उनका सबसे महत्त्वपूर्ण काम अपने पत्रके लिए लिखा गया वह सनसनीखेज किन्तु सप्रमाण लेख था जिसमें "उन बर्बरताओं का दिग्दर्शन कराया गया था जो उत्तर प्रदेशमें 'भारत छोड़ो' आन्दोलनके समय अंग्रेजी सरकार द्वारा की गयी थीं जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है। यह समाचार पृष्ठव्यापी शीर्षक देकर छापा गया था और सम्भवतः यह पहला ही शुद्ध राजनीतिक लेख था जिसे किसी दैनिक समाचारों या विषयोंसे अधिक महत्त्व दिया गया हो। इस छापनेके कारण 'नेशनल हेरल्ड' से छ हजार रुपयेकी जमानत माँगी गयी। आचार्य कृपालानी तथा आचार्य विनोबा भावे सम्बन्धी लेख संग्रहोंका सम्पादन उन्होंने किया है और अंग्रेजीमें 'नेहरू युअर नेबर' नामक पुस्तक भी लिखी है। कुछ और पुस्तकें शीघ्र प्रकाशित होनेवाली हैं।

श्री रोलैण्ड ई० वुल्सले सिराक्यूज विश्वविद्यालय सिराक्यूज न्यूयार्कके पत्रकारकला विभागके लेख-पत्रिकाओंवाली शाखाके निर्देशक प्रधान हैं। वे नागपुर विश्वविद्यालयसे सम्बद्ध हिस्लोप कॉलेजके पत्रकारकला विभागके प्रथम प्रधान नियुक्त होकर सन् १९५२ में भारत आये। अपने देश अमेरिकामें वे समाचारपत्रके रिपोर्टर उप सम्पादक तथा सम्पादक

प्रबन्ध-सम्पादक और सम्पादक रह चुके है। उनके लेख १०० से अधिक अमेरिकन, ब्रिटिश, भारतीय तथा आस्ट्रेलियन पत्रोंमे निकल चुके है, जिनमेसे कुछ पत्रोके नाम ये है—सैटरडे रीव्यू ऑफ लिटरेचर, न्यूयार्क हेरल्ड ट्रिब्यून, कोरोनेट, क्रिश्चियन साइंस मानीटर। अंग्रेजीके बहुतसे पत्रकारकला सम्बन्धी प्रकाशनोंमे भी वे लिखते रहे है। उन्होने ना पुस्तके या तो अकेले ही लिखी है या अन्य लेखकोके साथ मिलकर जैसे 'दि मैगजीन वर्ल्ड', 'एक्सप्लोरिंग जर्नलिज्म', 'न्यूजमेन ऐट वर्क' इत्यादि। उन्होने सिराक्यूज, नार्थवेस्टर्न तथा अन्य विश्वविद्यालयो और महाविद्यालयोंमे पत्रकारकलाकी शिक्षा देनेका कार्य किया है। भारतमे निवास करते समय प्रोफेसर वूल्सलेने प्रमुख पत्र पत्रिकाओके अनेक कार्यालयोका परिदर्शन किया और अमृत बाजार पत्रिका, स्वतन्त्र, भारत ज्योति, बाम्बे क्रानिकल, लीडर, हिन्दुस्थान स्टैण्डर्ड, नैशनल हेरल्ड आदि पत्रोमे लेख लिखे। अपने पत्रकार-जीवनमे उन्होने सार्वजनिक सम्पर्क विभाग, प्रवर्त्तन-कार्य, बडे-बडे अमेरिकन निगमोके लिए तथा शैक्षणिक एव धार्मिक समूहोके लिए किया जानेवाला प्रचार आदि विभिन्न कार्योंमे सलग्न रहकर कई वर्षोंका अनुभव प्राप्त किया है।